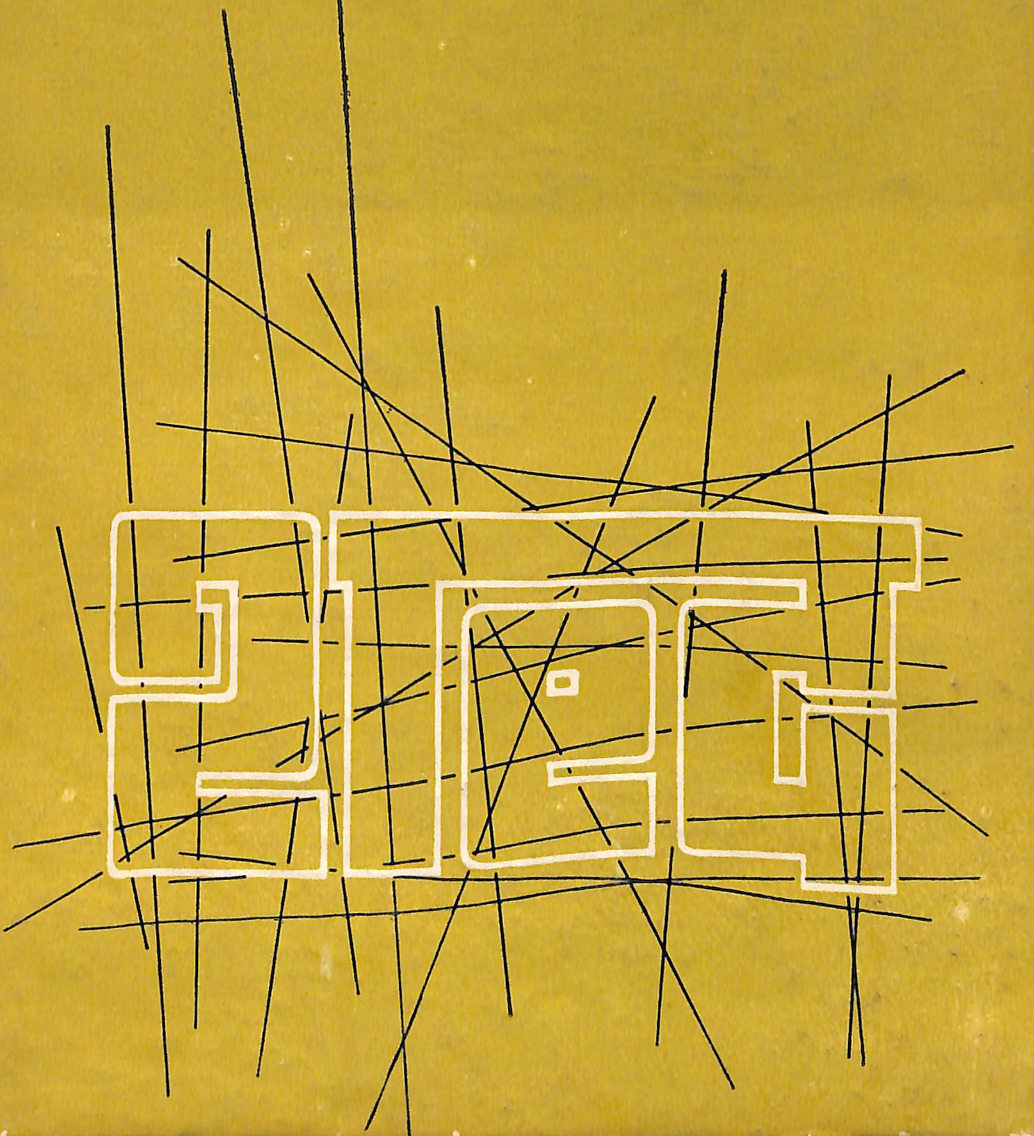
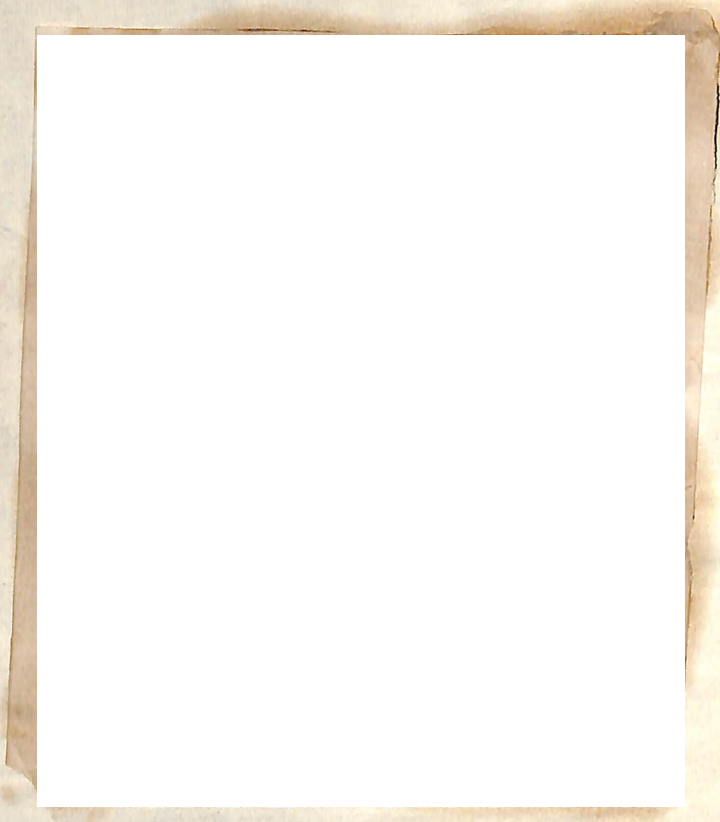
शब्द विज्ञान

भोलानाथ तिवारी





शब्दविज्ञान

प्रकाशक : शब्दकार
2203, गली डकौतान
तुर्कमान गेट, दिल्ली-110006
मूल्य : पैंतीस रुपये
प्रथम संस्करण : 1982
मुद्रक : शान प्रिंटर्स, शाहदरा, दिल्ली-110032
आवरण : चेतन दास
आवरण-मुद्रक : परमहंस प्रेस, नारायणा, नई दिल्ली
पुस्तक-बन्ध : खुराना बुक बाइंडिंग हाउस, दिल्ली-110006

शब्द विज्ञान

भोलानाथ तिवारी

शब्दकार

मध्यकालीन हिंदी साहित्य के मर्मज्ञ विद्वान्
श्रद्धेय नर्मदेश्वर चतुर्वेदी के लिए
जो मेरे लिए सर्वदा ही
प्रेरणा के अक्षय स्रोत रहे हैं।

लेखकीय

शब्दों के अध्ययन में बचपन से ही मेरा मन बहुत रमता रहा है तथा पिछले तीस-बत्तीस वर्षों से मेरी यह मान्यता रही है कि 'शब्दों का अध्ययन' अपने आप में इतना महत्त्वपूर्ण है कि अर्थविज्ञान, वाक्य-विज्ञान, रूपविज्ञान तथा ध्वनिविज्ञान की तरह उसका भी अलग नाम होना चाहिए तथा उसे भी भाषाविज्ञान की एक स्वतंत्र शाखा के रूप में स्वीकृति मिलनी चाहिए। यह पुस्तक मेरी उसी मान्यता का मूर्त रूप है।

इसके पूर्व शब्दों के संबंध में मेरी चार पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं: 'शब्दों का जीवन', 'शब्दों का अध्ययन', 'पारिभाषिक शब्दावली : कुछ समस्याएँ' तथा 'शब्दों की कहानी'। इस पाँचवीं पुस्तक 'शब्दविज्ञान' के रूप में मैंने शब्द-विषयक अपने पूरे चिंतन को एक सैद्धांतिक अध्ययन का रूप देने का प्रयास किया है। यों, इस दिशा में पहली पुस्तक होने के कारण, इसकी अपनी सीमाएँ भी हैं। आशा है, आगे काम करनेवाले इस विषय को अधिक पूर्णता प्रदान कर सकेंगे।

—भोलानाथ तिवारी

अनुक्रमणिका

1
शब्दविज्ञान

यह नाम

जिस प्रकार अर्थ, वाक्य, रूप तथा ध्वनि के अध्ययन को क्रमशः अर्थविज्ञान, वाक्यविज्ञान, रूपविज्ञान तथा ध्वनिविज्ञान कहते हैं, उसी प्रकार शब्दों के अध्ययन को 'शब्दविज्ञान' नाम दिया जा सकता है।

नाम का औचित्य

सन् 1949 से एम० ए० की परीक्षा देने के बाद, जिन दिनों मैं अपनी पुस्तक 'भाषाविज्ञान' की पांडुलिपि को अंतिम रूप दे रहा था, मेरे सामने अध्यायों के नामकरण की एक समस्या आई। अंग्रेज़ी में भाषाविज्ञान की शाखा के रूप में उस समय प्रायः चार का उल्लेख्य परंपरागत ग्रंथों में मिलता था: Semantics, Syntax, Morphology, Phonetics। इनके आधार पर मैंने इन विषयों से सम्बद्ध अध्यायों को अर्थविज्ञान, वाक्यविज्ञान, रूपविज्ञान तथा ध्वनिविज्ञान नाम दिया। समस्या थी 'शब्द' की। शब्दों के अध्ययन के लिए अंग्रेजी में कोई भी नाम उस समय तक प्रचलित नहीं था, और जहाँ तक मैं जानता हूँ, आज भी नहीं है। मेरे मन में आया कि जब अर्थ, वाक्य, रूप, ध्वनि के अध्ययन को हम अर्थविज्ञान, वाक्यविज्ञान, रूपविज्ञान, ध्वनिविज्ञान कहते हैं तो शब्द के अध्ययन को शब्दविज्ञान कहा जा सकता है। यह सोचकर भी मैं अपने शब्दवाले अध्याय को शब्दविज्ञान नाम नहीं दे सका, क्योंकि अंग्रेज़ी में कोई नाम नहीं था, जिसके प्रतिशब्द के रूप में मैं 'शब्दविज्ञान' नाम का प्रयोग कर सकूँ। जहाँ तक मुझे याद है, मैंने उस अध्याय का शीर्षक 'शब्द' रखा था। बाद में कदाचित् 1954 में जब उसका दूसरा संस्करण निकला तो मैंने शब्दों के सभी प्रकार के अध्ययनों के लिए 'शब्दविज्ञान' नाम का प्रयोग करने का निश्चय कर लिया था, तथा चूँकि अंग्रेज़ी में इसका समानार्थी कोई शब्द नहीं था, अतः मैंने Word के आधार पर, 'शब्दविज्ञान' के लिए, अंग्रेज़ी Morphology के सादृश्य पर Wordology शब्द गढ़ लिया था। उसके बाद के भी संस्करणों में 'शब्दविज्ञान' के साथ अंग्रेज़ी प्रतिशब्द के रूप में मैं Wordology शब्द का प्रयोग करता रहा हूँ।

मेरे कई अपरिचितों, परिचितों तथा मित्रों ने मेरे इन दोनों नामों का विरोध

किया तथा जैसाकि प्रायः होता है, कुछ महानुभावों ने इन दोनों को लेकर मेरा मज़ाक़ उड़ाने का भी यत्न किया।

एक बार कदाचित् उदयपुर विश्वविद्यालय में कोई सेमिनार चल रहा था। दिल्ली से मैं तथा कुछ और लोग गए थे। मुझे भाषा के अध्ययन की अधुनातन प्रवृत्तियों पर बोलना था। वह सेशन हिंदी-अंग्रेज़ी का संयुक्त था, अतः मुझे मिश्रित भाषा में बोलने को कहा गया था। वहाँ मैंने अच्छा अवसर देखा तथा शब्दविज्ञान की विस्तार से चर्चा की तथा उसके प्रतिशब्द रूप में, अंग्रेज़ी में Wordology शब्द अपनाने का सुझाव दिया। अनुकूल तथा तीखी सभी प्रकार की प्रतिक्रियाएँ आईं। राजस्थान के एक भाषाशास्त्री ने कहा कि 'शब्दविज्ञान' में जो कुछ भी आ सकता है उसे 'रूपविज्ञान' में रखा जा सकता है। इसी तरह Wordology की भी आवश्यकता नहीं। Morphology में उसकी सभी बातें आ जाती हैं। मेरा उत्तर था :

(क) रूपविज्ञान रूपों के अध्ययन-विश्लेषण का विज्ञान है। रूप सामान्यतः दो प्रकार के होते हैं : कारकीय रूप और क्रिया रूप। रूप और शब्द एक नहीं होते। शब्द का केवल अर्थ होता है, किन्तु रूप या पद में अर्थ के अतिरिक्त वाक्य के अन्य घटकों से अपने को जोड़ने की शक्ति भी होती है। शब्द में सम्बन्धतत्त्व जोड़ने से रूप/पद बनते हैं : सुप्तिङन्तम् पदम्। 'लड़का' शब्द है तो 'लड़के ने', 'लड़के को', 'लड़के से' आदि पद या रूप हैं। इस तरह रूपविज्ञान शब्दों से रूपों की रचना का विज्ञान है।

(ख) किसी भी भाषा में सर्वदा, शब्द एक नहीं होते। हिंदी में जो शब्द आदिकाल में प्रयुक्त होते थे, भक्तिकाल में वे ही शब्द नहीं थे, इसी तरह रीतिकाल तथा आधुनिक काल में भी बहुत से शब्द लुप्त हो गए तथा बहुत से नए आ गए। इस तरह किसी भी भाषा की शब्द-संपदा, उसके शब्दभाण्डार या शब्दसमूह का अध्ययन, पुराने शब्दों के लुप्त होने तथा नए शब्दों के आ जाने का अध्ययन 'शब्दविज्ञान' में हो सकता है, रूपविज्ञान में नहीं।

(ग) इस तरह Morphology को हिंदी में 'रूपविज्ञान' नाम दें या 'पदविज्ञान', शब्दों से संबद्ध सभी प्रकार के अध्ययनों को उस (रूपविज्ञान या पदविज्ञान) में नहीं रखा जा सकता। वह तो मूलतः रूपों या पदों की रचना के (वर्णनात्मक, ऐतिहासिक, तुलनात्मक या व्यतिरेकी) अध्ययन का विज्ञान है।

इसके बाद अंग्रेज़ी के एक विद्वान् ने कहा कि यह ठीक है कि पद या रूप के विशेष अर्थ के कारण पदविज्ञान तथा रूपविज्ञान में शब्दविज्ञान नहीं रखा जा सकता, किंतु अंग्रेज़ी Morphology में केवल रूप या पद-रचना का अध्ययन नहीं आता, बल्कि शब्द-रचना का अध्ययन भी आता है, अतः Morphology के रहते, किसी Wordology जैसे शब्द की आवश्यकता नहीं।

मेरा उत्तर था—

अंग्रेज़ी में Wordology ले या न लें, यह अंग्रेज़ीवालों की इच्छा पर निर्भर

करता है, मेरा तो यह सुझाव मात्र है । हाँ, यह मैं दावे के साथ कह सकता हूँ कि शब्द की रचना का अध्ययन तो Morphology में आ सकता है किंतु शब्द-सम्बन्धी सभी अध्ययन उसमें नहीं आ सकते। उदाहरण के लिए चॉसर के ज़माने की अंग्रेज़ी में जो शब्द चलते थे, वर्ड्सवर्थ के ज़माने में वे नहीं थे तथा जो वर्ड्स-वर्थ के ज़माने में चलते थे, आज नहीं हैं। इस तरह हर ज़माने में कुछ शब्द प्रयोग से निकल जाते हैं तथा कुछ नए शब्द प्रयोग में आ जाते हैं। नए शब्दों के इस तरह आने तथा पुराने शब्दों के जाने का अध्ययन, शब्दों के अध्ययन या शब्दविज्ञान में तो आता है किंतु आप शायद ख़ुद ही इस तरह के अध्ययन को Morphology में रखना नहीं पसंद करेंगे।

स्वभावतः उन प्रश्नकर्ता महोदय की ख़ामोशी का अर्थ मैंने सहमति ली और बात आगे बढ़ी।

अंग्रेज़ी के ही एक दूसरे व्यक्ति ने कहा कि डॉ० तिवारी की इस बात से मैं सहमत हूँ कि शब्दों से संबंधित सभी अध्ययन Morphology में नहीं रखे जा सकते और भाषाविज्ञान की कोई और शाखा उसके लिए अपेक्षित है जिसके लिए 'शब्दविज्ञान' नाम ठीक है, किंतु Wordology की ज़रूरत नहीं। Lexicology में शब्दों के सभी प्रकार के अध्ययन को समेटा जा सकता है।

इस संबंध में मेरा विनम्र निवेदन यह था कि Lexicology यूनानी भाषा के lexis तथा legein से बना है। lexis का अर्थ है 'शब्द' तथा legein का अर्थ है 'बोलना' अर्थात् शब्दों के बारे में बोलना अर्थात् शब्दविज्ञान, किंतु आज जहाँ तक मेरी जानकारी है, अंग्रेज़ी में Lexicology शब्द का प्रयोग 'कोशविज्ञान' के लिए हो रहा है तथा Lexicography का 'कोशकला' के लिए। कहना न होगा कि 'कोशविज्ञान' और 'शब्दविज्ञान' एक नहीं हैं। इस तरह मेरे विचार में 'शब्द-विज्ञान' के ठीक अर्थ में अंग्रेज़ी में कम-से-कम इस समय कोई शब्द नहीं है, और उस कमी की पूर्ति के लिए Wordology शब्द बुरा नहीं है। इन सबके बावजूद भी यदि अंग्रेज़ी वाले Wordology शब्द न लेना चाहें तो भला मुझे क्या आपत्ति हो सकती है।

इस पर एक अंग्रेज़ी के ही व्यक्ति ने कहा कि इस नए अर्थ में अंग्रेज़ी में Wordology को स्वीकार करने में मुझे कोई आपत्ति नहीं दीखती। अंग्रेज़ी में एक शब्द है linguist, जिसका सामान्य अर्थ है 'कई भाषाएँ जाननेवाला'। इस शब्द का प्रयोग कुछ लोग भाषाविज्ञानवेत्ता के लिए भी करते हैं। इस द्विअर्थता से बचने के लिए एक बार डॉ० सिद्धेश्वर वर्मा ने इंग्लैंड में अपने किसी भाषण में भाषाविज्ञानवेत्ता के लिए linguistics से linguistician शब्द बना लेने का सुझाव दिया था। इस पर प्रसिद्ध अंग्रेज ध्वनिविज्ञानवेत्ता डैनियल जोन्स ने कहा था कि शब्द अच्छा है, आप भारतीय इसका प्रयोग शुरू करें, वहाँ से हम लोग इसे ले लेंगे।

ख़ैर, आगे चलकर मैंने अंग्रेज़ी शब्द Wordology पर अपना आग्रह तो छोड़

दिया किंतु 'शब्दविज्ञान' तब से प्रयुक्त करता आ रहा हूँ, और इधर मैंने पाया है कि मेरे आधार पर कई अन्य लोग भी भाषाविज्ञान की एक शाखा के रूप में 'शब्दविज्ञान' का प्रयोग कर रहे हैं। यों उसके साथ एक स्थान पर मैंने Wordology का भी कोष्ठक में प्रयोग देखा है।

तो यह है भाषाविज्ञान की एक शाखा के रूप में 'शब्दविज्ञान' नाम की कहानी और उसका औचित्य।

इस तरह ध्वनिविज्ञान, रूपविज्ञान तथा अर्थविज्ञान की तरह ही शब्दविज्ञान भी भाषाविज्ञान की एक शाखा है और प्रस्तुत पुस्तक का संबंध इस नई शाखा से ही है।

शब्दविज्ञान का प्रतिपाद्य

शब्दविज्ञान, चूँकि शब्दों के अध्ययन का विज्ञान है, अतः शब्दों से संबद्ध सभी प्रकार के अध्ययन इसमें समाहित किए जा सकते हैं। इस दृष्टि से 'शब्द की परिभाषा', 'शब्दों का वर्गीकरण', 'शब्दरचना', 'शब्दार्थ और उसमें परिवर्तन', 'शब्दों की व्युत्पत्ति', 'शब्द समूह और उसमें परिवर्तन', 'नामों का अध्ययन', 'ध्वनि की दृष्टि से शब्दों का अध्ययन', 'शब्दकोशविज्ञान', तथा प्रयोग और समाज की दृष्टि से शब्दों पर विचार आदि इसके प्रतिपाद्य या वर्ण्यविषय हैं।

शब्दविज्ञान की शाखाएँ

उपर्युक्त बातों को दृष्टि में रखते हुए शब्दविज्ञान की मुख्यतः निम्नांकित शाखाएँ मानी जा सकती हैं—

शब्दरचनाविज्ञान

इसमें शब्दों के निर्माण या उसकी रचना का अध्ययन होता है। कहना न होगा कि भाषा में शब्द दो प्रकार के होते हैं : रूढ़ और यौगिक। शब्दनिर्माण-विज्ञान में प्रायः यौगिक शब्दों की रचना का अध्ययन होता है किंतु रूढ़ शब्दों का अध्ययन भी इस रूप में हो सकता है कि वे शब्द कैसे बन गए।

शब्दार्थविज्ञान

इसमें 'शब्दार्थ क्या है', 'वह कितने प्रकार का होता है', 'उसमें परिवर्तन किन-किन कारणों से तथा कितने प्रकार का होता है' आदि शब्द के अर्थ-संबंधी अनेकानेक प्रकार की बातों का अध्ययन किया जा सकता है। यह संकेत्य है कि अर्थ केवल शब्द का ही नहीं होता, शब्द के अतिरिक्त शब्द से बड़ी भाषिक इकाई का भी होता है, और ऐसा भी होता है कि शब्द से बड़ी इकाई का कोई अर्थ हो जो उसमें प्रयुक्त शब्दों में न हो। उदाहरण के लिए Is, Ram तथा going इन तीनों में 'क्या' का अर्थ नहीं है किंतु Is Ram going ? वाक्य में, इसके घटकों

(तीन पदों) के अतिरिक्त 'क्या' का भी अर्थ है। इस तरह शब्दार्थ पूरे भाषार्थ का एक अंग है, और मात्र उसी का अध्ययन शब्दार्थविज्ञान में होता है। इसके विपरीत अर्थविज्ञान में शब्द, पद, पदबंध, वाक्य, प्रोक्ति आदि सभी का अर्थ-संबंधी अध्ययन आ जाता है।

शब्दसमूहविज्ञान

किसी व्यक्ति, भाषा या बोली द्वारा प्रयुक्त होने वाले या हुए शब्दों के समूह को शब्दसमूह (Vocabulary) या शब्दभाण्डार कहते हैं। किसी (व्यक्ति, भाषा या बोली, पुस्तक आदि) का शब्दसमूह कैसा है, उसके कौन-कौन से घटक हैं तथा उसमें क्या कभी परिवर्तन हुए हैं, यदि हुए हैं तो कब-कब हुए हैं तथा किन कारणों से हुए हैं आदि बातों का अध्ययन शब्दसमूहविज्ञान का प्रतिपाद्य माना जा सकता है।

नामविज्ञान

वैसे तो प्रत्येक संज्ञा शब्द किसी-न-किसी के नाम होते हैं, किंतु नामविज्ञान का संबंध प्रायः व्यक्तिवाचक संज्ञाओं से है। इसमें व्यक्तिनाम, स्थाननाम, नदी-नाम, पर्वतनाम आदि व्यक्तिवाचक संज्ञाओं या नामों का अध्ययन किया जाता है। यह अध्ययन शुद्ध भाषिक दृष्टि से भी हो सकता है तथा सांस्कृतिक दृष्टि से भी। इसमें नामों का निर्माण या उनकी रचना, उनका अर्थ तथा उनकी व्युत्पत्ति आदि पर विचार किया जाता है अतः 'शब्द' से संबंधित शब्दनिर्माणविज्ञान, शब्दार्थविज्ञान तथा व्युत्पत्तिविज्ञान आदि भी अंशतः इसमें आते हैं।

शब्दध्वनिविज्ञान

भाषा के ध्वनीय घटकों का अध्ययन शब्द के स्तर पर भी हो सकता है तथा शब्द से बड़ी भाषिक इकाई के स्तर पर भी। उदाहरण के लिए हिंदी में अनुतान (Intonation) का अध्ययन शब्द-स्तर पर न होकर वाक्य के स्तर पर होता है। ऐसे ही बहुत-सी संधियाँ ऐसी हैं जो हिंदी में शब्द-स्तर पर नहीं मिलतीं, अपितु वाक्य-स्तर पर मिलती हैं। जैसे आध+सेर=आस्सेर, मार+डाला=माड्-डाला। शब्दध्वनिविज्ञान से मेरा आशय है शब्द के स्तर पर किसी भाषा की ध्वनियों का अध्ययन। इसे वर्ड फ़ोनालॉजी (Word Phonology) का समानार्थी माना जा सकता है। तो इस प्रकार ध्वनि की दृष्टि से शब्द का अध्ययन शब्द-ध्वनिविज्ञान है।

व्युत्पत्तिविज्ञान

इसमें सभी प्रकार के शब्दों की व्युत्पत्ति का अध्ययन किया जाता है। यह ध्यान देने की बात है कि संस्कृत में उपसर्ग, प्रत्यय और धातु से जो शब्दों की

व्युत्पत्ति दी जाती है, वह तत्त्वतः आधुनिक अर्थों में व्युत्पत्ति न होकर शब्द-रचना है। व्युत्पत्ति से आशय है किसी शब्द का उद्‌भव और उसका अर्थ, ध्वनि तथा एक भाषा से दूसरी भाषा में जाने आदि का पूरा इतिहास।

शब्दकोशविज्ञान

यह शब्दों का कोश बनाने का विज्ञान है जो शब्दों के उच्चारण, उनकी व्याकरणिक कोटियाँ, व्युत्पत्ति तथा अर्थ आदि से संबद्ध है। यह संकेत्य है कि कोश-विज्ञान और शब्दकोशविज्ञान पूर्णतः एक नहीं हैं। क्योंकि कोश तो शब्द से अलग अन्यों (लोकोक्तिकोश, उद्धरणकोश, प्रयोगकोश) का भी हो सकता है, इसी-लिए यहाँ 'कोशविज्ञान' का प्रयोग न करके 'शब्दकोशविज्ञान' का प्रयोग किया जा रहा है।

शब्दप्रयोगविज्ञान

इसका संबंध शब्दों के प्रयोग से है। प्रत्येक भाषा में शब्दों के प्रयोग के विषय में कुछ सतर्कताएँ बरतनी पड़ती हैं। उदाहरण के लिए, प्रत्येक भाषा में कुछ शब्द तो ऐसे होते हैं जिनके प्रयोग के संबंध में ऐसा कुछ बहुत निश्चित नहीं होता कि उनका प्रयोग किन शब्दों के साथ करें तथा किनके साथ न करें। दूसरी ओर कुछ शब्दों के संबंध में ऐसे नियम होते हैं। उदाहरण के लिए 'भोजन' और 'खाना' हिंदी में संज्ञा पर्याय हैं, किंतु जहाँ तक क्रिया शब्द का प्रश्न है 'भोजन' के साथ 'करना' का प्रयोग होता है (मैंने भोजन किया) तो 'खाना' के साथ 'खाना' का (मैंने खाना खाया)। यदि कोई व्यक्ति मैंने 'भोजन खाया' तथा मैंने 'खाना किया' प्रयोग करे तो प्रयोग की दृष्टि से अशुद्ध होगा। दो भाषाओं में भी इस प्रकार के अन्तर मिलते हैं। अंग्रेज़ी में 'रेडियो' के साथ 'प्ले' (खेलना) चलता है किंतु हिंदी में 'रेडियो' के साथ 'खेलना' का प्रयोग नहीं होता, 'बजाना' का होता है। इसी प्रकार पर्यायों में अन्तर, वचन और लिंग का ध्यान आदि भी शब्द-प्रयोग की दृष्टि से विवेच्य विषय हैं।

समाजशब्दविज्ञान

समाज के परिप्रेक्ष्य में या समाज की जानकारी के लिए शब्दों का अध्ययन समाजशब्दविज्ञान का विषय है।

2
शब्द

व्युत्पत्ति

'शब्द' का मूल अर्थ है 'ध्वनि'। इसकी व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में पर्याप्त मत-भेद हैं। 'शप्', 'शब्द्', आदि एक से अधिक धातुओं से इसका सम्बन्ध जोड़ा जाता है। अधिक प्रचलित मत यह है कि शब्द का सम्बन्ध 'शब्द्' धातु से है (शब्द् + घञ्), जिसका अर्थ है 'शब्द करना', 'ध्वनि करना' या 'बोलना' आदि। यों कुछ लोग 'शब्द' को 'शब्द' से बनी नामधातु भी मानते हैं। अंग्रेज़ी शब्द word (डच woord, जर्मन wort, गोथिक waurd, आइसलैंडिक orth, लैटिन verbum) का सम्बन्ध भी 'बोलना' या 'ध्वनि करना' से है। अरबी 'लफ़्ज़' भी मूलतः 'मुँह से फेंका हुआ' या 'ध्वनि किया हुआ' या 'बोला हुआ' है। इस प्रकार 'शब्द' के विभिन्न भाषाओं में प्राप्त पर्याय भी मूलतः एक-दूसरे से बहुत दूर नहीं हैं।

परिभाषा

संसार की सभी भाषाओं को दृष्टि में रखते हुए शब्द की सभी दृष्टियों से पूर्ण परिभाषा देना प्रायः असम्भव-सा है। इस विषय पर विचार करते हुए येस्पर्सन, वेन्द्रिये, डैनियल जोन्स तथा उल्डल आदि अनेक विद्वानों ने इस असमर्थता को स्पष्ट शब्दों में स्वीकार किया है। इस असम्भवता के बावजूद शब्द की अनेकानेक परिभाषाएँ दी गई हैं। पतंजलि कहते हैं, 'श्रोत्रोपलब्धिर्बुद्धिनिर्ग्राह्यः प्रयोगेणाभिज्वलितः आकाशदेशः शब्दः।' अर्थात् शब्द, कान से प्राप्य, बुद्धि से ग्राह्य, प्रयोग से प्रस्फुरित होने वाली आकाशव्यापी ध्वनि है। पतंजलि ने विस्तार से भी 'शब्द' पर विचार किया है, जिसके निष्कर्षस्वरूप कहा जा सकता है उनकी दृष्टि में उच्चरित, श्रव्य, बुद्धिग्राह्य और अर्थबोधक ये चार विशेषण शब्द की विशिष्टता की ओर संकेत करते हैं। दूसरे शब्दों में शब्द वह है जो उच्चरित, श्रव्य, बुद्धिग्राह्य और अर्थबोधक हो। पतंजलि एक स्थान पर कहते हैं—'प्रतीतपदार्थको लोके ध्वनिः शब्दः'। अर्थात् वह ध्वनि जिससे व्यवहार या लोक में पद के अर्थ की प्रतीति हो, शब्द है। 'शृंगार प्रकाश' में आता है, 'येनोच्चारितेन अर्थः प्रतीयते सः शब्दः। अर्थात् जिसके बोलने से अर्थ की प्रतीति हो, वह (ध्वनि) शब्द है।

पश्चिम[1] में भी इस दृष्टि से काफ़ी प्रयास हुए हैं। पामर शब्द को ऐसी लघुतम भाषिक इकाई मानते हैं जो एक पूर्ण उच्चार के रूप में काम कर सके। उल्मैन इसे भाषा की लघुतम महत्त्वपूर्ण इकाई कहते हैं। एनट्विसल शब्द को विचार और अर्थ की स्वतन्त्र इकाई मानने के पक्ष में हैं। मेये इसे अर्थ और ध्वनि-समूह का ऐसा योग मानते हैं जिसका व्याकरणिक प्रयोग हो सके। ब्लूमफ़ील्ड इसे भाषा का लघुतम मुक्त रूप कहते हैं। राबर्ट्सन और कैसिडी शब्द को वाक्य में लघुतम स्वतन्त्र इकाई मानते हैं। स्वीट इसे लघुतम आर्थिक इकाई कहते हैं। अनेक अन्य विद्वानों ने भी ऐसी ही या इससे मिलती-जुलती बातें कही हैं।

अब तक हम लोग 'शब्द' के विषय में विभिन्न भारतीय तथा अभारतीय विद्वानों की परिभाषाओं से परिचित होते रहे, अच्छा हो कि पहले शब्द की भाषा में स्थिति देखें, फिर शब्द की विशेषताओं पर विचार करें और तब उन विशेषताओं के आधार पर शब्द को परिभाषित करें।

वस्तुतः भाषा दो के योग से बनी होती है। एक तो होते हैं शब्द, और दूसरे होते हैं व्याकरण के वे नियम, जिनके आधार पर इन शब्दों की सहायता से भाषा का भवन खड़ा होता है। किसी भाषा में प्रयुक्त इन शब्दों के समूह को 'शब्दसमूह' कहा जाता है तथा इन नियमों के समूह को 'व्याकरण'। यह ध्यान देने की बात है कि व्याकरण के नियम सीमित होते हैं तथा उनमें सामान्यतः जल्दी कोई परिवर्तन नहीं होता। इसके विपरीत भाषाओं के शब्दों की संख्या में आवश्यकतानुसार हमेशा वृद्धि होती रहती है, तथा शब्दसमूह बहुत जल्दी-जल्दी परिवर्तित होता रहता है। हम विभिन्न स्रोतों से शब्द ग्रहण करते रहते हैं। उदा-

1. Palmer—The smallest speech-unit capable of functioning as a complete utterance.

Ulman—The smallest significant unit of language.

Entwistle—A word is an autonomous unit of thought and sense. It 'results from the association of a given meaning with a given grammatical employment' or is 'a complex of sounds which in itself possesses a meaning fixed and accepted by convention or is 'the smallest thought unit vocally expressible.'

Maillet—A word is the result of the association of a given meaning with a given combination of sounds, capable of a given grammatical use.

Robertson तथा Cassidy—Tne smallest independent unit within the sentence.

Sweet—An ultimate sense-unit.

हरण के लिए, हिंदी की ही बात लें तो 1900 से अब तक हमारे व्याकरणिक नियमों में कोई बहुत परिवर्तन नहीं हुआ है, किंतु हमारे शब्दसमूह में बहुत परिवर्तन हुआ है, और होता जा रहा है। एक ओर तो अरबी-फ़ारसी, अंग्रेज़ी, संस्कृत तथा अपनी बोलियों से शब्द लेकर हमने उसमें अभूतपूर्व वृद्धि की है, तो दूसरी ओर नई संकल्पनाओं के लिए नए शब्दों का निर्माण करके हमने उसे बढ़ाया है। इस तरह शब्दसमूह भाषा का नित विवर्द्धमान अंग है तो व्याकरण के नियम प्रायः अविवर्द्धमान।

शब्द की प्रमुख विशेषताएँ निम्नांकित हैं :

(क) भाषा में वाक्य होते हैं, और वाक्य शब्दों से बनते हैं, इस तरह 'शब्द' भाषा की एक इकाई है।

(ख) प्रत्येक 'शब्द' का कोई-न-कोई अर्थ होता है।

(ग) भाषा के वाक्य, उपवाक्य, पदबंध, पद, शब्द आदि इकाइयों में 'शब्द' लघुतम होता है।

(घ) 'शब्द' भाषा की स्वतंत्र इकाई होता है। उपसर्ग या प्रत्यय की तरह उसके लिए किसी के साथ जुड़कर आना आवश्यक नहीं।

उपर्युक्त विशेषताओं के आधार पर 'शब्द' की परिभाषा कुछ इस प्रकार दी जा सकती है—

भाषा की सार्थक, लघुतम और स्वतंत्र इकाई को 'शब्द' कहते हैं।

इस परिभाषा में निम्नांकित बातें ध्यान देने की हैं—

(क) शब्दों का अर्थ होता है, अतः वे सार्थक होते हैं। यदि गहराई से देखें तो यह सार्थकता भी मूलतः दो प्रकार की होती है : विचारपरक और प्रकार्य-परक (फंक्शनल)। विचारपरक सार्थकता वहाँ होती है, जहाँ शब्द का कोई स्पष्ट अर्थ होता है। उदाहरण के लिए, 'मोहन घर जा रहा है' में 'जा' की सार्थकता विचारपरक है। उससे राम के एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने का विचार व्यक्त किया गया है। इसके विपरीत 'मोहन से यह बात कही जा सकती है' वाक्य में 'जा' की स्थिति वह नहीं है। 'जा' यहाँ सार्थक तो है किंतु उसकी सार्थकता विचारपरक नहीं है, क्योंकि यहाँ जाने का भाव या विचार नहीं है। तत्त्वतः यह 'जा' कर्मवाच्य का द्योतक है, इस प्रकार यह प्रकार्यपरक है। ऐसे ही 'मैं वहाँ जाता हूँ' का 'जा' विचारपरक है तो 'मुझसे बोला नहीं जाता' में 'जा' प्रकार्यपरक नहीं है। यह 'जा' भाववाच्य का प्रकार्य (फंक्शन) कर रहा है।

(ख) ऊपर 'शब्द' के सार्थक होने की बात कही गई है, किंतु सार्थक तो वाक्य, उपवाक्य, पदबंध तथा पद भी होते हैं। अब प्रश्न यह उठता है कि जब ये सभी सार्थक होते हैं तो 'शब्द' को अन्यों से कैसे अलगाएँ। इसके लिए हमें कहना पड़ता है कि शब्द लघुतम होते हैं। अर्थात् वाक्य, उपवाक्य, पदबंध, पद तथा शब्द में सबसे छोटे 'शब्द' ही होते हैं। उदाहरण के लिए 'मोहन के भाई का मित्र मिला था' वाक्य में 'भाई' एक शब्द है। इस शब्द से बड़ा 'भाई का' पद या रूप

है। ऐसे ही यह पूरा वाक्य या 'मोहन के भाई का मित्र' पदबंध भी इस भाई शब्द से बड़े हैं। इस तरह शब्द सबसे छोटा होता है।

(ग) तो हमने देखा कि 'शब्द', 'लघुतम सार्थक इकाई' होता है, किंतु गहराई से देखें तो 'उपसर्ग' और 'प्रत्यय' भी भाषा की इकाई हैं, ये छोटे भी होते हैं तथा सार्थक भी। अब प्रश्न यह उठता है कि 'शब्द' को इन दोनों से कैसे अलग करें। वस्तुत: 'शब्द' को इन दोनों से अलग मानने का आधार प्रयोग है। उपसर्ग सर्वदा ही किसी शब्द के पहले जुड़कर प्रयुक्त होता है, स्वतंत्र रूप से नहीं। जैसे 'लापता' में 'ला' या 'अलौकिक' में 'अ' तथा 'बेजान' में 'बे'। ऐसे ही प्रत्यय सर्वदा ही किसी शब्द के अंत में जुड़कर आता है। उदाहरणार्थ 'सुन्दरता' में 'ता' या 'बड़ाई' में 'आई' या 'दयालु' में 'आलु' आदि। किंतु शब्द के लिए इस प्रकार जुड़कर आना अनिवार्य नहीं है। ऊपर के उदाहरणों में ही देखें तो 'पता', 'लौकिक', 'जान', 'सुन्दर', 'बड़ा' या 'दया' स्वतंत्र भी आ सकते हैं। इस तरह शब्द 'स्वतंत्र' होते हैं किंतु उपसर्ग तथा प्रत्यय परतंत्र।

इस प्रसंग में इतना और जोड़ देना उपयुक्त होगा कि शब्द मूलत: स्वतंत्र या मुक्त होते हैं, और उनका प्रयोग प्राय: अलग-अलग ही होता है, किंतु किसी अपेक्षाकृत बड़े शब्द की रचना के लिए शब्द, किसी अन्य शब्द के आदि ('डाकघर' में 'डाक'), मध्य ('समाजभाषाविज्ञान' में 'भाषा') तथा अंत ('राजनीति' में 'नीति') में भी आ सकते हैं। कहना न होगा कि इस प्रकार किसी बड़े शब्द का अंग बनने से मूल 'शब्द' की मुक्तता या स्वतंत्रता में कोई अन्तर नहीं पड़ता।

शब्द बनाम पद या रूप

सामान्यत: 'शब्द' तथा पद/रूप को एक ही माना जाता है। यदि किसी से पूछा जाए कि 'मैंने उसे पीटा' वाक्य में कितने शब्द हैं और वे कौन-कौन से हैं, तो उत्तर मिलेगा, इसमें तीन शब्द हैं : 'मैंने', 'उसे' तथा 'पीटा'। किंतु, वास्तविकता यह नहीं है। इसमें तीन शब्द हैं : 'मैं', 'वह' तथा 'पीट्। 'मैंने', 'उसे' तथा 'पीटा' शब्द न होकर पद या रूप हैं। 'शब्द' तथा रूप/पद में अंतर है। शब्द का केवल अर्थ होता है। उसमें केवल अर्थतत्त्व होता है। इसके विपरीत पद में अर्थतत्त्व तो होता ही है, इसके अतिरिक्त उसमें सम्बन्धतत्त्व भी होता है, जिसके कारण वह वाक्य के अन्य पदों के साथ अपना सम्बन्ध स्पष्ट कर सकता है। ऊपर के उदाहरण में 'मैंने' पद में 'मैं' शब्द है तो 'ने' सम्बन्धतत्त्व है। दोनों मिलकर 'मैंने' कर्त्ताकारक का रूप बना है। इस तरह शब्द से वाक्य नहीं बनते, पद से वाक्य बनते हैं। उदाहरण के लिए 'राम रावण बाण मार' वाक्य नहीं है, क्योंकि ये चारों शब्द हैं। यदि इनमें संबंधतत्त्व जोड़ दें तो ये शब्द पद बन जाएँगे और तब यह एक ठीक वाक्य बन जाएगा : राम+ने रावण+को बाण+से मार्+आ=राम ने रावण को बाण से मारा। 'ने' जोड़ने से 'राम ने' कर्त्ता कारक का

रूप बन गया है। ऐसे ही 'रावण को' कर्म कारक तथा 'बाण से' संबंध कारक के रूप हैं। इस तरह कारकीय रूप तथा क्रिया-रूप पद या रूप होते हैं। शब्द में ने, को आदि कारकचिह्न या धातु में विभिन्न प्रकार के प्रत्यय जोड़कर रूप की रचना की जाती है। इसीलिए ऊपर 'पद' को शब्द से बड़ी इकाई कहा गया है। कुछ शब्दों और पदों को देखने से 'पद' के शब्द से बड़े होने का अनुमान लग जाएगा : भाई—भाई ने, बहन—बहन को, लाठी—लाठी से, घर—घर में, देख—देखा, खा—खाओ। यों अपवादतः कभी-कभी ऐसे पद भी मिलते हैं जो शब्द जैसे ही होते हैं। उदाहरण के लिए 'भाई' शब्द है किंतु 'भाई आएगा' में 'भाई' पद या रूप है, कर्त्ता कारक का रूप। या 'जा' धातु शब्द है, किंतु 'तू जा' वाक्य में 'जा' धातु न होकर आज्ञा का रूप है। ऐसे स्थानों पर शून्य संबंधतत्त्व की कल्पना की गई है। अर्थात् भाई (शब्द)+शून्य संबंधतत्त्व=भाई (पद) या जा+शून्य=जा (आज्ञा का रूप)। इस तरह 'शब्द' में सामान्यतः माने जाने वाले शब्द भी आते हैं तथा धातुएँ भी, तथा 'शब्द' और 'पद' या 'रूप' एक नहीं होते। दोनों में स्पष्ट अंतर होता है।

3

शब्दों का वर्गीकरण

कुछ प्राचीन-अर्वाचीन प्रयास

शब्दों का वर्गीकरण, शब्दों के अध्ययन का एक महत्त्वपूर्ण अंग है। विश्व की अनेक भाषाओं में अनेक दृष्टियों से शब्दों का वर्गीकरण किया गया है। भारतवर्ष में प्राचीनतम वैज्ञानिक वर्गीकरण यास्क मुनि का माना जाता है (यद्यपि इसके पूर्व भी शुभ-अशुभ, साधु-असाधु रूप में शब्द-वर्गीकरण किया जाता था), जो उनके निरुक्त में मिलता है। यास्क (8वीं सदी ई० पू०) के अनुसार शब्द चार प्रकार के होते हैं—चत्वारि पदजातानि नामाख्याते चोपसर्गनिपाताश्च (1.1) अर्थात् नाम, आख्यात, उपसर्ग, निपात। स्पष्ट ही यह वर्गीकरण व्याकरणिक या वाक्य में प्रयोग पर आधारित है। आज तक जितने भी शब्द-वर्गीकरण किये गये हैं, उनमें इसका महत्त्वपूर्ण स्थान है तथा कुछ दृष्टियों से यह सर्वाधिक वैज्ञानिक भी है। वाजसनेयी प्रातिशाख्य में भी शब्द चार प्रकार के माने गये हैं—तिङ्, कृत्, तद्धित, समास। कुछ अन्य प्रातिशाख्यों में भी इस प्रकार के संकेत मिलते हैं। पाणिनि (5वीं सदी ई० पू०) के अनुसार शब्दों के दो ही प्रमुख वर्ग हैं—सुबन्त और तिङन्त। यास्क का 'आख्यात' क्रिया शब्दों के लिए आया है, जिसे पाणिनि 'तिङन्त' कहते हैं। यास्क के शेष तीन अर्थात् नाम, उपसर्ग, निपात् पाणिनि के सुबन्त के अन्तर्गत आ जाते हैं। यों प्रयोगतः केवल 'नाम' ही सुबन्त है। इस प्रकार अव्यय को भी पाणिनि सुबन्त के अन्तर्गत (अष्टाध्यायी 2-4-82) रखते हैं, यद्यपि यह बहुत ठीक नहीं हैं। संस्कृत प्रयोगों को देखते हुए शब्द के सुबन्त, तिङन्त, अव्यय ये तीन भेद मानना कदाचित् अधिक समीचीन हो सकता है। महाभाष्यकार ने शब्दों के लौकिक और वैदिक दो भेद माने हैं। कुछ संस्कृत वैयाकरणों (भोज, शृंगार-प्रकाश) ने शब्दों के प्रकृति, प्रत्यय, उपस्कार, उपपद, प्रातिपदिक, विभक्ति, उपसर्जन, समास, पद, वाक्य और प्रबन्ध—ये 12 भेद माने हैं। अर्थ के आधार पर अपने यहाँ वाचक, लक्षक और व्यंजक तीन प्रकार के शब्द माने गये हैं। इसी प्रकार इतिहास के आधार पर तत्सम आदि भेद भी किए गए हैं।

पश्चिम में व्याकरणिक दृष्टि से शब्द आठ वर्गों (eight parts of speech) में विभाजित किए गए हैं—संज्ञा (noun), सर्वनाम (pronoun), विशेषण

(adjective), क्रिया (verb), क्रियाविशेषण (adverb), समुच्चयबोधक (conjunction), संबंधसूचक (preposition), तथा विस्मयादिबोधक (interjection)। यह वर्गीकरण अंग्रेज़ी का है। अन्य योरोपीय भाषाओं में भी प्रायः इन्हीं को स्वीकार किया गया है। जैसा कि येस्पर्सन ने कहा है, यह वर्गीकरण व्यावहारिक तो है, किन्तु तात्त्विक या वैज्ञानिक नहीं है। इसी कारण इस पर विचार करते हुए विद्वानों ने आठ के स्थान पर दो, चार तथा नौ आदि वर्ग मानने के सुझाव दिये हैं। इन आठ वर्गों का विकास मूलतः प्लेटो के वर्गीकरण के आधार पर हुआ था। अरस्तू ने भी कई रूपों में शब्दों का वर्गीकरण किया था, जैसे रचना के आधार पर सरल (इसी को हिन्दी में रूढ़ या रूढ़ि कहते हैं) तथा यौगिक (यह संस्कृत या हिन्दी के यौगिक के समान है)। इसी प्रकार प्रचलन, व्यंजना तथा अर्थ आदि के आधार पर भी अरस्तू ने प्रचलित-अप्रचलित, लाक्षणिक, आलंकारिक, नव-निर्मित, व्याकुंचित, संकुचित या परिवर्तित आदि भेद किये हैं। येस्पर्सन ने इस पर विचार करते हुए शब्द को प्रायोगिक या व्याकरणिक दृष्टि से, (1) नाम या संज्ञा (substantatives), (2) विशेषण, (3) सर्वनाम, (4) क्रिया, तथा (5) अव्यय (जिसमें वे प्रथम चार को छोड़कर भाषा के शेष सभी शब्दों को रखने के पक्ष में हैं)—इन पाँच वर्गों में रखने का विचार प्रकट किया है। रचना की दृष्टि से वे शब्दों को प्राइमरीज़ (primaries), ऐडजंक्ट्स (adjuncts) तथा सबजंक्ट्स (subjuncts)—इन तीन वर्गों में रखने के पक्ष में हैं।

कुछ और भी, इसी प्रकार के वर्गीकरण किये गये हैं।

वर्गीकरण का आधार

वर्गीकरण के पूर्व यह विचारणीय है कि किसी भाषा के शब्दों को वर्गीकृत करने के कितने आधार हो सकते हैं। वस्तुतः यदि गहराई और विस्तार से देखें तो इसके बहुत अधिक आधार हो सकते हैं, जिनमें से कुछ प्रमुख आधार तथा उनके आधार पर किए जानेवाले शब्द-वर्गीकरण निम्नांकित हैं।

(क) स्रोत या इतिहास

किसी भाषा में शब्द किस स्रोत से आया है, या उसका इतिहास क्या है, इस आधार पर भारतीय परंपरा के शब्दों का वर्गीकरण काफ़ी पहले से किया जाता रहा है। दूसरी सदी ई० पू० में भरत मुनि ने इस दिशा में प्रथम वैज्ञानिक प्रयास अपने नाट्यशास्त्र में किया :—

त्रिविधं तच्च विज्ञेयं नाट्ययोग ससम्मतम्।
समानशब्दैर्विभ्रष्टदेशीमतमथापि वा ॥

अर्थात् शब्द समान, विभ्रष्ट तथा देशीमत, ये तीन प्रकार के हैं। इन्हीं को आगे चलकर तत्सम, तद्भव तथा देशी या देशज कहा गया। बाद में इनमें एक

'विदेशी' वर्ग जोड़कर इतिहास के आधार पर शब्द चार प्रकार के माने गये। भारत के बाहर इस प्रकार के किसी निश्चित वर्गीकरण की परंपरा कदाचित् नहीं मिलती।

आगे इन चारों तथा इनसे संबद्ध उपवर्गों पर कुछ विस्तार से—विशेषतः हिन्दी के प्रसंग में—विचार किया जा रहा है।

तत्सम

इसका शाब्दिक अर्थ है 'उसके (तत्) समान (सम)' अर्थात 'संस्कृत के समान'। भरत ने अपने नाट्यशास्त्र में 'तत्सम' को 'समान' तथा कुछ अन्य लोगों ने इसे 'तद्रूप' कहा है। इस तरह 'तत्सम' वे शब्द हैं जो संस्कृत के समान हैं, अर्थात् जिनमें परिवर्तन नहीं हुए हैं। जैसे कृष्ण, दधि, आभीर, वधू, घोटक, सपत्नी, कर्म आदि। इस प्रसंग में यह बात भी उल्लेख्य है कि 'तत्सम' कहे जाने वाले सभी शब्द मूलतः संस्कृत के ही नहीं हैं। हुआ यह कि अन्य भाषाओं से भी आकर अनेक शब्द संस्कृत में ज्यों के त्यों या परिवर्तित रूप में गृहीत हुए और उनका प्रयोग होने लगा, फिर वे संस्कृत के मान लिये गये और आज वे भी तत्सम ही माने जाते हैं। जैसे 'गो', 'लौह' सुमेरी हैं; 'परशु' अक्कादी है; 'असुर' असीरियन है; 'कूप', 'शलाका' फ़िनो-उग्रिक हैं; 'कदली', 'बाण', 'तांबूल', 'पिनाक', 'गंगा', 'लिंग' आस्ट्रिक हैं; 'कला', 'गण', 'नाना', 'पुष्प', 'रात्रि', 'मर्कट', 'शव' 'द्रविड़ हैं; 'यवन', 'होडा', 'द्रम्म', 'क्रमेल' यूनानी हैं; 'रोमक', 'दीनार' लातीनी हैं; 'रमल', 'सहम' अरबी हैं; 'बालिश', 'निःशाण' ईरानी हैं; 'तुरुष्क', 'खच्चर' तुर्की हैं एवं 'मसार' तथा 'चीन' (चीनचोलक, चीनांशुक) चीनी हैं।

हिन्दी में स्रोत की दृष्टि से 'तत्सम' शब्द चार प्रकार के हैं :

(क) प्राकृतों (पालि, प्राकृत, अपभ्रंश) से होते आने वाले शब्द जैसे अचल, अघ, अचला, काल, कुसुम, जन्तु, दण्ड, दम आदि। इस वर्ग के शब्दों की संख्या काफ़ी बड़ी है। इनमें कुछ शब्द तो ऐसे हैं जो संस्कृत से परम्परागत रूप में प्राकृतों को मिले और जो विशिष्ट कारणों से अपने स्वरूप को अक्षुण्ण रख सके। दूसरे वे हैं जो संस्कृत के प्राकृतों पर प्रभावस्वरूप, प्राकृतों में प्रयुक्त हुए। अर्थात् आगत शब्द (loan word) रूप में संस्कृत से प्राकृतों में आये। ऐसे शब्दों के तद्भव रूप भी प्राकृतों में मिलते हैं।

(ख) संस्कृत से सीधे हिन्दी में भक्ति, आधुनिक आदि विभिन्न कालों में लिये गये शब्द, जैसे कर्म, विद्या, ज्ञान, क्षेत्र, कृष्ण, पुस्तक, मार्ग, मत्स्य, मद्य, मेघ, पुष्प, मृग, मधुर, कुशल आदि। ऐसे शब्दों की संख्या प्रथम वर्ग से भी बड़ी है। सर्वाधिक तत्सम शब्द सभी आधुनिक आर्य भाषाओं में इसी रूप में आये हैं।

(ग) संस्कृत के व्याकरणिक नियमों के आधार पर हिन्दीकाल में निर्मित तत्सम शब्द। इस प्रकार के अधिकांश शब्द आधुनिक काल में शब्दों की कमी

की पूर्ति के लिए बनाये गये हैं, और बनाये जा रहे हैं। जैसे जलवायु (आबहवा), वायुयान (हवाई जहाज़ या एरोप्लेन), सम्पादकीय (editorial), प्राध्यापक (lecturer), रेखाचित्र (sketch), प्रभाग (section), वाक्यविश्लेषण (sentence analysis), निदेशक (director), नगरपालिका (municipality), समाचारपत्र पत्राचार (correspondence), कटिबद्ध (फ़ा० कमरबस्ता) आदि। ऐसे शब्द इधर पारिभाषिक शब्दों के रूप में लाखों की संख्या में बने हैं।

(घ) अन्य भाषाओं से आये तत्सम शब्द। इस वर्ग के शब्दों की संख्या अत्यल्प है। कुछ थोड़े शब्द बंगाली तथा मराठी के माध्यम से आये हैं। इनमें कुछ शब्द तो ऐसे हैं जो संस्कृत में भी प्रयुक्त होते थे, और कुछ ऐसे हैं जो इन भाषाओं में संस्कृत के आधार पर बने। कुछ उदाहरण हैं: बंगाली वक्तृता, उपन्यास, गल्प, कविराज, संदेश, अभिभावक, निर्भर, तत्त्वावधान, अभ्यर्थना, आपत्ति, संभ्रान्त, स्वप्निल, उर्मिल, धन्यवाद; तथा मराठी : वाङ्‌मय, प्रगति आदि।

हिन्दी में प्रयुक्त होने वाले तत्सम शब्द संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, क्रिया तथा अव्यय हैं। संज्ञा शब्द प्रायः दो प्रकार के हैं :

(क) संस्कृत के प्रातिपदिक—जैसे राम, कृष्ण, फल, मित्र, कुसुम, पुस्तक, पत्र, पुष्प, देव, बालक, वृक्ष, मनुष्य आदि अकारान्त; कवि, हरि, मुनि, कृषि, कपि, यति, विधि, रवि, अग्नि, पति, रुचि, मति आदि इकारान्त; सुधी, लक्ष्मी आदि ईकारान्त; भानु, शत्रु, विष्णु, गुरु, धेनु, जन्तु, प्रभु, शिशु, पशु, साधु आदि उकारान्त; तथा वधू, चमू, भू, स्वयंभू आदि ऊकारान्त आदि।

(ख) संस्कृत के प्रथमा एकवचन—जैसे सखा, पिता, भ्राता, जामाता, दाता, नेता, कर्त्ता, माता, दुहिता, वणिक्, सम्राट्, आत्मा, ब्रह्मा, राजा, महिमा, युवा, हस्ती, करी, पक्षी, स्वामी, तपस्वी, सीमा, नाम, चर्म, विद्वान्, भगवान्, धनवान् आदि।

कुछ शब्द ऐसे भी हैं, जिनका प्रातिपदिक रूप एवं प्रथमा बहुवचन रूप एक ही होता है, अतः इन्हें उपर्युक्त दो में किसी में भी रखा जा सकता है। जैसे वारि, दधि, अस्थि, वस्तु, मधु, विद्या, रमा, बाला, निशा, कन्या, भार्या, नदी, स्त्री, जगत्, सुहृद् आदि।

सर्वनाम केवल दो ही बहुप्रयुक्त हैं जो षष्ठी एकवचन के रूप हैं : मम, तव।

विशेषण प्रायः केवल प्रातिपदिक रूप में ही प्रयुक्त होते हैं। जैसे तीव्र, नूतन, नव, नवीन, पुरातन, चिरन्तन, सुन्दर, श्वेत आदि।

तत्सम शब्दों के आधार पर कुछ क्रियाएँ भी बनी हैं, जैसे स्वीकारना।

हिन्दी में प्रयुक्त तत्सम अव्यय मुख्यतः तीन प्रकार के हैं :

(क) संस्कृत के समान—जैसे पृथक्, सहसा, धिक् आदि। ये इसी प्रकार संस्कृत में भी आते हैं तथा हिन्दी में भी।

(ख) संस्कृत के कई रूपों में एक—कुछ अव्यय ऐसे हैं, जो सन्धि के नियमों

आदि के कारण संस्कृत में तो कई रूपों में आते हैं, किन्तु हिन्दी में प्रायः उनमें एक रूप ही प्रयुक्त होता है। जैसे 'शनैः-शनैर्-शनैस्'। संस्कृत में ये तीनों मिलेंगे किन्तु हिन्दी में केवल 'शनैः' प्रयुक्त होता है। इसी प्रकार 'प्रातर्-प्रातस्-प्रातः' में हिन्दी में 'प्रातः' ही आता है। 'सायं-सायम्' में भी प्रायः 'सायं' हिन्दी में गृहीत है।

(ग) संस्कृत का मूल रूप—कुछ अव्यय ऐसे भी हैं जो संस्कृत में तो दूसरे रूप में आते हैं किन्तु हिन्दी में उनके रूप को न लेकर मूल को स्वीकार किया गया है। उदाहरणार्थ संस्कृत में अव्यय रूप में 'नित्यम्' ही आयेगा, 'नित्य' नहीं; किन्तु हिन्दी में 'नित्य' ही आयेगा 'नित्यम्' नहीं।

हिन्दी में कुछ ऐसे भी शब्द हैं जो वस्तुतः तत्सम नहीं हैं, किन्तु जिन्हें प्रायः तत्सम समझा जाता है। ऐसे शब्दों के दो वर्ग बनाए जा सकते हैं। प्रथम वर्ग ऐसे शब्दों का है जो संस्कृत प्रथमा एकवचन के रूप में से विसर्ग हटाकर हिन्दी में लिये गये हैं। जैसे 'अप्सरा'। संस्कृत में 'अप्सरा' कोई शब्द नहीं है। संस्कृत में इसका प्रातिपदिक है 'अप्सरस्' तथा प्रथमा एक० रूप है 'अप्सराः'। 'अप्सराः' का विसर्ग हटने से ही हिन्दी 'अप्सरा' बन गया है। चन्द्रमा, पथ, नभ, उर, मन, वय, रज, वक्ष, तम, यश, सर, शिर आदि भी ऐसे ही हैं। इन सभी का प्राति-पदिक है—स्-युक्त तथा प्रथमा एकवचन विसर्ग-युक्त। आयु, वपु का प्रातिपदिक है—ष्-युक्त तथा प्रथमा एक० रूप विसर्ग-युक्त। इस प्रकार ये तथा इस तरह के अन्य शब्द तत्त्वतः तत्सम नहीं हैं। दूसरी श्रेणी के शब्द ऐसे हैं जो कुछ अन्य प्रकार के परिवर्तनों के कारण तत्सम नहीं रह गये हैं (तत्सम रूप कोष्ठक के भीतर हैं): अन्तर्राष्ट्रीय (अन्तरराष्ट्रिय, कुछ विद्वानों का इस संबंध में मतभेद भी है), राष्ट्रीय (राष्ट्रिय), उपरोक्त (उपर्युक्त), प्रण (पण), संग्रहीत (संगृहीत), अनुग्रहीत (अनुगृहीत), क्षत्राणी (क्षत्रियाणी, क्षत्रिया), आधीन (अधीन), दृढ़ (दृढ), प्रौढ़ (प्रौढ), होड़ा (होडा), औषधि (औषधि, औषध), मनोकामना (मनःकामना) आदि। ऐसे सभी शब्दों को तत्समाभास कहा जा सकता है, क्योंकि इनमें तत्सम का आभास होता है। यों वस्तुतः ये शब्द तद्भव या परवर्ती तद्भव (जिन्हें प्रायः अर्ध-तत्सम कहा जाता है) हैं।

तत्सम शब्द की तत्समता

संस्कृत, प्राकृत आदि के प्राचीन आचार्यों से लेकर आधुनिक भाषाशास्त्रियों तक, सभी ने 'तत्सम' को 'संस्कृत के समान' के रूप में स्वीकार किया है, किन्तु मुझे लगता है कि यह नामकरण बहुत सोच-समझकर नहीं किया गया है। जिन शब्दों को तत्सम कहा जाता है उनमें, यदि, वैज्ञानिक दृष्टि से देखा जाय तो 'तत्समता' से अधिक 'अतत्समता' है। दूसरे शब्दों में वे प्रायः कम बातों में संस्कृत के समान हैं, और अधिक बातों में संस्कृत के असमान हैं। अपने दृष्टिकोण को स्पष्ट करने के लिए मैं इस समस्या को कुछ विस्तार से ले रहा

हूँ। 'शब्द' के दो पक्ष होते हैं। एक तो आभ्यन्तर पक्ष, जिसे उसका 'अर्थ' कहते हैं, और जो शब्द की 'आत्मा' कहलाने का अधिकारी है, तथा दूसरा बाह्य पक्ष, जिसमें उसका बाह्य रूप या उसमें प्रयुक्त ध्वनियाँ आती हैं, और जिसे शब्द का 'शरीर' कह सकते हैं। शब्द के इन दोनों पक्षों—आत्मा और शरीर—को दृष्टि में रखकर हम कह सकते हैं कि सच्चे अर्थों में कोई शब्द 'तत्सम' कहलाने का अधिकारी तभी है, जब वह आत्मा एवं शरीर दोनों ही दृष्टियों से संस्कृत के समान हो। किन्तु तथ्य यह है कि इस रूप में बहुत ही कम शब्द समान मिलेंगे। पहले अर्थ या शब्द की आत्मा की बात ली जाय। हिन्दी में अनेक तत्सम कहलाने वाले शब्द ऐसे हैं जिनका अर्थ संस्कृत के समान नहीं है। उदाहरण के लिए हिन्दी में दो शब्द हैं : 'जंघा' और 'जाँघ'। प्रचलित परिभाषा के अनुसार पहला तत्सम है और दूसरा तद्भव है। 'जंघा' शब्द वैदिक तथा लौकिक संस्कृत, दोनों में मिलता है, किन्तु उसका अर्थ 'जाँघ' न होकर 'घुटने और टखने के बीच का भाग' होता है। इस तरह संस्कृत एवं हिन्दी 'जंघा' में अर्थ की असमानता है। अर्थात् अर्थ की दृष्टि से हिन्दी में 'जंघा' तत्सम नहीं है, यद्यपि माना जाता है। शीर्षक (सं० अर्थ 'सिर'; हि० अर्थ heading), पतंग (सं० अर्थ सूर्य, पक्षी, शलभ, हि० अर्थ 'गुड्डी' भी), पदवी (सं० अर्थ रास्ता, पथ; हिन्दी अर्थ उपाधि आदि), प्रणाली (सं० अर्थ नाली; हिन्दी अर्थ ढंग, पद्धति), कटि (सं० अर्थ कूल्हा, नितम्ब, हिन्दी अर्थ कमर), निर्भर (सं० अर्थ बहुत अधिक, पूर्ण, भरा; हिन्दी आश्रित, अवलम्बित, मुनहसर भी), प्रान्त (सं० अर्थ सीमा, अन्त, किनारा, कोना; हिन्दी अर्थ सूबा भी), परिवार (संस्कृत अर्थ घेरने वाला, नौकर-चाकर-समूह, अनुयायी, म्यान ; हि० अर्थ कुटुम्ब), सूची (सं० अर्थ सूई ; हि० अर्थ तालिका भी), तथा त्रुटि (सं० अर्थ टूट, टूटना ; हि० अर्थ भूल, दोष) आदि शब्द भी इसी प्रकार के हैं।

जहाँ तक शब्दों के शरीर या उनमें प्रयुक्त ध्वनियों में तत्समता का संबंध है, यह एक मोटी बात ध्यान में रखने की है कि विश्व में कोई भी दो भाषाएँ या बोलियाँ ऐसी न होंगी जिनकी ध्वनियाँ एक-दूसरे के पूर्णतः समान हों। संस्कृत-हिन्दी भी इस सामान्य नियम का अपवाद नहीं मानी जा सकतीं। यदि इस समस्या को बहुत गहराई से न भी लें तो भी कुछ अन्तर तो बहुत ही स्पष्ट हैं, जैसे 'ऋ' ध्वनि पहले स्वर थी, अब वह 'रि' है; 'ष' पहले 'मूर्द्धन्य ध्वनि थी, अब वह तालव्य 'श' में प्रायः समाहित हो गई है; अन्त्य 'अ' पहले उच्चरित था, अब प्रायः नहीं है; 'ण' अब बहुत कुछ 'ड़ँ' हो गया है; 'ञ' ध्वनि 'न' या 'यँ' सी हो गई है तथा 'ऐ', 'औ' वैदिक संस्कृत में 'आइ', 'आउ' थे, लौकिक संस्कृत में 'अइ', 'अउ', किन्तु अब ये 'अए', 'अओ' या मूल स्वर हैं। ऐसे अन्तरों की सूची और भी बढ़ाई जा सकती है। निष्कर्षतः तत्सम कहलाने वाले शब्द ध्वनि की दृष्टि से भी तत्सम नहीं हैं। कृष्ण, राम, चंचल, शेष, ऋण, शाप जैसे शब्द आज के उच्चारण में क्रिश्ड़ँ, राँम्, चन्चल, शेश्, रिड़्ँ, शाप् हैं। इस

प्रकार शब्द की आत्मा अर्थात् अर्थ एवं शरीर अर्थात् ध्वनि, दोनों ही दृष्टियों से तथाकथित तत्समों की तथाकथित तत्समता वैज्ञानिक दृष्टि से काफ़ी चिन्त्य है। मुझे तो पूरा विश्वास है कि तत्सम माने जाने वाले शब्दों में बहुत ही कम होंगे, जिन्हें तत्सम नाम का वास्तविक अधिकारी कहा जा सके।

अर्धतत्सम

तत्सम के प्रसंग में 'अर्धतत्सम' भी विचारणीय है। इसका प्रयोग ग्रियर्सन, चटर्जी आदि आधुनिक काल के भाषा-शास्त्रियों ने उन शब्दों के लिए किया है जो एक प्रकार से तत्सम एवं तद्भव के बीच में हैं। तद्भव वे हैं जो संस्कृत से पालि, प्राकृत, अपभ्रंश होते—परिवर्तित होते हिन्दी आदि आधुनिक भाषाओं में आये हैं। अर्धतत्सम वे हैं जो प्राकृत-अपभ्रंश काल में या आधुनिक भाषा काल में सीधे संस्कृत से लिये गये हैं और जिनमें तद्भव जैसे परिवर्तन नहीं हुए हैं, अपितु कुछ अन्य प्रकार के थोड़े परिवर्तन हुए हैं। ये शब्द तद्भवों की तुलना में तत्सम से कुछ ही हटे हैं। उदाहरणार्थ 'कृष्ण' तत्सम शब्द है, तो 'कान्हा', 'कन्हैया' आदि तद्भव हैं, तथा 'किशुन', 'किशन' अर्धतत्सम हैं। मेरे विचार में इनका अर्धतत्सम नाम ठीक नहीं है। 'तद्भव' का अर्थ है जो संस्कृत (तत्) से निकला हो, और 'कान्हा' तथा 'किशुन' दोनों ही संस्कृत कृष्ण से निकले हैं, अतः दोनों ही 'तद्भव' नाम के अधिकारी हैं। हाँ 'कान्हा' के तद्भवीकरण की प्रक्रिया बहुत पहले शुरू हो गई थी तथा 'किशुन' के तद्भवीकरण की बहुत बाद में शुरू हुई। ऐसी स्थिति में पहले को 'तद्भव' या 'पूर्ववर्ती तद्भव' तथा दूसरे को 'परवर्ती तद्भव' कहना मेरे विचार जैसे शब्द परवर्ती में अधिक समीचीन है। हिंदी में प्रयुक्त करम, चन्दर, धरम, अच्छर, कारज तद्भव ही हैं। पंजाबी में प्रमुखतः नामों में, ये परवर्ती तद्भव बहुत अधिक हैं। जैसे सुरिन्दर, राजिन्दर, भुपिन्दर, महेन्दर आदि।

तद्भव

वे शब्द जो 'तत्' अर्थात् संस्कृत से 'भव' अर्थात् उत्पन्न या विकसित हैं। जैसे काम (=कर्म), धाम (=धर्म), दूध (=दुग्ध), नाच (=नृत्य) तथा घोड़ा (=घोटक) आदि। 'तद्भव' को भरत ने 'विभ्रष्ट', वाग्भट ने 'तज्ज' तथा चंड और हेमचन्द्र ने 'संस्कृतयोनि' कहा है। संस्कृतभव, भ्रष्ट, अपभ्रष्ट, अपभ्रंश आदि नामों से भी ये पुकारे गए हैं। आगे इसके साध्यमान संस्कृतभव तथा सिद्धमान संस्कृतभव आदि भेद भी किए गए हैं। साध्यमान में संस्कृत क्रियारूपों से विकसित होनेवाले शब्द आते हैं तो सिद्धमान में कृदंत और तिङन्त से विकसित होनेवाले।

विदेशी/गृहीत/आगत

जैसा कि नाम से स्पष्ट है, विदेशी शब्द का अर्थ है वे शब्द जो अन्य देशों की भाषाओं से आये हों। इन्हें 'म्लेच्छ शब्द' भी कहा गया है। प्राचीन भारतीय पण्डितों को विदेशी शब्दों का विशेष पता नहीं था। इसका प्रमुख कारण यह था उस समय तक भाषाओं के तुलनात्मक अध्ययन की परम्परा नहीं थी, और विदेशी भाषाओं के बारे में भी हमारे प्राचीन पण्डितों की जानकारी प्रायः बहुत ही कम थी। यही कारण है कि अनेक विदेशी शब्दों को हमारे यहाँ तत्सम या देशज आदि मान लिया गया। उदाहरणार्थ, संस्कृत में 'सूर्य' अर्थ में 'मिहिर' मध्ययुगीन फ़ारसी का शब्द है, किन्तु संस्कृत के पंडितों ने इसे संस्कृत धातु मिह् (= छिड़कना आदि) से आया इर (किरच्) प्रत्यय के योग से बना माना है। इसी प्रकार 'देशी नाममाला' में कई विदेशी शब्दों [जैसे 'दत्थरो' जो वस्तुतः फ़ारसी 'दस्तार' (रूमाल आदि) के संस्कृत में प्रयुक्त रूप 'दस्तारः' से विकसित है] को देशज मान लिया गया है। 'दीनार', 'द्रम्म' आदि कुछ शब्दों के बारे में अवश्य कुछ प्राचीन पण्डितों को पता था कि ये विदेशी हैं, किन्तु इस प्रकार ज्ञात शब्दों की संख्या बड़ी नहीं है, यद्यपि ऐसे शब्द हैं काफ़ी।

भारतीय आर्यभाषा में विदेशी शब्दों के लिये जाने की परम्परा अत्यन्त प्राचीन है। जैसा कि पुस्तक में अन्यत्र संकेत किया गया है, भारोपीय भाषा-भाषियों ने बहुत पहले (भारत में आने के कई सौ वर्ष पूर्व) सुमेरी भाषा से ग्वाड (सं०गौ, अ० काउ, फ़ा० गाव आदि) संस्कृत 'परशु'(अक्कदी में 'पिलक्कु' होते; सुमेरी 'बलग') तथा रोध (सं० लोह, रुधिर आदि) और एजिअन से अयेस (सं० अयस्) लिये थे। इसी प्रकार भारत-ईरानियों ने यूराली भाषा से उन शब्दों को लिया जो संस्कृत में शूक, मक्षिका, छाग, कफ, कूप, शलाका, तृण, हिरण्य एवं वाराह रूप में मिलते हैं। भारत में आने पर भी समय-समय पर अनेक विदेशी शब्द संस्कृत में आते रहे। जैसे यूनानी से : सं० द्रम्य, द्रम, द्रम्म (drakhme प्रा० दम्म; हि० दाम, दमड़ी), सं० समिता, समिदा (semidalis सं० में अर्थ 'मैदा' है; प्रा० सिमिदा; हि० सेवई, सेवियाँ), सं० सुरंग, सुरुंग (Syrinx; हि० सुरंग), यवन (ion), होड़ा (ओरा), केन्द्र (केन्त्रान्), खलिन (खलिनॉस), क्रमेल, क्रमेलक (क्रमेलास्), कस्तूरी (कस्तोरेइओउस, कस्तोर), कस्तीर (कस्सितेरास्; हि० काँसा), कंगु (केग्रवास; हि० कँगनी)। लैटिन से : रोमक, रोमन्, दीनार। ईरानी से : क्षत्रप (ख़शथ्र, पावन), दीपि (दिपि), कुन्दुरु (कुन्दुर), निपिस्त (=लिखित; निपिश्त), मिहिर (प्राचीन फ़ा० मिथ्र, मध्य फ़ा० मिहिर, तुलनीय सं०मित्र), मग, (मग, मगुस्; ब्राह्मणों की एक जाति), गंज, गंजवर, तरम्बुज, तीर, तूत। प्राकृतों में : पाइक्क (पाईक; हि० पाइक = पैदल सिपाही या हरकारा), मोचिआ (हि० मोची, मध्यवर्ती पहलवी मोचक = घुटनों तक का जूता; परवर्ती फ़ा० में 'मोचक' ही 'मोज़ा' हो गया जो हिन्दी आदि में मूल अर्थ तथा जुराब दोनों में मिलता है)।

मध्यकालीन फ़ा० 'तश्त' का प्रा० 'टठ', 'टट्ठ' जो भोजपुरी, अवधी आदि में टाठी (थाली) बना। हिन्दी का ठठेरा भी मूलतः इसी से सम्बद्ध है; फ़ा० तश्त >प्रा० ठट्ट+कार+क> ठठ्यारअ>ठठेरा। पुस्तक, पुस्तिका [पहलवी 'पोस्त' (=लिखने का चमड़ा) के संस्कृतीकृत रूप 'पुस्त'+क; प्रा० पोत्थिआ, हि० पोथी]; सं० सेक्य [प्रा०सेक्क<मध्ययुगीन फ़ा० सिक्कः (हिन्दी 'सिक्का') अर० सिक्कः, सिक्कत∠आर्मेइक 'सिक्त'=सिक्के का साँचा]। चीन से : चीन से भी भारत का संबंध पुराना है। चीनी से संस्कृत में चीन (चीनांशुक), कीचक (मूल शब्द 'किचाक', एक प्रकार का बाँस), सिन्दूर (मूल चीनी शब्द 'त्सिङ्तुङ'), शय (काग़ज़ के लिए पुराना संस्कृत शब्द; मूल चीनी शब्द 'तिसएह'), मुसार (एक रत्न, मूल चीनी शब्द 'म्व-सर') तथा तसर (रेशम विशेष; मूल चीनी शब्द 'तइ-स्सेर', प्राकृत तथा हिन्दी 'टसर') आदि शब्द आये हैं। हिन्दी 'लीची' शब्द भी मूलतः चीनी 'लीचू' है। 'चीनी' (शक्कर) शब्द फी मूलतः चीन पर आधारित है, किन्तु यह शब्द कदाचित् फ़ारसी होते हुए आया है। मिस्री से : मुद्रा (मुद्रिका भी इसी से है, हि०मुँदरी); हिंदी का 'मिश्री' भी मूलतः 'मिस्री' है जो सं० 'मिश्र' के प्रभाव से 'मिश्री' भी उच्चरित होता है। यों काफ़ी लोग इसे 'मिस्री' ही कहते हैं। तुर्की से : तुरुष्क ठक्कुर, खच्चर।

इस प्रकार संस्कृत तथा प्राकृत में अनेक भाषाओं से शब्द लिये गये हैं। हिन्दी ने भी इसी परम्परा में पश्तो, तुर्की, फ़ारसी, पुर्तगाली, अंग्रेज़ी, फ्रांसीसी, डच, स्पेनी, रूसी तथा कई भारतीय भाषाओं से शब्द लिये हैं।

ऊपर के उदाहरणों से स्पष्ट है कि विदेशी शब्द भी दो प्रकार के हो सकते हैं, एक तो तत्सम और दूसरे तद्भव। तत्सम तो वे हैं जो उसी रूप में प्रयुक्त होते हैं, जैसे विदेशी भाषा में होते थे, तथा तद्भव वे हैं जो अपने मूल रूप से परिवर्तित हो गये हैं। उदाहरण के लिए हिन्दी में 'पम्प' तत्सम विदेशी (अंग्रेज़ी) है तो 'दर्जन' तद्भव (अंग्रेज़ी) है।

हिन्दी आदि अनेक भाषाओं में विदेशी शब्दों का एक और भी रूप मिलता है। यह है अनूदित रूप। ये अनूदित शब्द अपनी रचना में तो तत्सम या मिश्र या तद्भव हो सकते हैं किन्तु मूलतः ये विदेशी हैं, क्योंकि उन्हीं के आधार पर बने हैं। हिन्दी में, ऐसे शब्दों में कुछ तो फ़ारसी से आये हैं जैसे जलवायु (आबहवा) कटिबद्ध (कमरबस्ता) आदि, किन्तु अधिक शब्द अंग्रेज़ी से आये हैं। कुछ उदाहरण हैं : लालफ़ीताशाही (redtapism), दृष्टिकोण (angle of vision), श्वेतपत्र (white paper), काला जादू (black magic), दृष्टि-बिन्दु (point of view), रजत जयन्ती (silver jubilee), डाकख़ाना (post office), मालगाड़ी (goods train), सवारी गाड़ी (passenger train), अन्तरिम (interim), तदर्थ (ad hoc), प्रधानाध्यापक (head master), वातानुकूलित (air-conditioned), सुसंतुलित (well-balanced), उपकुलपति (v. c.), प्रार्थनापत्र (application), विराम-चिह्न (punctuation mark), योजक-चिह्न

(hyphen), पूर्णविराम (full stop), ललित कला (fine art), उपयोगी कला (useful art), सम्पादकीय (editorial), प्रकाशक (publisher), संस्करण (edition) आदि।

विदेशी वर्ग में आने वाले शब्दों के लिए 'विदेशी' नाम बहुत उपयुक्त नहीं है, क्योंकि किसी भी अन्य भाषा से आया शब्द इसी के अन्तर्गत आयेगा, चाहे वह देश की हो या विदेश की। इसीलिए 'गृहीत' या 'आगत' नाम अपेक्षाकृत अधिक उपयुक्त ज्ञात होता है। उदाहरण के लिए, हिन्दी में बंगला भाषा से आया शब्द विदेशी नहीं कहा जा सकता, यद्यपि इन चारों वर्गों में उसे कहीं-न-कहीं स्थान अवश्य दिया जायेगा। इन तीनों नामों में 'गृहीत' या 'आगत' नाम अधिक स्वीकार्य हैं।

देशज

भरत ने इसे 'देशीमत', चंड ने 'देशीप्रसिद्ध', कुछ लोगों ने 'देशजात', 'देसिका' तथा हेमचन्द्र, मार्कंडेय आदि ने 'देश्य' या 'देशी' कहा है। इसकी परिभाषा के सम्बन्ध में विवाद है। चंड ने उन शब्दों को देशीप्रसिद्ध कहा है जो संस्कृत एवं प्राकृत (अर्थात् तत्सम एवं तद्भव) न हों; रुद्रट के अनुसार इनकी प्रकृति प्रत्यय-मूला व्युत्पत्ति नहीं दी जा सकती; हेमचन्द्र, बीम्ज़, भंडारकर आदि के अनुसार इनकी संस्कृत से व्युत्पत्ति सम्भव नहीं। हार्नले ने संकेत किया है कि ये वे तद्भव शब्द हो सकते हैं जो इतने विकृत हो गए हैं कि उनका तद्भव रूप पहचाना नहीं जा सकता। ग्रियर्सन मुंडा, द्रविड़, प्रान्तों में विकसित प्रांतीय शब्द एवं प्राथमिक प्राकृतों के तद्भव आदि को, जो संस्कृत शब्दों से जोड़े नहीं जा सकते, देशज मानते हैं। चटर्जी ने इन्हें आर्यपूर्व द्रविड़, कोल शब्द कहा है। इसी प्रकार की और भी परिभाषाएँ एवं मान्यताएँ हैं।

मैं 'वास्तविक देशज' शब्द तथा 'देशज माने जाने वाले' शब्दों में अंतर मानता हूँ। वास्तविक देशज शब्द तो वे हैं जो किसी भाषाक्षेत्र में बिना किसी आधार [जैसे तत्सम, तद्भव, गृहीत (loan) शब्द, तथा अनुकरण आदि] के विकसित हो गए हों, और जो शब्द देशज माने जाते हैं, वे वे हैं जिनकी व्युत्पत्ति का हमें पता नहीं है। सच्चे देशज शब्द को पहचानना मेरे विचार में प्रायः असम्भव-सा है। इसलिए यह तो कहा जा सकता है कि देशज शब्द हो सकते हैं, होते हैं; किन्तु यह कहना मुझे भ्रामक और अवैज्ञानिक लगता है कि अमुक या ये-ये शब्द देशज हैं। देशज माने जाने वाले शब्द देशज हो भी सकते हैं और नहीं भी हो सकते। वास्तविक स्थिति यह है कि ये अज्ञातव्युत्पत्ति के हैं। अतः इन्हें 'अज्ञातव्युत्पत्तिक' नाम देना मेरे विचार में अधिक वैज्ञानिक है, क्योंकि यह असम्भव नहीं कि इनमें अनुकरणात्मक, दूसरी भाषाओं से गृहीत, तद्भव या यहाँ तक कि—यद्यपि बहुत ही कम—तत्सम शब्द छिपे हों। हम जानते हैं कि हेमचन्द्र द्वारा स्वीकृत देशज शब्दों में अनेक तद्भव या विदेशी सिद्ध हो चुके हैं। हिन्दी में कुछ प्रसिद्ध अज्ञात-

व्युत्पत्ति शब्द ये हैं: कबड्डी, खादी, गड़बड़, घपला, घूँट, चंपत, चूहा, झंझट, झगड़ा, टट्टू, टीस, ठेठ, ठेस, तेंदुआ, थोथा, धब्बा, पेठा, पेड़, भर्ता आदि।

अनुकरणात्मक शब्द

इन्हें प्रायः देशज शब्दों के अन्तर्गत रखा जाता है, किन्तु मैं इनका एक अलग वर्ग बनाने के पक्ष में हूँ। देशज शब्दों की तरह ये अज्ञातव्युत्पत्तिक तो है नहीं। हमें इनकी व्युत्पत्ति का पता है। ये अनुकरण के आधार पर बने हैं। अतः इन्हें देशज के अन्तर्गत नहीं रखा जाना चाहिए।

अनुकरणात्मक शब्दों के कई भेद हो सकते हैं :—

(क) ध्वन्यात्मक—जैसे फटफटिया, भोंपू, सीटी आदि। इनमें अनुकरण ध्वनि का होता है। ऐसे शब्द प्रायः सभी भाषाओं में थोड़े-बहुत मिल जाते हैं।

(ख) दृश्यात्मक—बगबग, जगमग। इनमें दृश्य का अनुकरण होता है। इस प्रकार के शब्द बहुत ही कम होते हैं। यह भी असम्भव नहीं कि इस वर्ग में आने वाले शब्द किसी पूर्ववर्ती शब्द पर आधारित हों। वैसी स्थिति में इनके दृश्यात्मक होने पर प्रश्नवाचक चिह्न लग जाएगा।

(ग) प्रतिध्वन्यात्मक—जैसे घोड़ा-वोड़ा, चाय-चूय, पान-शान। इनमें वोड़ा, चूय, शान क्रमशः घोड़ा, चाय, पान की प्रतिध्वनि के आधार पर बने हैं। प्रति-ध्वन्यात्मक शब्द का प्रयोग प्रायः 'वग़ैरह' का भाव व्यक्त करने के लिए होता है। विश्व की अनेक भाषाओं में ऐसे प्रयोग मिलते हैं। अधिकांश भाषाओं में इसे बनाने का ढंग प्रायः अलग-अलग होता है। जैसे हिन्दी में चाय-वाय, अधिक चलता है तो पंजाबी में चाय-शाय। उज़बेक भाषा में 'म' लगाते हैं: किताब-मिताब। ऐसे ही गुजराती घोड़ो-बोड़ो, मराठी घोड़ा-बिड़ा, बंगाली घोड़ा-टोड़ा आदि।

आभास

कुछ शब्द होते हैं कुछ और, किन्तु उन्हें देखने-सुनने पर आभास कुछ और का होता है। इसी आधार पर पीछे कुछ शब्दों को तत्समाभास कहा जा चुका है। डॉ० श्यामसुन्दरदास ने राष्ट्रीय, जागृत, पौर्वात्य, उन्नायक, सिंचन, सृजन आदि को तत्समाभास कहा है। इसी प्रकार 'मौसा' को उन्होंने तद्भवाभास या अर्द्ध-तद्भव कहा है। मूल तद्भव शब्द 'मौसी' है, जिससे 'मौसा' बना लिया गया है। डॉ० दास ने आभास के आधार पर ये दो भेद किए हैं। यदि पाठक आभास के आधार पर और भी भेद बर्दाश्त कर सकें तो मैं विदेश्याभास (जैसे कलेजा, यह लगता है विदेशी, किन्तु है सं० कालेयक का तद्भव) एवं देशजाभास (जैसे बाँगर, जंजाल, ख़च्चर, समोसा; ये सभी विदेशी हैं) का सुझाव देना चाहूँगा। यों वैज्ञानिक अध्ययन में आभास पर आधारित ये वर्गीकरण कोई महत्त्व नहीं रखते। वैज्ञानिक अध्ययन में हमें देखना होता है कि कोई शब्द क्या है, यह नहीं कि वह क्या लगता है।

संकर, मिश्रित या द्विज ब्द

उपर्युक्त वर्गों में एक से अधिक वर्गों के शब्दों को मिलाकर बनाये गये शब्द इस वर्ग में आते हैं। उदाहरणार्थ, रेलगाड़ी, गुरुडम, पावरोटी, मालगाड़ी, दलबंदी।

इस तरह मोटे रूप से कहा जा सकता है कि शब्द या उसके अंश के इतिहास की दृष्टि से शब्द छः प्रकार के होते हैं : तत्सम, तद्भव, अज्ञातव्युत्पत्तिक (देशज), विदेशी, अनुकरणात्मक, तथा संकर।

यों विदेशी को यदि गृहीत या आगत नाम दें, जैसा कि ऊपर संकेतित है तो संस्कृत से लिये जाने वाले तत्सम शब्द भी इसी के अन्तर्गत रखे जा सकते हैं।

वस्तुतः शुद्ध वैज्ञानिक दृष्टि से किसी भी भाषा के शब्द मूलतः दो प्रकार के हो सकते हैं : नवीन और परंपरागत। आगे नवीन को तीन वर्गों में बाँटा जा सकता है : नवनिर्मित, गृहीत, अज्ञातव्युत्पत्तिक। फिर गृहीत के 'देश से गृहीत', 'विदेश से गृहीत' आदि उपभेद हो सकते हैं।

शब्द
- नवीन
  - नवनिर्मित
  - गृहीत
  - अज्ञातव्युत्पत्तिक
- परंपरागत

(ख) रचना

रचना के आधार पर शब्द तीन प्रकार के माने गए हैं : रूढ़, यौगिक, योग-रूढ़। आगे इन पर अलग-अलग विचार किया जा रहा है—

रूढ़—वे शब्द जो सार्थक भाषिक इकाइयों के योग से न बने हों। जैसे घर, कपड़ा, आग, काग़ज़। इनमें से किसी के भी ऐसे सार्थक खंड नहीं किए जा सकते जिनकी सार्थकता पूरे शब्द के अर्थ से सम्बद्ध हो। रूढ़ शब्दों को कुछ लोगों ने 'रूढ़ि' भी कहा है।

यौगिक—यौगिक का अर्थ है 'योग किया हुआ' या 'जोड़कर बनाया हुआ'। रूढ़ शब्दों के विपरीत यौगिक शब्दों को ऐसे सार्थक खंडों में विभाजित किया जा सकता है जिनके अर्थ पूरे शब्द के अर्थ से सम्बद्ध हों। ऐसे शब्द प्रायः तीन प्रकार से बने होते हैं : (i) उपसर्ग + शब्द। जैसे अनपढ़, कुरूप, लापता। (ii) शब्द + प्रत्यय। जैसे कटुता, भलाई, बुढ़ापा। (iii) शब्द + शब्द। जैसे रसोईघर, भाषा-विज्ञान, डाकख़ाना। कुछ यौगिक शब्द ऐसे भी होते हैं, जिनकी रचना में उपर्युक्त में कई का प्रयोग हुआ होता है : जैसे : अनुरूपता (उपसर्ग + शब्द + प्रत्यय), भाषाशास्त्रवेत्ता, विवेकविहीनता आदि।

अपवादतः कुछ शब्द ऐसे भी मिलते हैं जो मात्र उपसर्ग तथा प्रत्यय से बने होते हैं। जैसे विज्ञ, अज्ञ, प्रज्ञ, अभिज्ञ। हिन्दी की दृष्टि से इनकी रचना उपसर्ग

(वि, अ, प्र, अभि) तथा 'ज्ञ' प्रत्यय से हुई है।

योगरूढ़—यौगिक शब्द यदि अर्थ की दृष्टि से संकुचित होकर केवल किसी एक वस्तु का बोध कराएँ तो 'योगरूढ़' कहे जाते हैं। उदाहरणार्थ, 'जल' एक रूढ़ शब्द है, इसमें 'ज' प्रत्यय जोड़कर 'जलज' बनता है। 'जलज' शब्द यौगिक है और इसका अर्थ है 'जल में उत्पन्न'। किन्तु अब 'जलज' का प्रयोग जल में उत्पन्न बहुत-सी अन्य चीज़ों, जैसे सेवार, जोंक, मछली आदि के लिए न होकर प्रायः केवल कमल के लिए होता है, अतः यह 'यौगिक' शब्द 'योगरूढ़' है। अर्थात् यौगिक है पर साथ ही विशिष्ट अर्थ में रूढ़ि है।

यहाँ एक बात का संकेत आवश्यक है कि यह तीसरा वर्ग शुद्ध अर्थों में रचना पर आधारित न होकर अर्थ की भी अपेक्षा रखता है। इसीलिए, तत्त्वतः बनावट या रचना के आधार पर मैं दो भेद मानने के ही पक्ष में हूँ : (1) रूढ़, और (2) **यौगिक**। फिर यौगिक के दो उपभेद किए जाने चाहिए : (क) **सामान्य यौगिक**—जैसे कटुता, अनपढ़, रसोईघर; (ख) **रूढ़ यौगिक**—जो यौगिक हो किन्तु विशिष्ट अर्थ में रूढ़ हो गया हो। जैसे जलज (जल में जनमने वाली सभी चीज़ें जलज नहीं होतीं, केवल कमल होता है), हाथी (सभी हाथवाले, जैसे आदमी, हाथी नहीं हैं, केवल गज 'हाथी' है), खग (आसमान में गमन करने वाले सभी खग नहीं हैं, केवल पक्षी को खग कहते हैं) आदि।

रचना के आधार पर शब्दों के कुछ अन्य भेदों का भी उल्लेख भी यहाँ किया जा सकता है :

(1) **समस्त शब्द** (Compound word)—जब दो या अधिक शब्दों के योग से कोई शब्द बनता है तो उसे समस्त शब्द कहते हैं। इन्हें ही 'समास से बने शब्द' या 'सामासिक शब्द' भी कहते हैं। कुछ समस्त शब्द हैं : चिड़ियाघर, विश्व-विद्यालय, राजनीतिशास्त्रवेत्ता।

(2) **पुनरुक्त शब्द** (Doublet)—यह एक प्रकार का यौगिक शब्द है, जिसे किसी शब्द की पुनरुक्ति या उसके अभ्यास द्वारा बनाते हैं। जैसे फटफटिया, भड़भड़, खटखट। पुनरुक्त शब्द दो प्रकार के हो सकते हैं : (क) पूर्ण पुनरुक्त शब्द—जैसे चमचम, भड़भड़। (ख) अपूर्ण पुनरुक्त शब्द—जैसे बीच-बचाव, रख-रखाव, भीड़-भाड़, पूछपाछ।

(3) **अनुवादयुग्मक शब्द** (Translation Compound)—ये एक प्रकार के ऐसे समस्त शब्द या यौगिक शब्द होते हैं, जिनमें दो शब्द एक ही या लगभग एक ही अर्थ के रहते हैं, अर्थात् एक-दूसरे के 'अनुवाद' या 'अर्थ' होते हैं। जैसे हाट-बाज़ार, दवा-दारू, होश-चेत। ये भी तीन प्रकार के हो सकते हैं : (क) कभी तो एक शब्द विदेशी होता है, और दूसरा अपना। जैसे पाउरोटी (पाउ पुर्तगाली में रोटी का वाचक है), आसा-सोंठा ध्वज-निशान, हाट-बाज़ार, ताला-कुलफ़, खेल-तमाशा, साग-सब्ज़ी, लाज-शरम; (ख) कभी-कभी दोनों शब्द अपने ही होते हैं, जैसे कपड़ा-लत्ता, जीव-जन्तु, सीधा-पिसान, काम-काज, बनाव-सिंगार; और

(ग) कभी-कभी केवल विदेशी शब्दों से ही इस प्रकार के शब्द बन जाते हैं। जैसे इज़्ज़त-आबरू, नाज़-नख़रा, दवा-दारू, सील-मुहर, क़र्ज़ा-कुवाम, सौदा-सुल्फ़। ऐसे शब्दों को 'अनुवाद समास', 'अनुवादमूलक समास' या 'अनुवादमूलक समस्त पद' भी कहते हैं। इस प्रकार के शब्द बनाने की प्रवृत्ति नई नहीं है। संस्कृत में शालिहोत्र (शालि=घोड़ा, कोल भाषा में; होत्र=घोड़ा, द्रविड़ में) ऐसा ही शब्द है।

(ग) प्रयोग

प्रयोग के आधार पर शब्दों का वर्गीकरण कई प्रकार से किया जा सकता है :

(i) **सामान्य-अर्धपारिभाषिक-पारिभाषिक**—सामान्य तो वे हैं जो सामान्य भाषा में प्रयुक्त होते हैं। जैसे आना, पेड़, पानी, मिट्टी आदि। पारिभाषिक शब्द उनको कहते हैं जो शास्त्र या विज्ञान विशेष में, विशेष अर्थ में आते हैं। जैसे अद्वैत-वाद (दर्शन), सर्वनाम (व्याकरण), प्रकरी (नाट्यशास्त्र), समीकरण (भाषा-विज्ञान) आदि। अर्धपारिभाषिक शब्दों की स्थिति बीच की है। वे सामान्य भाषा में भी प्रयुक्त होते हैं और पारिभाषिक रूप में भी। जैसे 'दावा' सामान्य भाषा में भी प्रयुक्त होता है और क़ानून में पारिभाषिक अर्थ में भी। धन (गणित), स्वर (व्याकरण), संकल्प (मनोविज्ञान) आदि भी इसी प्रकार के शब्द हैं। पारिभाषिक शब्दों पर आगे अलग से विचार किया जा रहा है।

(ii) **साहित्यिक बोलचाल का**—पहले का प्रयोग प्रायः साहित्य तक सीमित होता है। दूसरा बोलचाल में भी आता है। यों यह भेद सभी भाषाओं एवं सभी शब्दों में स्पष्टतः नहीं दिखाई पड़ता। बोलचाल वाले शब्द साहित्य में भी आ जाते हैं। उदाहरण के लिए हिन्दी में गृह, मयंक, हस्त जैसे शब्द प्रायः साहित्य में ही आते हैं। बोलचाल में घर, चाँद, हाथ चलते हैं। यों ये बोलचाल के शब्द अवश्य साहित्य में भी मिल जाते हैं।

(iii) **श्लील-अल्पश्लील-अश्लील**—श्लीलता-अश्लीलता शब्द के अर्थ से अधिक, प्रयोग पर निर्भर करती है। एक ही अर्थ में बहुप्रचलित शब्द अश्लील माना जाता है तो अल्पप्रचलित या अप्रचलित उतना बुरा नहीं समझा जाता। उदाहरणार्थ गुदा, लिंग, योनि, मैथुन अपने सामान्य समानार्थियों की तुलना में श्लील हैं। यों हाथ, पैर आदि अन्य शब्दों की तुलना में गुदा, लिंग आदि भी अश्लील हैं। इस प्रकार, इस आधार पर श्लील, अल्पश्लील, अश्लील तीन भेद किये जा सकते हैं। हाथ, पैर श्लील हैं, लिंग, योनि अल्पश्लील हैं तो लाँड़, बुर आदि अश्लील हैं। 'श्लील' को सामान्य तथा अश्लील को वर्जित शब्द (Taboo word) भी कहते हैं।

(iv) **सक्रिय-निष्क्रिय**—किसी भी व्यक्ति के शब्दभांडार के शब्दों को उनके प्रयोग के आधार पर दो वर्गों में रखा जा सकता है : (1) सक्रिय—ये वे शब्द

होते हैं जिनकी जानकारी व्यक्ति विशेष को होती है तथा जिनका प्रयोग वह बोलने तथा लिखने में करता है। (2) निष्क्रिय—ये वे शब्द होते हैं जिनकी जानकारी व्यक्ति को होती है किन्तु जिनका प्रयोग वह कभी नहीं करता। हाँ यदि वह व्यक्ति उस शब्द को कहीं सुनता या पढ़ता है तो समझ जाता है। इस तरह शब्दों के ये दोनों वर्ग व्यक्ति-सापेक्ष होते हैं। अपनी शब्द-संपदा बढ़ाने के लिए प्रयास यह होना चाहिए कि अधिक-से-अधिक निष्क्रिय शब्द सक्रिय बन जाएँ।

(v) **अनौपचारिक-औपचारिक**—श्रीमन्, कृपया, श्री, महोदय, शुभनाम, शुभस्थान जैसे शब्द केवल औपचारिक बातचीत या लेखन में प्रयुक्त होते हैं, अतः इस वर्ग के शब्दों को औपचारिक शब्द कहा जा सकता है। जो शब्द सामान्य होते हैं, उन्हें अनौपचारिक कहते हैं। अनौपचारिक अवसरों पर औपचारिक शब्दों का प्रयोग खटकता है तो औपचारिक अवसरों पर अनौपचारिक शब्दों का प्रयोग।

(vi) **आधारभूत-माध्यमिक-उच्च**—आधारभूत शब्द उन्हें कहते हैं जिनके बिना भाषा-विशेष का काम नहीं चलता। इसमें प्रायः सभी सर्वनाम तथा बहुप्रयुक्त संज्ञा, क्रिया, संख्यावाचक विशेषण और अव्यय शब्द आते हैं। उच्च शब्द में प्रायः विज्ञानों और शास्त्रों के पारिभाषिक शब्द आते हैं। माध्यमिक शब्द बीच के होते हैं। हिन्दी में मैं, वह, तू, घर, आदमी, हाथ, खाना, चलना, बैठना, सोना, एक, दो, तीन आदि आधारभूत शब्द हैं तो मुक्ति, वस्त्र, भव्य, आकाश आदि माध्यमिक शब्द हैं और कथानक, अद्वैतवाद, रूपिम आदि उच्च शब्द हैं।

(vii) **प्रयुक्त-अल्पप्रयुक्त-अप्रयुक्त**—स्पष्ट ही पहले वर्ग के शब्द प्रयोग में होते हैं, और दूसरे का अपेक्षाकृत कम प्रयोग होता है, और तीसरे का प्रयोग प्रायः नहीं के बराबर होता, या नहीं होता : उदाहरणार्थ आग-अनल-हुताशन, हाथी-हस्ती-मैगल। किसी भी भाषा में सदा-सर्वदा के लिए यह स्थिति नहीं होती। समय के साथ प्रयोग की बहुलता-न्यूनता में कमी-बेशी होती रहती है और प्रयुक्त अप्रयुक्त या अल्पप्रयुक्त वर्ग में आते रहते हैं तो अप्रयुक्त या अल्पप्रयुक्त प्रयुक्त में।

(vii) **सर्वक्षेत्रीय—क्षेत्रीय**—कुछ शब्द किसी भाषा के पूरे क्षेत्र में चलते हैं और कुछ क्षेत्र, प्रांत या स्थान विशेष या उस भाषा की किसी बोली विशेष के क्षेत्र तक सीमित होते हैं। उदाहरणार्थ, अच्छा-निम्मन, कटोरा-खोरा, थाली-ठाढ़ी, डालना-घालना, तोरी-नेनुवाँ-घेंवड़ा आदि शब्दों में पहला सर्वक्षेत्रीय है तो शेष क्षेत्रीय हैं।

(घ) अर्थ

इस आधार पर भी एकाधिक प्रकार का वर्गीकरण किया जा सकता है। जैसे :—

(i) **सरल-अल्पक्लिष्ट-क्लिष्ट** : यह भेद मूलतः प्रयोग पर ही आधारित है। बहुप्रयुक्त शब्द अर्थ की दृष्टि से सरल लगता है, तथा अल्पप्रयुक्त अल्पक्लिष्ट

और अप्रयुक्त क्लिष्ट। जैसे नरम-मसृण, चिड़िया-विहग-द्विज, झोंपड़ी-उटज।

(ii) **स्थूल-सूक्ष्म, मूर्त-अमूर्त**—स्थूल या मूर्त शब्द ठोस या मूर्त चीज़ों को व्यक्त करता है। जैसे लोहा, पानी, हाथी, घास। सूक्ष्म या अमूर्त में अहिंसा, ब्रह्म, आत्मा, हवा जैसे शब्द आते हैं। स्थूलता या सूक्ष्मता के आधिक्य के आधार पर इसके और भी भेद-उपभेद किये जा सकते हैं।

(iii) **वाचक-लक्षक-व्यंजक**—वाचक शब्द मात्र अपना कोशार्थ या साक्षात अर्थ देता है। जैसे घास। लक्षक शब्द मुख्यार्थ से भिन्न अपना लाक्षणिक अर्थ भी देता है; जैसे गदहा (मूर्ख), शेर (वीर), गीदड़ (कायर)। व्यंजक शब्द अपने कोशार्थ एवं लाक्षणिक अर्थ के अतिरिक्त व्यंग्यार्थ भी देता है। जैसे—गदहा है = लाक्षणिक अर्थ 'वह मूर्ख है'; व्यंग्यार्थ 'वह मूर्ख है, अतः उससे कुछ हो नहीं सकता या उससे दूर रहना चाहिए, या वह समझ नहीं सकता।' वस्तुतः एक ही शब्द को भी प्रयोग के आधार पर तीनों प्रकार का माना जा सकता है। उदाहरण के लिए 'देख महल के लिए झोंपड़ी बलि होती है' में 'महल' तथा 'झोंपड़ी' शब्दों को लें। वाच्यार्थ—प्रासाद, कुटिया; लक्ष्यार्थ—महलों तथा झोंपड़ियों में रहने वाले; व्यंग्यार्थ—धनी तथा ग़रीब। इस प्रकार यह भेद प्रयोग से भी संबद्ध है।

(iv) **समानार्थी-विपरीतार्थी**—समान अर्थवाले शब्द एक-दूसरे के समानार्थी या पर्याय शब्द कहे जाते हैं। जैसे वायु, हवा, अनिल, समीर समानार्थी हैं। विपरीतार्थी शब्द अर्थ में विरोधी होते हैं। इन्हें विलोम या विपर्याय शब्द भी कहते हैं। जैसे मोटा-पतला, बड़ा-छोटा, राजा-रंक, राजा-प्रजा।

(v) **एकार्थी-अनेकार्थी**—एक अर्थवाले शब्द एकार्थी कहलाते हैं। जैसे चारपाई, दरवाज़ा, लालटेन, गेहूँ, दाल आदि। इसके विपरीत एकाधिक अर्थ-वाले शब्द अनेकार्थी कहलाते हैं। जैसे घोड़ी (घोड़ा का स्त्रीलिंग, बड़ा स्टूल), पानी (जल, चमक, इज़्ज़त, वर्ष), टीका (तिलक, कुंजी) आदि।

(vi) **विचारार्थी-प्रकार्यार्थी**—भाषा के बहुत सारे शब्द किसी-न-किसी वस्तु, भाव या विचार को व्यक्त करते हैं। जैसे कुर्सी, दया, समानता आदि। ऐसे शब्द पूर्ण (Ful) शब्द या विचारार्थी शब्द कहे जाते हैं। इसके विपरीत कुछ शब्दों का इस प्रकार स्पष्ट अर्थ नहीं होता, वे भाषा में तरह-तरह के व्याकरण के प्रकार्य (फंक्शन) करते हैं। इन्हें रिक्त (Empty) शब्द या व्याकरणिक शब्द भी कहा गया है। तो, जा (मुझसे देखा नहीं जाता), ने, को आदि ऐसे ही प्रकार्यपरक या प्रकार्यार्थी शब्द हैं।

भाषिक स्तर

भाषा के ध्वनि, अर्थ आदि स्तरों के आधार पर भी कुछ प्रकार के शब्दों की चर्चा कभी-कभी की जाती है। उदाहरणार्थ—

ध्वनीय शब्द (Phonetic word)—जो उच्चारण या ध्वनि की दृष्टि से एक शब्द हो। ध्वनीय दृष्टि से समान होने पर एकाधिक शब्द एक ध्वनीय शब्द कहे

जा सकते हैं। उदाहरण के लिए हिन्दी में 'कोश' और 'कोष' दो शब्द हैं, किन्तु दोनों का उच्चारण पूर्णतः एक है, अतः ये एकध्वनीय शब्द हैं। यों एकध्वनीय शब्द होने पर भी दोनों के अर्थ दो हैं, अतः ये अर्थीय शब्द दो हैं। कहना न होगा कि पहले का अर्थ 'शब्दकोश' है और दूसरे का 'ख़ज़ाना'।

अर्थीय शब्द (Semantic word)—जो अर्थ की दृष्टि से एक शब्द हो। ऊपर हम देख चुके हैं कि 'कोश' और 'कोष' ध्वनीय दृष्टि से एक शब्द होने पर भी अर्थीय दृष्टि से दो शब्द हैं। ऐसे ही 'आम' एक ध्वनीय शब्द है किन्तु अर्थीय शब्द दो हैं। एक का अर्थ है 'सामान्य' और दूसरे का अर्थ है 'आम का पेड़ या फल'। यह संकेत्य है कि एक ही शब्द का यदि एक वाच्यार्थ है तथा एक उसी पर आधारित लक्ष्यार्थ तो उसे दो अर्थीय शब्द नहीं माना जा सकता। उदाहरण के लिए 'गधा' का एक अर्थ 'मूर्ख' भी है किन्तु इस आधार पर 'गधा' को दो अर्थीय शब्द नहीं माना जाना चाहिए।

लेखीय शब्द—जो लिखने में एक शब्द हो। नई-नयी, लिए-लिये, जाएगा-जायेगा-जायगा-जावेगा, वसिष्ठ-वशिष्ठ क्रमशः लेखीय शब्द दो, दो, चार, दो हैं किन्तु ये अर्थीय शब्द एक-एक ही हैं। कोश-कोष दो लेखीय शब्द भी हैं, दो अर्थीय शब्द भी हैं, किन्तु ध्वनीय शब्द एक हैं।

कोशीय शब्द—कोश में जो एक शब्द हो। घोड़ा, घोड़े, घोड़ों, घोड़ो आदि व्याकरणिक शब्द या पद चार हैं किन्तु कोशीय शब्द एक हैं। ऐसे ही चलो, चले, चलना, चला, चलता, चलिए आदि व्याकरणिक शब्द या पद तो कई हैं किन्तु कोशीय शब्द एक हैं। वस्तुतः कोशीय शब्द को सामान्यतः 'शब्द' भी कहा जा सकता है। अर्थात् उपर्युक्त सारे व्याकरणिक शब्द मूलतः शब्द एक-एक ही हैं।

व्याकरणिक शब्द—लिंग, वचन, काल आदि की दृष्टि से एक मूल से बनने वाले विभिन्न शब्द, कोशीय शब्द तो एक होते हैं, किन्तु व्याकरणिक शब्द अलग-अलग होते हैं। पीछे 'घोड़ा' और 'चल' से बनने वाले शब्दों के आधार पर यह बात स्पष्ट की जा चुकी है।

कभी-कभी भाषा में ऐसे उदाहरण भी मिलते हैं जो लेखीय शब्द तो एक होते हैं किन्तु ध्वनीय और अर्थीय शब्द दो होते हैं। उदाहरण के लिए 'मानवता' शब्द लें। इसका अर्थ है 'इंसानियत'। मैंने एक हास्यरस की कविता पढ़ी जिसमें 'मानवती नायिका' के पुल्लिग रूप में 'मानवता नायक' का प्रयोग था। स्पष्टतः इन दोनों मानवता का उच्चारण आक्षरिक संरचना की दृष्टि से एक नहीं हो सकता। 'मानव' से 'मानवता' का उच्चारण 'मा-नव्-ता' होगा तो 'मानवती' के आधार पर बनाए जाने वाले 'मानवता' का उच्चारण होगा 'मान-व-ता'। यों ऐसे उदाहरण किसी भी भाषा में अपवादस्वरूप ही मिलते हैं।

प्रकृति

भाषा में अपनी प्रकृति और व्यवहार की दृष्टि से आठ वाग्भाग (Parts of

speech) का उल्लेख पश्चिम में प्रायः किया जाता है, जिसका मूल आधार ग्रीक और लैटिन व्याकरण हैं। ये आठ हैं : संज्ञा सर्वनाम, विशेषण, क्रिया, क्रिया-विशेषण, संबंधबोधक, संयोजक तथा विस्मयादिबोधक। इनमें सात के अंतर्गत आने वाली भाषिक इकाइयों को तो शब्द कहा जाता है, किन्तु क्रिया के मूलरूप को प्रायः शब्द न कहकर 'धातु' कहने की परम्परा है। किन्तु तत्त्वतः धातुएँ भी शब्द ही हैं। यह बात दूसरी है, उनकी रूप-रचना तथा वाक्य में उनका प्रयोग आदि अन्यों से अलग है। इसी तरह—ना से अंत होने वाले मुहावरे भी वस्तुतः, धातुवर्ग में ही आते हैं : भागना—नौ दो ग्यारह होना : वह भाग गया —वह नौ दो ग्यारह हो गया। इस प्रकार मुहावरे भी शब्द ही हैं। तो प्रकृति की दृष्टि से शब्द के ये प्रकार हुए : 'संज्ञा', 'सर्वनाम', 'विशेषण', 'क्रियाविषेषण', 'संबंधबोधक', 'संयोजक', 'विस्मयादिबोधक' तथा 'धातु एवं-नायुक्त मुहावरे'।

4

शब्द-संकलन

शब्दों के अध्ययन के लिए सबसे पहले सामग्री-संकलन या शब्द-संकलन आवश्यक है। शब्द-संकलन के लिए दो आधार हैं। या तो हम किसी लिखित सामग्री से शब्द-संकलन करते हैं या मौखिक रूप से सुनकर। प्रकाशित या लिखित कृतियाँ, दस्तावेज़ या अभिलेख आदि प्रथम वर्ग में आते हैं। किसी बोली जाने वाली भाषा या बोली अथवा लोक-साहित्य आदि के शब्दों का संकलन दूसरे वर्ग में आता है। दोनों ही की अलग-अलग पद्धतियाँ हैं। आगे इन पर पृथक-पृथक विचार किया जा रहा है।

लिखित सामग्री से शब्दों का संकलन शब्दानुक्रमणी (Word-index) रूप में तैयार किया जाता है। शब्दानुक्रमणी लिखित सामग्री में प्रयुक्त सारे शब्दों की वर्णानुक्रमानुसार सूची होती है, जिसमें इस बात का भी संकेत रहता है कि शब्द कहाँ-कहाँ आया है। इस प्रकार उसमें न केवल सारे शब्द होते हैं, अपितु हर शब्द के सारे प्रयोगों के संदर्भ भी होते हैं।

लिखित सामग्री की शब्दानुक्रमणी तैयार करने के लिए सबसे पहले उस कृति, पुस्तक, लेख या अभिलेख का वैज्ञानिक पद्धति से पाठ निर्धारित कर लेना आवश्यक है। विशेषतः पाठ-निर्धारण की आवश्यकता ऐसे पुराने साहित्यकारों की कृतियों में पड़ती है, जिनकी रचनाओं की एक से अधिक पांडुलिपियाँ उपलब्ध हैं। ऐसी स्थिति में सभी प्रतियों की तुलना के आधार पर कृति के पाठ का निर्धारण किया जाता है। यदि किसी की एक ही पांडुलिपि उपलब्ध हो किन्तु वह भ्रष्ट हो तो तत्कालीन अन्य कवियों—विशेषतः उसी भाषा एवं धारा की रचनाओं के अध्ययन तथा पाठालोचन विषयक अन्य सिद्धान्तों के आधार पर उसके पाठ में भी संशोधन किया जाता है। आधुनिक लेखकों की अनुक्रमणी बनाने में भी बड़ी सतर्कता अपेक्षित होती है। ऐसा प्रायः होता है कि मुद्रित पाठ में एकरूपता नहीं मिलती और अनुक्रमणी बनाने वाले ने यदि आँख मूँदकर मुद्रित पाठ के आधार पर अनुक्रमणी बना डाली तो अनेकरूपता के कारण कई प्रकार की गड़बड़ियाँ रह जाती हैं। उदाहरण के लिए मान लें कि पांडुलिपियों के आधार पर संशोधित प्रति में या मुद्रित कृति में कहीं तो 'करनेवाला' है और कहीं है 'करने वाला'। अब यदि एक स्थान पर 'करनेवाला' को एक शब्द मानकर अनुक्रमणी में रखा गया तथा दूसरे स्थान पर 'करने' को

अलग और 'वाला' को अलग शब्द रखा गया तो अनुक्रमणी त्रुटिपूर्ण हो जाएगी। 'वाला' शब्द जहाँ होगा, वहाँ 'करने वाला' के 'वाला का संदर्भ तो मिल जायेगा किन्तु 'करनेवाला' के 'वाला' का संदर्भ नहीं मिलेगा। इसी प्रकार यदि कहीं 'उस ने', लिखा या छपा है और कहीं 'उसने', तो 'ने' के दोनों संदर्भों का पता नहीं चल सकता। विभिन्न भाषाओं में वर्तनी और प्रेस-सम्बन्धी गड़बड़ियाँ विभिन्न प्रकार की हो सकती हैं, जिनके कारण शब्दानुक्रमणी त्रुटिपूर्ण या अपूर्ण हो सकती है। इस दृष्टि से, अनुक्रमणी बनाने के पूर्व, ग्रंथ को आद्यंत पढ़कर उसमें वर्तनी की दृष्टि से आवश्यक संशोधन कर लेना अधिक अच्छा होता है। यह तो लेखन या मुद्रण की गड़बड़ी की बात थी। भाषा-विशेष की लेखन-पद्धति के कारण भी गड़बड़ी हो जाती है। उदाहरणार्थ, हिन्दी में सर्वनामों के साथ कारक-चिह्न मिलाकर लिखते हैं जैसे उसने, मुझमें, तुमको, किन्तु संज्ञा के साथ अलग लिखते हैं, जैसे राम ने, मोहन में, श्याम को। मान लें इनकी शब्दानुक्रमणी बनानी है और इसी प्रकार बना दी गई तो परिणाम यह होगा कि अनुक्रमणी में 'ने' और 'को' केवल संज्ञा के साथ वाले ही आयेंगे, सर्वनाम के साथ के 'ने' और 'को' के सन्दर्भ उनके साथ नहीं मिलेंगे। इसके लिए अच्छा यह होगा कि जिनके साथ कारक-चिह्न मिलाकर लिखे जाते हैं, उन्हें संयुक्त रूप में (जैसे उसने, उसको) अलग लिखा तो जाय, किन्तु साथ ही कारक चिह्नों (जैसे यहाँ 'ने' या 'को' को) के सन्दर्भ अलग आने वाले कारक-चिह्नों के साथ भी दे दिए जाएँ। दोनों में अन्तर के लिए दोनों को अलग-अलग भी रखा जा सकता है, जैसे ने 1. 2. 4. आदि (अलग 'ने' के लिए); तथा —ने 1. 3. 2. आदि (सम्बद्ध 'ने' के लिए)। दोनों को मिलाकर एक में भी रखा जा सकता है। इसके लिए 'ने' शीर्षक के अन्तर्गत ही सन्दर्भों के साथ कुछ संकेत दिए जा सकते हैं। जैसे, जहाँ 'ने' अलग है, उसका सन्दर्भ सामान्य रूप में दिया गया, किन्तु जहाँ सम्बद्ध है उनके साथ कोष्ठक में 'स' या कुछ और लिख दिया जाए। जैसे 'ने' 1. 4. 2; 2. 3. 4 (स), 3. 2. 6 ।

संधित या सामासिक पदों के सम्बन्ध में भी यही नीति बरतनी चाहिए। यदि इनमें दूसरा भी स्वतन्त्रतः उस भाषा में प्रयुक्त होता हो तो उसे अलग भी देना चाहिए और उसके बंधित रूप का भी संकेत दे देना चाहिए। उदाहरणार्थ, रामावतार, यथाशक्ति आए हों तो रामावतार और यथाशक्ति को अलग-अलग तो देना ही चाहिए, साथ ही अवतार और शक्ति को अपने-अपने स्थान पर भी दिखाना चाहिए। और इनके साथ इनके समास या संधि में द्वितीय सदस्य होने का भी संकेत किया जाना चाहिए :—अवतार-शक्ति।

ये बातें हिन्दी की दृष्टि से कही गई हैं। इस प्रकार के नियम सभी भाषाओं के लिए अलग-अलग बनाए जा सकते हैं। इसके सम्बन्ध में सामान्य सिद्धान्त यह है कि जिस भाषा की पुस्तक की अनुक्रमणी बनानी हो, उसकी लघुतम इकाई [शब्द, रूप; अच्छा हो कि उपसर्ग, प्रत्यय, मध्यसर्ग आदि भी] दी जाय। स्वतन्त्र

शब्दों या रूपों को अलग-अलग सामान्य रूप से दिया जाय और जो केवल प्रारंभ में (जैसे उपसर्ग), केवल मध्य में (जैसे मध्यसर्ग), या अंत में (जैसे प्रत्यय, परसर्ग या संधि या समास के प्रथमेतर सदस्य) आये हों, उन्हें अलग दिया जाए, या उनके ही अलग आने वाले रूपों के साथ, किसी भेदक-चिह्न या संकेत के साथ दिया जाए। ऐसी अनुक्रमणियों से भाषावैज्ञानिक अध्ययन में बहुत सहायता मिलेगी। यहाँ तक कि यदि उस लेखक या पुस्तक के कारक-चिह्नों, उपसर्गों, मध्यसर्गों या प्रत्ययों आदि पर विचार करना हो, तो भी ऐसी अनुक्रमणी के आधार पर सरलता से विचार किया जा सकता है। सामान्य समासों को तोड़कर अलग-अलग शब्दों को अपने-अपने स्थान पर भी दिया जा सकता है। जैसे 'मुखचन्द्र' के लिए बहुत आवश्यक नहीं है कि मुखचन्द्र को भी अलग दिया जाय। यथास्थान 'मुख' और 'चन्द्र' दे देना पर्याप्त है, किन्तु बहुव्रीहि समास के शब्दों को (चक्र-पाणि, दशानन आदि) तो संयुक्त रूप में भी अवश्य ही दिया जाना चाहिए, क्योंकि संयुक्त रूप में उनका अर्थ उनके योगरूढ़ होने के कारण कुछ और हो जाता है।

मुहावरों और लोकोक्तियों के सम्बन्ध में दो बातें उल्लेख्य हैं। पहली तो यह कि इनमें आने वाले रूपों या शब्दों या उपसर्ग, प्रत्यय, कारकचिह्न आदि को, जैसा कि ऊपर कहा गया है, अलग-अलग देना चाहिए। दूसरे, पूरे मुहावरे या पूरी लोकोक्ति को भी कोश में यथास्थान अलग देना चाहिए। इससे उस ग्रंथ या लेखक की भाषा पर विचार करते समय, उसमें प्रयुक्त मुहावरों और लोकोक्तियों का अध्ययन या मुहावरों-लोकोक्तियों में प्रयुक्त शब्दों का अध्ययन करने में सहायता मिलेगी।

शब्दानुक्रमणी में सन्दर्भ देने में बहुत सतर्कता बरती जानी चाहिए और प्रयुक्त पद्धति की भूमिका में स्पष्ट उल्लेख होना चाहिए। पद्य ग्रंथों में प्रबन्ध-काव्य हो तो सर्ग या अध्याय और छंद की संख्या दी जा सकती है। मुक्तक हो तो छंद की संख्या और पंक्ति दी जा सकती है। गद्य ग्रंथों में अध्याय, पृष्ठ और पंक्ति या केवल पृष्ठ दिया जा सकता है। भूमिका में संस्करण का उल्लेख अवश्य होना चाहिए, नहीं तो विभिन्न संस्करणों में गद्य में और कभी-कभी पद्य में भी पृष्ठ और पंक्ति में अन्तर होने पर शब्द का ठीक पता नहीं चल पाता। यदि किसी लेखक के पूरे साहित्य की अनुक्रमणी बन रही हो, तो उपर्युक्त बातों के अतिरिक्त पुस्तक के नाम का संक्षेप भी दिया जाना चाहिए। हमारी पुस्तक 'कामायनी : शब्दानुक्रमणिका' इस दृष्टि से देखी जा सकती है।

अब तक हम लोग लिखित साहित्य से शब्द-संकलन की बात कर रहे थे। लिखित सामग्री से शब्द-संकलन परिश्रम-साध्य भले हो, कठिन नहीं है, किन्तु मुँह से सुनकर शब्दों का संकलन परिश्रम-साध्य होने के साथ बहुत कठिन भी है। यही नहीं, किसी बोलचाल की भाषा के सभी शब्दों का सकलन प्रायः असम्भव-सा है। क्योंकि ऐसा भी हो सकता है कि संकलन-काल में उपयुक्त अवसर के अभाव में

बहुत से शब्द प्रयुक्त ही न हुए हों। ख़ैर, इस कठिनाई के बावजूद इस दिशा में प्रयास करना ही पड़ता है।

किसी बोली जाने वाली भाषा या बोली के अलिखित रूप से शब्दों के लिए जो पद्धति काम में लाई जाती है उसे 'सर्वेक्षण-पद्धति' कहते हैं। इस प्रकार के सर्वेक्षण से न केवल शब्द, अपितु उनमें प्रयुक्त ध्वनियाँ, उनका वाक्य-गत प्रयोग, उनके उच्चारण में प्रयुक्त बलाघात या सुरलहर आदि सभी बातों का पता चल जाता है। यों कहने की आवश्यकता नहीं कि शब्दों के सर्वांगीण अध्ययन के लिए इन सभी की जानकारी अपेक्षित है।

किसी क्षेत्र से भाषिक सामग्री का संकलन प्रायः दो प्रकार से करते हैं: (1) स्वयं उस क्षेत्र में जाकर; (2) उस भाषा को मातृभाषा के रूप में बोलने वाले आर्थात् मातृभाषाभाषी (Native speaker) को अपने यहाँ बुलाकर।

इन दोनों में प्रथम ही अपेक्षाकृत अधिक अच्छा है, क्योंकि उस क्षेत्र में उस भाषा का अपना वातावरण बना रहता है, अतः सहज रूप में सम्बद्ध और अपेक्षित सारी सामग्री प्राप्त करना सम्भव होता है। क्षेत्र के बाहर बुलाने में निम्नांकित कारणों से ठीक और अपेक्षित पूरी सामग्री नहीं मिल पाती: (क) उक्त भाषा का वहाँ मूल वातावरण नहीं रहता, जिसमें भाषा बोली जाती है। इसके कारण कुछ असहजता आ जाती है। (ख) बाहर जाने से नये वातावरण के भी कुछ प्रभाव की सम्भावना होती है जो चाहे बहुत थोड़े रूप में सही, सूचक को प्रभावित कर सकता है। (ग) सूचक के घर या उसके गाँव में जाकर उससे बात करने पर वह अधिक सहज रूप में उत्तर देता है, किन्तु यदि उसे कहीं बाहर बुलाया जाय तो उसके अपनी भाषा के प्रति अधिक सतर्क हो जाने की संभावना होती है, जिसका परिणाम यह होता है कि ऐसे शब्द जिन्हें वह शिष्ट या परिनिष्ठित नहीं समझता, प्रायः छोड़ जाता है। इसके विपरीत उसके अपने वातावरण में सहज रूप से बात करने का यदि यत्न किया जाय तो ऐसी सामग्री के छूटने की अपेक्षाकृत कम संभावना रहती है। (घ) उस गाँव में होने पर किसी शब्द या उसके प्रयोग आदि में संदेह होने पर दूसरों से बात करके सही रूपादि प्राप्त किए जा सकते हैं, किन्तु उस क्षेत्र के बाहर ऐसी सुविधा नहीं होती। (ङ) क्षेत्र में हाथ से इशारा करके भी अनेक वस्तुओं, संबंधों, क्रियाओं के नाम आदि पूछे जा सकते हैं, किन्तु क्षेत्र के बाहर, यह आवश्यक नहीं है कि क्षेत्र में उपलब्ध सभी वस्तुएँ आदि हों ही। इस तरह न केवल सामग्री छूट जाने का भय रहता है, अपितु यह निश्चित है कि क्षेत्र से बाहर एक-दो सूचकों की सहायता से उस भाषा या बोली की पूरी शब्द-संपत्ति नहीं प्राप्त की जा सकती।

सूचक से सामग्री प्राप्त करने के लिए उसके संपर्क में आना पड़ता है। इस प्रसंग में आने वाली स्थिति दो प्रकार की हो सकती है। कभी तो ऐसा होता है कि सूचक केवल अपनी भाषा जानता है, उसे किसी ऐसी दूसरी भाषा की जानकारी नहीं होती जो सामग्री संकलित करने वाले या अन्वेषक को ज्ञात हो; और

कभी-कभी इसके विपरीत वह ऐसी कोई एक (या अनेक) भाषा(एँ) जानता है, और वह भाषा (या भाषाएँ) उन दोनों के बीच विचार-विनिमय के माध्यम का कार्य करती है (हैं)। पहली स्थिति में उन दोनों के बीच केवल वही भाषा होती है, जिसकी सामग्री लेनी है, अतः इस रूप में सामग्री-संकलन की पद्धति को **एक-भाषिक** (monolingual) **पद्धति** कहते हैं, तथा दूसरी को **द्वैभाषिक** (bilingual) **पद्धति,** क्योंकि उस स्थिति में उन दोनों के बीच एक और भाषा भी आ जाती है। दूसरी में यदि एक से अधिक भाषाओं को माध्यम बनाया जाए तो उसे बहुभाषिक पद्धति कह सकते हैं। यों एकभाषिक पद्धति के सादृश्य पर दूसरों को **अनेकभाषिक पद्धति** भी कहा जा सकता है, जिसमें द्वैभाषिक और बहुभाषिक दोनों पद्धतियाँ समाहित हो सकती हैं। आगे की बातें मुख्यतः एकभाषिक पद्धति को ध्यान में रखकर कही गई हैं। द्वैभाषिक या बहुभाषिक पद्धति से सामग्री-संकलन अपेक्षाकृत अधिक सरल होता है। उसके लिए जिस भाषा को विचार-विनिमय का माध्यम बनाना होता है, उसमें प्रश्नावली तैयार करते हैं। प्रश्नावली बनाते समय मुख्यतः केवल इस बात का ध्यान रखते हैं कि वह इतनी व्यापक हो कि उसके उत्तरस्वरूप उक्त भाषा की अधिकाधिक शब्द-संपत्ति प्राप्त की जा सके।

सर्वेक्षण-पद्धति के सम्बन्ध में निम्नांकित बातें विचार्य हैं :

सूचक—जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, सूचक उस व्यक्ति को कहते हैं, जिससे सूचना (भाषा-विषयक सामग्री) प्राप्त की जाय। सूचक के चयन आदि के सम्बन्ध में प्रमुख रूप से ये बातें ध्यान में रखने की हैं :—

(1) सामान्यतया 17-18 वर्ष से कम का सूचक बहुत काम का नहीं होता। यों मेरा अपना अनुभव तो यह रहा है कि 30-35 वर्ष के आस-पास का सूचक बहुत अच्छा होता है क्योंकि वह अपनी भाषा की सूक्ष्मताओं से अधिक परिचित होता है। 40 वर्ष से ऊपर के सूचकों में साधारणतया अपेक्षित चुस्ती नहीं होती।

(2) कभी-कभी एक ही स्थान की भाषा, उच्च वर्ग-निम्न वर्ग, उच्च जाति-निम्न जाति, हिन्दु-मुसलमान, विशेष प्रकार के अलग-अलग पेशे आदि दृष्टियों से एकाधिक प्रकार की होती है। यह अंतर शब्द-समूह के क्षेत्र में सर्वाधिक होता है। सूचक-चयन के समय इसका विचार भी आवश्यक है। ऐसी स्थिति में कई सूचकों (कुछ पुरुषों कुछ स्त्रियों) से सामग्री लेना अधिक अच्छा रहता है।

(3) एक स्थान से दो-तीन सूचक लिये जाने चाहिए, किन्तु सभी से अलग-अलग (दूसरे की उपस्थिति में नहीं) सामग्री नोट करनी चाहिए। जो बातें सभी में समान हों, वे निश्चित रूप से ठीक हैं, किन्तु जिनमें अंतर है, आवश्यक नहीं कि सर्वदा ग़लत ही हों। उम्र, व्यवसाय, कुल-परंपरा, शिक्षा आदि अनेक कारणों से अंतर पड़ सकता है। ऐसी स्थिति में उन्हीं सूचकों से फिर सुनकर, या अन्य सूचकों से पता लगाकर शुद्धि-अशुद्धि या स्थानीय अंतर आदि का निर्णय किया जा सकता है।

(4) स्त्री-पुरुष में पुरुष सूचक अपेक्षाकृत अधिक अच्छे होते हैं, क्योंकि अधिक सामाजिक जीवन बिताने के कारण, उनका भाषा-विषयक अनुभव भी अधिक होता है। किन्तु इसके साथ ही यह भी उल्लेख्य है कि पुरुष सूचकों पर बाह्य प्रभाव की अधिक संभावना रहती है। स्त्री सूचक अपेक्षाकृत अधिक अप्रभावित एवं ठेठ भाषा का प्रयोग करती हैं। ऐसी स्थिति में यदि कोई कठिनाई न हो तो पुरुष और स्त्री दोनों से सामग्री ली जानी चाहिए।

(5) पुरुषों और स्त्रियों की भाषा में शब्दों, रूपों, मुहावरों आदि के स्तर पर कभी-कभी अंतर भी मिलते हैं। इसीलिए अपनी आवश्यकतानुसार पुरुष से, स्त्री से या दोनों से सामग्री ली जा सकती है।

(6) कभी-कभी कुछ पिछड़े वर्गों या जातियों में स्त्रियाँ दूसरों से नहीं मिलती-जुलतीं। ऐसे स्थानों पर केवल पुरुष सूचक से काम चलाना पड़ सकता है।

(7) शब्दों और प्रयोगों आदि के स्तरों पर कम आयु, अधिक आयु और बहुत अधिक आयु के लोगों में कभी-कभी अंतर मिलता है। शब्दों के स्तर पर भी इस प्रकार के अंतर मिलते हैं। हिन्दी में ही सुशिक्षितों की पुरानी पीढ़ी 'आश्चर्य' और 'मूर्ख' का प्रयोग करती है, किन्तु नई पीढ़ी 'अचरज' और 'मूरख' (सात यूगोस्लाव कहानियाँ—प्रभाकर माचवे 1962; इसमें एकाधिक बार 'मूर्ख' के स्थान पर 'मूरख' प्रयुक्त हुआ है) को भी परिनिष्ठित हिन्दी का अंग मानती है। सामान्यतः नई पीढ़ी के लोगों को धर्म-अंधविश्वास आदि विषयक शब्दों या वर्जित शब्दों (टैबू) के सम्बन्ध में पुरानी पीढ़ी की तुलना में कम जानकारी होती है। अलग-अलग क्षेत्रों में इससे मिलते-जुलते अन्य प्रकारों के भी अंतर मिल सकते हैं। यदि इस प्रकार अंतरों का ज्ञात करना भी हमारा लक्ष्य हो तो तदनुकूल सूचक चुने जा सकते हैं।

(8) सूचक कई पुश्तों से यदि उसी क्षेत्र में रह रहा हो, तो अधिक अच्छा है, क्योंकि बाहर से आने वालों की भाषा में किसी-न-किसी स्तर पर किन्हीं और भाषाओं के प्रभाव की पूरी संभावना रहती है। इस प्रकार उससे उस भाषा या बोली की शब्दावली का प्रकृत रूप नहीं मिल पाता।

(9) सूचक कई पीढ़ियों से वहाँ रह रहा हो किन्तु यदि वह अपने जीवन-काल में अधिक दिनों तक कहीं बाहर रहा हो तो भी उसकी भाषा में बाह्य तत्त्वों के आ जाने की संभावना रहती है, अतः अच्छा हो कि ऐसे व्यक्ति को सूचक बनाया जाए जो अधिक दिनों के लिए कहीं बाहर न गया हो।

(10) सामग्री के साथ सूचक का नाम, उसकी आयु, स्थान, परिवार की यात्रा, मूल स्थान, प्रवास तथा पेशा-विषयक संक्षिप्त इतिहास आदि लिख लेना चाहिए। सामग्री-विश्लेषण में इनसे बड़ी सहायता मिलती है।

(11) समझदार आदमी अधिक अच्छा सूचक बन सकता है, क्योंकि वह सर्वेक्षक की आवश्यकता को जल्दी समझ सकेगा।

(12) अल्पभाषी, लज्जालु, एकांतप्रिय या बहुत गंभीर व्यक्ति प्रायः अच्छे सूचक नहीं बन पाते। इसके विपरीत बातूनी, हँसमुख, न झेंपनेवाला व्यक्ति सूचक के लिए अपेक्षाकृत अधिक उपयुक्त होता है।

(13) सूचक ऐसा होना चाहिए जो सहज रूप में बोले। बहुत से लोग सतर्क होकर बनावटी भाषा बोलने लगते हैं। इस बात का पता चलते ही, या तो उसे छोड़ देना चाहिए या फिर उसके द्वारा प्रयुक्त शब्दों की प्रामाणिकता-अप्रामाणिकता का किसी अन्य अच्छे सूचक की सहायता से पता लगा लेना चाहिए।

(14) सभी दृष्टियों से विचार करने पर अन्य लोगों की तुलना में किसान प्रायः अपने क्षेत्र की भाषा को अधिक प्रकृत रूप में जानता तथा बोलता है, अतः मजदूर या अन्य नौकरी-पेशा व्यक्ति की तुलना में वह प्रायः अधिक अच्छा सूचक बन सकता है।

(15) ऐसा व्यक्ति जो कोई ऐसी भी भाषा जानता हो जिसका ज्ञान सर्वेक्षक को हो, ऐसी भाषा न जानने वाले की तुलना में सूचक का काम अधिक अच्छी तरह कर सकेगा। उससे बड़ी सरलता से और कम समय में अपेक्षित सारी सूचनाएँ ली जा सकती हैं।

(16) यदि कई पढ़े-लिखे सूचक उपलब्ध हों तो भाषाविज्ञान का जानकार सूचक अपेक्षाकृत अधिक अच्छा हो सकता है :—

सर्वेक्षक—सर्वेक्षक स्वभाव, योग्यता तथा प्रशिक्षण आदि की दृष्टि से कैसा हो, इस सम्बन्ध में ये बातें ध्यान में रखने की हैं :—

(1) सर्वेक्षक को यथाशीघ्र अपरिचित को परिचित एवं परिचित को मित्र बना लेने वाला, मिलनसार, विनम्र, व्यवहार-कुशल, हँसमुख, धैर्यवान अपना काम सहज ढंग से निकालने वाला, जिज्ञासु, सूचक से एक शिष्य की तरह भाषा सीखने तथा उसके सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करने को इच्छुक, बातचीत में पटु, चुस्त और सावधान होना चाहिए।

(2) उसकी स्मरणशक्ति बहुत अच्छी होनी चाहिए। इससे तुलना, विश्लेषण आदि में वह अपेक्षाकृत अधिक सफल हो सकता है।

(3) सर्वेक्षक को जिस क्षेत्र से सामग्री संकलित करनी हो, उसके भूगोल, इतिहास, संस्कृति और सभ्यता, रहन-सहन, लोग, जाति, उद्योग-धंधे आदि का यथासाध्य समुचित ज्ञान होना चाहिए। इससे उसे प्रश्नावली बनाने, लोगों से निकट सम्पर्क स्थापित करने, अच्छे सूचक चुनने और अंततः वहाँ से अपेक्षित सामग्री अच्छी तरह एकत्र करने में सहायता मिलेगी।

(4) उसकी स्मरणशक्ति इतनी तेज होनी चाहिए कि उच्चारण-स्थान, प्रयत्न प्राणत्व, अनुनासिकता, मर्मरता, मात्राकाल, सुर, अनुतान बलाघात, संगम आदि के सूक्ष्मातिसूक्ष्म अन्तर को अत्यन्त शीघ्रता से और ठीक-ठीक पकड़ सके। इसके लिए, सहज श्रवणशक्ति के अतिरिक्त, ध्वनिविज्ञान का सैद्धांतिक

ज्ञान, तथा उस ज्ञान के प्रयोग का उसे जितना ही अधिक अभ्यास होगा, वह उतनी ही कुशलता और सफलता से अपना काम कर सकेगा।

(5) भाषाविज्ञान—विशेषतः सामग्री-संकलन एवं सामग्री-विश्लेषण—में सैद्धांतिक और व्यावहारिक दोनों दृष्टियों से अच्छी गति, सर्वेक्षक के लिए बड़ी सहायक होती है।

(6) सर्वेक्षक को काफ़ी तेज़ लिखने का अभ्यास होना चाहिए, ताकि वह सूचक की बोलने की सहज गति को कम किये बिना अपेक्षित सामग्री नोट कर सके।

(7) ध्वन्यात्मक लिपि का न केवल अच्छा ज्ञान बल्कि तेज़ी से उसमें लिखने का अभ्यास भी होना उसे चाहिए।

प्रश्नावली—लोककथा, लोकगीत, पहेली या चुटकुले आदि के लिए तो किसी प्रश्नावली की अपेक्षा नहीं होती किन्तु शब्द, रूप, वाक्य आदि जानने के लिए सर्वेक्षक को प्रश्नावली बना लेनी चाहिए। प्रश्नावली बना लेने से एक तो सरलता एवं सहजता से सूचक अपेक्षित सूचनाएँ देता चलता है, दूसरे आवश्यक सूचनाओं के छूटने का भय नहीं रहता। यों ऐसी कोई भी प्रश्नावली नहीं बनाई जा सकती जो अपने मूल रूप में बिना किसी परिवर्तन के सभी क्षेत्रों में भाषा-सर्वेक्षण के काम आ सके, क्योंकि हर भाषा या बोली की अपनी सांस्कृतिक एवं सामाजिक पृष्ठभूमि भिन्न होती है। इसीलिए अच्छा यह होता है कि क्षेत्र के लोगों, जातियों, धर्म, रहन-सहन एवं उद्योग-धंधे आदि से परिचय प्राप्त करके ही सर्वेक्षक प्रश्नावली तैयार करे। फिर भी मोटे रूप से इस संबंध में कुछ सामान्य बातें बताई जा सकती हैं: (1) प्रश्नावली में स्थूल या मूर्त वस्तुओं या क्रियाओं से सम्बन्धित प्रश्न पहले आने चाहिए तथा सूक्ष्म या अमूर्त से सम्बन्धित बाद में। (2) व्याकरणिक दृष्टि से संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण तथा वाक्य के क्रम से सामग्री प्राप्त करने की दृष्टि से प्रश्नावली बननी चाहिए। (3) वाक्य के बाद कहानी, चुटकुले, गीत जैसी चीज़ें पूछकर नोट की जा सकती हैं। (4) प्रारम्भ में मुहावरे-लोकोक्तियाँ आदि कहानी आदि से खोजी जा सकती हैं। भाषा के बारे में अच्छी जानकारी हो जाने पर स्वतन्त्रतः भी इन्हें पूछकर मालूम किया जा सकता है। प्रश्नावली बनाते समय क्षेत्र की विशेषताओं को ध्यान में रखते हुए निम्न आधारों की सहायता ली जा सकती है:

(अ) **संज्ञा**—(क) **शरीर के अंग**—सिर, पैर, हाथ, अँगूठा, उँगली, नाखून, बाल, आँख, नाक, मुँह, कान, गाल, दाँत, जीभ, होंठ, भौं, गर्दन, छाती, पीठ, पेट, कमर, जाँघ, घुटना, पिंडली। हड्डी, रक्त, मांस, दिल, जिगर, फेफड़ा जैसी चीज़ों के नाम बाद में पूछे जा सकते हैं।

(ख) **संबंधियों के नाम**—बाप, माँ, भाई, पति, पत्नी, पुत्र, पुत्री, भाभी, जीजा, दादा, दादी, ताऊ, ताई, चाचा, चाची, नाना, नानी, मामा, मामी, मौसी, मौसा, बुआ, फूफा, साला, साली, सास, ससुर, पोता, पोती, नाती,

नातिन, पतोहू ।

(ग) **घरेलू चीज़ों के नाम**—चारपाई, बिछौना, रज़ाई, तकिया, चादर, लोटा, गिलास, थाली, कटोरी, पतीला, पतीली, कड़ाही, तवा, चमचा, अँगीठी, चूल्हा ।

(घ) **अन्न तथा खान-पान**—गेहूँ, धान, जौ, मटर, चना, बाजरा, उड़द, चावल, दाल, आटा, खाना, पानी, मिठाई, रोटी, पूड़ी, पराठा, सब्ज़ी, आलू, बैंगन, गोभी, पालक, आम, सेब, अमरूद, केला, अंगूर, संतरा, नीबू, अनन्नास, नाशपाती, अख़रोट, बादाम, किशमिश, काजू आदि ।

(ङ) **जीव-जन्तुओं के नाम**—गाय, भैंस, बकरी, बैल, भेड़, कुत्ता, बिल्ली, बन्दर, घोड़ा, हाथी, शेर, चीता, हिरन, गीदड़, ऊँट, मछली, चूहा, साँप, मेंढक, तोता, कोयल, मुर्ग़ी, बतख़, मक्खी, मच्छर आदि ।

(च) **फूलों के नाम**—गुलाब, चमेली, गेंदा, चम्पा, रातरानी, बेला आदि ।

(छ) **भौगोलिक नाम आदि**—नदी, नाला, समुद्र, पर्वत, घाटी, ज़मीन, आसमान, सूर्य, चाँद, तारे, बादल ।

(ज) **कपड़े आदि**—धोती, कुर्ता, टोपी, तौलिया, अँगोछा, रूमाल, कोट, पाजामा, बनियाइन, जूता, मोज़ा, कमीज़, स्वेटर आदि ।

(झ) **पढ़ने-लिखने की चीज़ों के नाम**—किताब, काग़ज़, क़लम, स्याही, पत्र, पत्रिका, अख़बार आदि ।

(आ) **सर्वनाम**—यदि एकभाषिक पद्धति से पूछना हो तो सर्वनामों में प्रारम्भ में मेरा घर, उसका घर, तुम्हारा घर जैसे प्रयोगों से, संबंध कारक के रूप मालूम किये जा सकते हैं तथा अन्य रूपों (मैं, हम, तुम, वह, यह, मुझे, उन्हें आदि) को बाद में जानने का यत्न किया जा सकता है । हाँ, द्वैभाषिक या बहुभाषिक पद्धति से यदि सामग्री एकत्र की जा रही हो तो मूल रूप (मैं, तुम, हम, वह, यह आदि) एवं संबंध के रूप दोनों ही नोट किये जा सकते हैं । अन्य रूप (उन्हें, मुझे, जिसे आदि) बाद में वाक्यों के विश्लेषण के बाद खोजे जाने चाहिए । उसके पूर्व इनको जानने का यत्न आवश्यक रूप से बहुत समय तो लेता ही है, स्पष्टतः पता चलना भी कठिन हो जाता है।

(इ) **विशेषण**—सबसे पहले संख्यावाचक विशेषण लें । इनमें भी पूर्ण तथा क्रम पहले और अपूर्ण आदि बाद में । पूर्ण में भी दस तक पहले तथा अन्य बाद में । रंग आदि विषयक विशेषणों को छोड़कर अन्य विशेषण वाक्य के माध्यम से अधिक अच्छी तरह जाने जा सकते हैं । ये बातें एकभाषिक पद्धति की दृष्टि से कही जा रही हैं । द्वैभाषिक आदि में इसका ध्यान रखना आवश्यक नहीं है ।

(ई) **वाक्य**—शब्दों के प्रयोग से संबंधित जानकारी फुटकर शब्दों से नहीं प्राप्त की जा सकती । वाक्य के स्तर पर ही इन्हें पाया जा सकता है । इसका अर्थ यह है कि ऐसे प्रश्न भी किए जाने चाहिए जिनके उत्तरस्वरूप वाक्यों की

प्राप्ति हो सके।

प्रश्नावली के लिए कुछ संकेत—संज्ञा के लिए : वस्तु या जानवर आदि की ओर संकेत करते हुए 'यह क्या है ?', व्यक्ति की ओर संकेत करते हुए 'यह कौन है ?' या 'यह तुम्हारा कौन है ?'

सर्वनाम के सम्बन्ध में कारकीय रूपों के लिए : वस्तु की ओर संकेत करते हुए 'यह किस का (की) है ?'

संख्याओं के लिए : कई वस्तुओं को एक स्थान पर रखकर 'ये कितनी हैं ?'

क्रिया के लिए : स्वयं चलते या कूदते हुए 'मैं क्या कर रहा हूँ ?' या दूसरे को कुछ करते हुए देखकर, संकेत करते हुए 'वह क्या कर रहा है ?' इत्यादि।

कहानी, गीत, चुटकुले आदि का संकलन—वाक्यों के बाद इनका संकलन करना चाहिए। इनके विश्लेषण द्वारा सूक्ष्म संज्ञाएँ (आत्मा, दया, श्रद्धा आदि), सूक्ष्म विशेषण (बुद्धू, चालाक, संतोषी आदि) प्रत्यय, उपसर्ग, समास तथा संधि आदि का पता लगाया जा सकता है तथा ऊपर जिनका उल्लेख किया जा चुका है, उनसे संबद्ध जानकारी की प्रामाणिकता की परीक्षा की जा सकती है। असल में इस प्रकार के संबद्ध पाठों (Texts) में ही भाषा अपने सहज और पूरे रूप में हमारे सामने आती है। इसी कारण इसके आधार पर अपने अनेक पूर्ववर्ती निर्णय हमें बदलने भी पड़ते हैं। यों इस संबंध में यह बात भी ध्यान में रखने की है कि कहानी तथा गीत आदि की भाषा कभी-कभी प्रचलित सहज भाषा से कई बातों में थोड़ी भिन्न तथा पुरानी होती है। उदाहरण के लिए अनेक भोजपुरी क्षेत्रों की बोलचाल की भाषा में मुझे पहिती ('सगपहिता' अपवाद है), लुचुई, सगौती शब्द नहीं मिले किंतु गीतों में इनका प्रयोग खूब मिलता है। गीतों में छंद की आवश्यकतानुसार तोड़-मरोड़ की प्रवृत्ति भी असामान्य नहीं है। इसका अर्थ यह हुआ कि कहानी, गीत आदि के आधार पर भाषा के स्वरूप-निर्धारण में इस दृष्टि से पर्याप्त सतर्कता बरतनी आवश्यक है।

बातचीत की रिकार्डिंग—दो या अधिक सूचकों की बातचीत की टेप रिकार्डर से रिकार्डिंग करके, उसे फिर सुनकर उसका विश्लेषण करना भी उस भाषा या बोली-विषयक सामग्री की प्राप्ति का अच्छा साधन है। सच पूछा जाय तो दो या अधिक सूचकों की आपसी बातचीत में ही भाषा का सर्वाधिक प्रकृत रूप मिल सकता है।

सामग्री-लेखन—इस संबंध में मुख्यतः निम्नांकित बातें ध्यान में रखने की हैं :—

(1) विश्लेषण के समय कभी-कभी यह जानना आवश्यक हो जाता है कि कौनसी सामग्री कब ली गई थी। अतः जिन चिटों पर सामग्री नोट करें उन पर उस दिन की तिथि भी अंकित होनी चाहिए। पहले से तिथि अंकित करने में बची चिटों पर तिथि काटनी पड़ती है, अतः प्रतिदिन नोट करने के बाद तिथि अंकित करना अधिक अच्छा होता है।

(2) यदि चिटों पर कोई संशोधन करना हो तो ऐसे काटकर लिखना चाहिए कि पूर्वलिखित सामग्री भी पढ़ी जा सके। कभी-कभी संशोधन पूर्व सामग्री को जानना भी आवश्यक हो जाता है।

(3) सामग्री कितने बड़े काग़ज़ पर नोट करें, यह प्रश्न भी विचारणीय है। नाइडा ने बड़े काग़ज़ पर सामग्री नोट करने की राय दी है, जिस पर काफ़ी कुछ लिखा जा सके। मेरे विचार में शब्द आदि छोटी-छोटी चिटों पर नोट करना अधिक अच्छा है, ताकि फिर से सामग्री उतारनी न पड़े और विश्लेषण में चिटों को आवश्यकतानुसार विभिन्न वर्गों में रखा जा सके। हाँ, कहानी, गीत आदि बड़े काग़ज़ पर नोट किये जा सकते हैं।

(4) काग़ज़ के एक तरफ़ लिखना चाहिए। दोनों तरफ़ लिखने में तुलना करते समय बहुत समय लग जाता है तथा विश्लेषण में भी कठिनाई पड़ती है।

(5) छिपाकर नहीं लिखना चाहिए। इससे सूचक को सर्वेक्षक के उद्देश्य पर संदेह हो सकता है।

(6) प्रत्येक शब्द को सुनकर कम से कम दो बार लिखना अधिक अच्छा होता है। लिखने के बाद तुरन्त एक बार दुहरा भी लेना चाहिए ताकि लेखन में यदि कोई त्रुटि हो तो उसे ठीक किया जा सके।

(7) जो शब्द जैसे सुनाई पड़ें, वैसे ही लिखना चाहिए। किसी स्तर पर बलात् एकरूपता लाने का यत्न नहीं किया जाना चाहिए। अनुसंधाता में ऐसी ईमानदारी बहुत ही आवश्यक है।

(8) सामग्री सामान्य लिपि में न लिखी जाकर ध्वन्यात्मक लिपि में लिखी जानी चाहिए।

(9) सामग्री नोट करने के लिए अच्छी क़िस्म की पेंसिल या बॉल पेन का प्रयोग अच्छा रहता है। इससे एक तो अपेक्षाकृत अधिक तेज़ी एवं सरलता से लिखा जा सकता है, दूसरे, काग़ज़ के भीगने पर अपठ्य होने का भय नहीं रहता और तीसरे, स्याही साथ रखने की परेशानी से भी छुटकारा मिल जाता है।

(10) टेप रिकार्डर से टेप करके, बाद में अकेले बैठकर भी सामग्री लिखी जा सकती है।

अर्थ—सामग्री लिखने के साथ-साथ उसका अर्थ भी लिखते चलना चाहिए। इस संबंध में निम्नोक्त बातें ध्यान में रखी जानी चाहिए :—

(1) स्थूल वस्तुओं के सुनिश्चित अर्थ (जैसे रोटी, चारपाई, मकान आदि) तो सरलता से लिखे जा सकते हैं।

(2) जिन शब्दों के लिए अपनी भाषा में शब्द न मिलें उनकी व्याख्या लिखी जा सकती है।

(3) बहुत-सी वस्तुओं के ऐसे भी नाम मिल सकते हैं जिनके लिए अपनी भाषा में शब्द नहीं हैं, और उनकी ठीक व्याख्या लिखना भी जल्दी में कठिन होता है, ऐसी स्थिति में उनके रेखाचित्र या संकेत से काम चलाया जा सकता है।

(4) अर्थ की दृष्टि से अस्पष्ट शब्दों के अर्थ उनके प्रयोग से पकड़ने का प्रयास करना चाहिए, क्योंकि सूचक के लिए शब्द का अर्थ समझना—विशेषतः ठीक अर्थ समझना—सर्वदा सम्भव नहीं होता ।

सर्वेक्षक के लिए अन्य सुझाव—ऊपर, सर्वेक्षक कैसा हो, इस सम्बन्ध में कुछ बातें कही गई हैं। यहाँ कुछ वे बातें दी जा रही हैं, जिनका उसे सर्वेक्षण करते समय ध्यान रखना चाहिए :—

(1) यदि सूचक की अभिवादन पद्धति से सर्वेक्षक परिचित है या मिलते ही देखकर परिचित हो जाता है तो उसे उसी पद्धति से तुरन्त अभिवादन करना चाहिए। प्रारम्भ में बिना विशेष परिचय के अपनी पद्धति से अभिवादन करना उचित नहीं होता, क्योंकि ऐसा भी हो सकता है कि सर्वेक्षक की पद्धति से सूचक परिचित न हो और पहली भेंट में ही उसकी यह हरकत सूचक के लिए एक रहस्य बन जाय, या यह भी हो सकता है कि उस प्रकार की क्रिया (जैसे हाथ उठाना) उसकी अपनी संस्कृति में कुछ भिन्न या ख़राब अर्थ रखती हो। विशेषतः किसी भी देश के बहुत पिछड़े आदिवासियों में जाते समय इस बात का ध्यान नितांत आवश्यक है।

(2) सूचक से मुस्कराते हुए मिलना चाहिए। यों विभिन्न स्थितियों में मुस्कराहट व्यंग्य या मज़ाक़ उड़ाने की द्योतक होती है, किन्तु प्रथम के मिलन समय की सहज मुस्कान प्रायः सभी संस्कृतियों में इसी बात का द्योतन करती है कि मिलकर बड़ी प्रसन्नता हुई। विशेषतः एकभाषिक पद्धति में तो यह मुस्कान और भी आवश्यक हो जाती है, क्योंकि सर्वेक्षक ऐसी स्थिति में नहीं होता कि बोलकर अपने भावों को सूचक तक पहुँचा सके।

(3) मिलते ही चुप न रहकर किसी न किसी भाषा में (चाहे उसे सूचक भले न समझता हो) बात करनी शुरू कर देनी चाहिए। सूचक पर इसकी सहज प्रतिक्रिया यही होगी कि सर्वेक्षक बात करना चाहता है।

(4) यदि सूचक की सभ्यता में प्रचलित विनम्रता एवं शिष्टता के ढंगों से सर्वेक्षक परिचित हो तो उसे उसी के अनुरूप व्यवहार करना चाहिए। उससे सूचक को अपनी ओर आकर्षित करने एवं उससे अपेक्षित सहयोग प्राप्त करने में मदद मिलती है।

(5) पिछड़े क्षेत्र में कुछ उपहार (जैसे मिठाई आदि) लेकर जाना प्रायः अच्छा साबित होता है। यदि सर्वेक्षक को इस बात का पता हो कि सूचक के क्षेत्र में कैसा उपहार विशेष पसंद किया जायेगा तो उसे वही लेकर जाना चाहिए।

(6) सूचक से मैत्रीपूर्ण भंगिमा से स्नेहपूर्ण व्यवहार करना चाहिए।

(7) सर्वेक्षक कुछ सीखने के लिए सूचक के पास जाता है। उसे सच्चे अर्थों में अपने को शिष्य समझना चाहिए।

(8) सूचक की हर परम्परा, बात एवं व्यवहार आदि के प्रति सर्वेक्षक को सहज प्रशंसात्मक दृष्टिकोण अपनाना चाहिए तथा ऐसा व्यवहार करना चाहिए

कि सूचक को भी इस दृष्टिकोण का पता चल जाए ।

(9) यदि सूचक से कोई ग़लती हो जाय तो ऐसा रुख़ अपनाना चाहिए या ऐसा व्यवहार करना चाहिए जिससे उसे ग्लानि, संकोच आदि न हो, और उसे लगे कि सर्वेक्षक यह कहना चाहता है कि कोई बात नहीं, ऐसी ग़लतियाँ तो हो ही जाती हैं । या ऐसी ग़लती देखकर भी नज़रंदाज़ कर देना चाहिए ताकि सूचक को लगे कि सर्वेक्षक ने देखा नहीं, या ध्यान नहीं दिया, ताकि उसमें लज्जा, संकोच आदि के भाव न आएँ ।

(10) सूचक के साथ जब तक भी सर्वेक्षक रहे, उसे प्रसन्नचित्त रहना चाहिए ।

(11) यदि किसी प्रकार यह पता चल जाय कि किसी कारण सूचक कुछ दुखी है तो ऐसी स्थिति में उस समय उससे सामग्री लेने का प्रयास न कर उसके लिए फिर कभी जाना चाहिए। यदि किसी प्रकार संभव हो तो ऐसी स्थिति में सहानुभूति के भाव व्यक्त करना उसके समीप जाने में बहुत सहायक होता है ।

(12) सूचक यदि कोई बात अशुद्ध भी बतलाए तो न तो उसे टोकना चाहिए और न उससे विवाद करना चाहिए । यदि किसी बात के अशुद्ध होने का संदेह है तो बिना उसे बताए, उससे फिर एक बार घुमा-फिरा कर किसी अन्य प्रसंग में वही बात पूछ लेनी चाहिए । यदि फिर भी ग़लती का संदेह हो तो बाद में दूसरे सूचक से पूछना चाहिए ।

(13) यदि अपने से कोई ग़लती या अभद्रता हो जाय तो सर्वेक्षक को क्षमा याचना करनो चाहिए । नाइडा ने अपनी भूलों पर तुरंत हँसने की सलाह दी है । मेरे विचार में कुछ स्थितियों में तो यह ठीक हो सकता है, किंतु सभी स्थितियों में भूल करके हँसने से ग़लतफ़हमी हो सकती है ।

(14) सूचक के शब्द या वाक्य दुहराने में यदि सर्वेक्षक से कोई अशुद्धि हो जाए और इस पर सूचक या अन्य लोग हँसे तो इसका बुरा न मान, फिर से ठीक कहने का प्रयास करना चाहिए, और उन लोगों के साथ अधिक से अधिक बात-चीत करनी चाहिए ।

(15) सर्वेक्षक को सूचक या उस भाषा के भाषियों के सम्पर्क में अधिक से अधिक रहना चाहिए, ताकि उन लोगों को आपस में बात करते सुना जा सके ।

(16) सूचक से सुने गए कुछ शब्द या वाक्य यथावसर सूचक के सामने प्रयुक्त किए जाएँ तो सूचक आगे और भी तत्परता से बतलाता है, क्योंकि उसे विश्वास हो जाता है कि उसकी भाषा के सम्बन्ध में जानकारी एकत्र करने वाला व्यक्ति बताई गई चीजें परिश्रम से याद कर रहा है ।

(17) सूचक के साथ लगातार बहुत देर तक काम करना ठीक नहीं होता । ऐसा न हो कि वह ऊब कर बतलाने में रुचि लेना छोड़ दे । नाइडा ने 45 मिनट को सामान्यत: ठीक समय माना है । मेरे विचार में ऐसा कोई नियम बनाना कदा-

चित् बहुत व्यावहारिक नहीं। वस्तुतः समय का निर्धारण सूचक की प्रकृति (कम बोलने वाला या बातूनी), उसके पास कितना समय है, उसकी उम्र (मेरा अनुभव यह रहा है कि अधेड़ या कुछ बूढ़े देर तक बिना ऊबे बतलाते रहते हैं, और 18-20 वर्ष की उम्र वाले सबसे जल्दी ऊब जाते हैं) तथा उसके स्वास्थ्य आदि के आधार पर भाषा-सर्वेक्षक स्वयं कर सकता है।

(18) सूचक से एक ही बात बार-बार दुहराने को नहीं कहना चाहिए। इससे वह ऊब सकता है। यदि दो-तीन बार के बाद भी उसी को दुहराने की आवश्यकता है, तो ऐसा बाद में किसी और प्रसंग में करना अधिक उचित होता है।

(19) 'ऐसा क्यों' या इस प्रकार के प्रश्न पूछना उचित नहीं। यदि सूचक जानता है तो बतला देगा, और यदि नहीं जानता है तो यह सोचकर कि उसे अपनी भाषा के बारे में नहीं मालूम है, झेंप सकता है और आगे सर्वेक्षक की सहायता करने से कतरा सकता है। सूचक ऐसी स्थिति में यह सोचकर भी हीन-ग्रन्थि का अनुभव करता है कि सर्वेक्षक उसके बारे में क्या सोचेगा कि इसे अपनी भाषा के बारे में इतनी-सी बात भी नहीं मालूम है।

(20) नाइडा ने लिखा है कि एक बार कोई सर्वेक्षक अँगुली से इशारा करके विभिन्न वस्तुओं के नाम पूछता रहा, और सूचक हर बार एक ही उत्तर देता रहा। हुआ यह कि हर बार सूचक यह समझता था कि सर्वेक्षक अँगुली का नाम पूछ रहा है और वह वही बताता रहा। इस प्रकार जब एक ही उत्तर बार-बार मिले तो ऐसी ग़लतफ़हमी का अनुमान लगा लेना चाहिए, और इससे बचने के लिए वस्तु को छुआ जा सकता है या और तरीक़े अपनाये जा सकते हैं।

(21) नाम जानने के लिए सूचक की वस्तुओं को देखने में, अपनी वस्तुओं को दिखाना बहुत सहायक होता है। इसका आशय यह भी हुआ कि सर्वेक्षक भी अपने साथ कुछ वस्तुएँ ले जाय, और अच्छा हो कि वह पहले अपनी वस्तुएँ दिखाए।

(22) अपनी वस्तुएँ दिखाते समय सर्वेक्षक को सतर्कता के साथ सूचक के शब्दों को सुनना चाहिए। निश्चित रूप से वह 'यह क्या है' या 'इसका क्या नाम है' या 'यह किस काम आती है' का समानार्थी कोई शब्द या वाक्य प्रयुक्त करेगा। इस प्रकार के प्रश्नों के लिए उनके द्वारा प्रयुक्त शब्दों या वाक्यों को जान लेने पर उनकी वस्तुओं के नाम तथा काम आदि पूछने में सर्वेक्षक को आसानी रहेगी।

(23) इस सम्बन्ध में एक यह बात भी ध्यान देने की है कि यदि सूचक से सुनकर उसी रूप में प्रश्न किया जाय और सूचक एक शब्द न कहकर एक या कई वाक्य कहे, या देर तक बोलता रहे, तो उसका आशय यह समझना चाहिए कि उस प्रश्न का अर्थ 'इसका क्या नाम है' न होकर 'यह किस काम आता है' है।

(24) अपनी वस्तुएँ दिखाते समय उनके नाम तथा काम आदि के बारे में कुछ कहते रहना चाहिए, यद्यपि यह निश्चित है कि सूचक कुछ नहीं समझेगा। इससे लाभ यह होगा कि अपनी वस्तुएँ दिखाते समय वह भी उनके बारे में कुछ कहना चाहेगा, जिससे उसकी भाषा को सुनने और कुछ प्रारम्भिक बातों को पकड़ने का अवसर मिलेगा।

(25) सूचक की संस्कृति एवं उसके अन्धविश्वास आदि को ध्यान में रखते हुए उन वस्तुओं के नाम प्रायः नहीं पूछने चाहिए, जिन्हें बताने में सूचक को किसी भी कारण संकोच हो। उदाहरण के लिए, अनेक पिछड़ी जातियों के आदिवासी अपना नाम, रात में साँप-बिच्छू के नाम तथा शैतान-भूत आदि तथाकथित अमांगलिक शक्तियों ग्रादि के नाम लेना नहीं चाहते।

आदिम जातियों में कुछ शब्द टैबू होते हैं। यदि उनकी जानकारी हो तो उन्हें भी नहीं पूछना चाहिए।

(26) सूचक की चीज़ें देखते समय उन चीज़ों के बारे में, उसके न समझने के बावजूद कुछ कहते और पूछते रहना चाहिए, जिससे वह स्पष्ट समझ जाय कि उन वस्तुओं के बारे में सर्वेक्षक जानना-सुनना चाहता है। इसका परिणाम यह होगा कि वह हर वस्तु को दिखाने के समय उसके नाम-काम के बारे में कुछ कहता चलेगा जिससे अनेक वस्तुओं के नाम जानने तथा सूचक की भाषा समझने-सीखने में मदद मिलेगी।

(27) अनुसंधाता को सूचक की वस्तुओं के प्रति प्रशंसात्मक भाव व्यक्त करते समय इस बात का पूरा ध्यान रखना चाहिए कि लोभ या उस वस्तु को लेने की गंध न आने पाए।

(28) सूचक की सभी वस्तुओं के सम्बन्ध में सर्वेक्षक को सहज जिज्ञासा का भाव प्रदर्शित करना चाहिए।

(29) ऊपर 'यह क्या है' का समानार्थी शब्द या वाक्य जानने के लिए कहा जा चुका है। वस्तुतः सर्वेक्षक के लिए सूचक की भाषा के तीन वाक्य जानने बहुत आवश्यक हैं : 'वह क्या है', 'वह किसका है', 'वह क्या कर रहा है'। इनमें प्रथम से अनेक संज्ञा शब्दों, दूसरे से सर्वनामों के सम्बन्ध कारक के रूपों तथा तीसरे से अनेक धातुओं की जानकारी हो जाती है।

(30) भाषा एवं वक्ता से सम्बद्ध विभिन्न प्रकार की जानकारी के लिए, विभिन्न विषयों एवं अवसरों पर, तथा विभिन्न वर्गों, जातियों, धर्मों और स्तरों के लोगों के बीच बातें सुननी चाहिए। इससे उस भाषा के विभिन्न स्तरों के शब्द आदि समझने में आसानी होगी।

(31) काम के बाद समय मिलते ही सामग्री का विश्लेषण आरम्भ कर देना चाहिए। इससे आगे के काम में मदद मिलती है तथा जानी गई बातों के भूलने का भय नहीं रहता, और वे याद होती चलती हैं।

उपर्युक्त पद्धति से किसी भाषा का अलिखित शब्द-भांडार तथा उससे

सम्बद्ध अन्य बातें एकत्र की जा सकती हैं, किन्तु इसमें जल्दी नहीं करनी चाहिए। ध्वनि, रूप, तथा वाक्य-नियम विषय सामग्री अपेक्षाकृत जल्द एकत्र की जा सकती है, किन्तु किसी भाषा की पूरी या पर्याप्त शब्दावली एकत्र करने के लिए कई वर्षों का समय चाहिए क्योंकि इसके लिए सम्बद्ध पूरे प्रदेश के सभी धर्मों, जातियों, व्यवसायियों, स्तरों एवं अवस्था के सूचकों से सामग्री लेनी आवश्यक होती है।

5

शब्दरचनाविज्ञान

शब्दों के अध्ययन के प्रसंग में स्वभावतः हमारा ध्यान सर्वप्रथम शब्दों की रचना पर जाता है। इसीलिए सबसे पहले शब्दविज्ञान की एक शाखा के रूप में शब्दरचनाविज्ञान को लिया जा रहा है। जिस प्रकार भाषाविज्ञान में भाषा का अध्ययन किया जाता है, या शब्दविज्ञान में शब्द का अध्ययन किया जाता है, उसी तरह शब्दरचनाविज्ञान में शब्दों की रचना का अध्ययन किया जाता है।

जैसा कि पीछे संकेत किया जा चुका है, रचना की दृष्टि से शब्द दो प्रकार के होते हैं। एक को 'रूढ़' कहते हैं तथा दूसरे को 'यौगिक'। कहना न होगा कि रचना की दृष्टि से यौगिक शब्द ही विचारणीय हैं। रूढ़ शब्द मूल होते हैं, अतः उनकी रचना का प्रश्न नहीं उठता। विभिन्न भाषाओं में यौगिक शब्दों की रचना मुख्यतः निम्नांकित ढंग से की जाती है :

(क) उपसर्ग या पूर्वप्रत्यय के योग से—उपसर्ग शब्द के पहले जोड़े जाते हैं। जैसे क (कपूत), स (सपूत), प्र (प्रयत्न), ला (लावारिस), दुर् (दुराग्रह) आदि।

(ख) मध्यसर्ग या मध्यप्रत्यय के योग से—हिन्दी में इसका प्रयोग नहीं मिलता। मुंडा भाषा में दल=मारना, दपल=परस्पर या एक-दूसरे को मारना। यहाँ 'प' को दल के मध्य रख दिया गया है, अतः इसे मध्यसर्ग या मध्य-प्रत्यय कहते हैं। मध्यसर्ग का प्रयोग कुछ ही भाषाओं में मिलता है।

(ग) प्रत्यय या परप्रत्यय के योग से—भाषा में इसके योग से सर्वाधिक शब्दों का निर्माण होता है। जैसे ता (सुन्दरता), आई (बड़ाई), त्व (घनत्व), ई (क्रोधी), औती (कटौती) आदि।

(घ) एक से अधिक शब्दों के योग से—इस तरह बने शब्द को हिन्दी आदि बहुत-सी भाषाओं में 'समस्त शब्द' कहते हैं। इसमें दो या अधिक शब्दों को एक में मिलाकर रखते हैं : घोड़ागाड़ी, डाकख़ाना, रामकहानी, रामानुजाचार्य (राम+अनुज+आचार्य), सुखदुःखानुभूति (सुख+दुख+अनुभूति), टाँय-टाँय-फिस। संस्कृत में ऐसे शब्द बहुत बड़े-बड़े भी बना करते थे। प्रायः सभी भारतीय भाषाओं की व्याकरण की पुस्तकों में समास प्रकरण में इसका विस्तृत विवरण दिया रहता है। विश्व की सभी भाषाओं में इस प्रकार शब्द नहीं बनते।

सामान्यतः दो शब्दों के ही समस्त शब्द बनते हैं। एक या दूसरे या दोनों शब्दों की प्रधानता के आधार पर समस्त शब्दों के संस्कृत व्याकरण में चार भेद किये गए हैं : अव्ययीभाव (पहला शब्द प्रमुख हो; जैसे हरघड़ी), तत्पुरुष (दूसरा प्रधान; जैसे देशनिकाला), द्वन्द्व (दोनों प्रधान; जैसे गाय-बैल), बहुव्रीहि (कोई प्रधान न हो, जैसे नीलकंठ)।

दोनों शब्दों को जोड़ने में कभी तो किसी भी प्रकार का परिवर्तन नहीं होता (जैसे घोड़ागाड़ी, हाथीखाना, करोड़पति) और कभी बीच में कोई नई ध्वनि आ जाती है। (जैसे अर्थच्छटा)। अधिकतर ऐसा होता है कि न दोनों शब्द ज्यों के त्यों रहते हैं, और न बीच में कोई नई ध्वनि आ जाती है, बल्कि दोनों शब्दों के मिलने के स्थान पर ध्वनियाँ एक-दूसरे से प्रभावित होकर परिवर्तित हो जाती हैं। जैसे अति + अंत = अत्यन्त, पर + उपकार = परोपकार। आगे शब्दध्वनिविज्ञान अध्याय में इन पर संक्षेप में विचार किया गया है।

समस्त शब्दों के दोनों ही सदस्य कभी तो सार्थक होते हैं : घुड़दौड़, कथाकार, पुस्तकालय, संवाददाता, ऐसा-वैसा, जहाँ-तहाँ; कभी एक सार्थक होता है और एक निरर्थक तथा निरर्थक शब्द प्रायः सार्थक की सानुप्रासिक पुनरुक्ति होता है : ठीक-ठाक, भोला-भाला, पूछना-ताछना, औने-पौने, होना-हवाना, चाल-ढाल, आमने-सामने, आस-पास। निरर्थक शब्द कभी तो पहले आता है (औने-पौने, आमने-सामने) और कभी बाद में (धोना-धाना, ठीक-ठाक, पूछताछ)। कभी-कभी दोनों ही शब्द निरर्थक होते हैं, किन्तु आश्चर्य है कि दोनों मिलकर सार्थक हो जाते हैं : हट्टा-कट्टा, टीम-टाम, अल्लम-गल्लम, अट-सट, अटर-सटर, गिट-पिट, सिट्टी-पिट्टी। कभी-कभी तीन भी—आँय-बाँय-शाँय, टाँय-टाँय-फिस। यों पुनरुक्ति पूर्ण भी हो सकती है : अच्छे-अच्छे, कौड़ी-कौड़ी, दाना-दाना; अपूर्ण भी : चौड़ा-चकला, बीच-बचाव।

कभी-कभी एक ही अर्थ के दो शब्द साथ आ जाते हैं : मान-सम्मान, लाज-शर्म, हाट-बाज़ार, सौदा-सुल्फ़, समझना-बूझना, भरा-पूरा, बनिया-बक्काल, लाज-शर्म, काग़ज़-पत्तर। कभी अर्थ एक न होने पर भी काफ़ी समीपता रहती है : घर-द्वार, खेलना-कूदना, लूला-लँगड़ा, टूटा-फूटा, ज़ोर-शोर। कभी-कभी शब्द भिन्नार्थी या विरोधी भी होते हैं : रात-दिन, साँझ-सवेरे, सोना-जागना, खाना-पीना, नाचना-गाना, पढ़ना-लिखना।

कभी-कभी प्रति-ध्वनि शब्द भी साथ आते हैं : घोड़ा-वोड़ा, पानी-सानी, चाय-चूय, चाय-शाय।

कभी-कभी दो शब्दों के कुछ-कुछ भाग लेकर भी शब्द बनाए जाते हैं : मोटल (मोटर + होटल), ब्रंच (ब्रेकफ़ास्ट + लंच), टिल्क (टी + मिल्क)।

(ङ) **कई शब्दों की प्रारम्भिक ध्वनियों से**—तत्त्वतः यह भी 'घ' में ही आ सकता है क्योंकि इसमें भी किसी-न-किसी रूप में कई शब्दों का प्रयोग होता है, किन्तु जोड़ने की पद्धति भिन्न होने के कारण इसे अलग स्थान दिया जा रहा

है। भाषाओं में इस प्रकार की प्रवृत्ति उपर्युक्त अन्यों की भाँति न तो बहुत पुरानी है और न बहुत अधिक एक-दो उदाहरणों को छोड़ शेष उदाहरण प्रायः अत्याधुनिक काल के हैं। इस नवीन प्रवृत्ति का कारण यह है कि आजकल कभी-कभी काफ़ी शब्दों को एक साथ रखकर नाम (संस्था, व्यक्ति आदि के) के रूप में प्रयुक्त करना पड़ता है, और बहुत बड़ा नाम बार-बार लेना असुविधाजनक होता है। इसमें समय और शक्ति दोनों का अपव्यय होता है। इसीलिए 'मोहनदास करमचन्द गाँधी' के स्थान पर मो० क० गाँधी या एम० के० गाँधी कहा जाता है। एच० जी० वेल्ज़, जे० बी० कृपलानी, जी० बी० शॉ आदि भी ऐसे ही उदाहरण। ऐसे उदाहरणों में तो केवल प्रारम्भिक शब्द या शब्दों की आदि ध्वनि (या अक्षर) ली जाती है, अन्तिम शब्द प्रायः ज्यों-का-त्यों रहता है। साथ ही ये सब मिलकर एक शब्द नहीं बनाते। इसके विपरीत ऐसे नाम भी मिलते हैं, जिनमें सभी शब्दों की प्रथम ध्वनि लेकर उन्हें मिलाकर एक शब्द बना लेते हैं। उदाहरण के लिए हिन्दी में 1966 में एक नया शब्द चला—'संविद'। यह शब्द 'संयुक्त विधायक दल' के सं वि द के योग से बना है। इसी प्रकार नाटो=नॉर्थ अटलांटिक ट्रीटी ऑर्गनाइज़ेशन (North Atlantic Treaty Organisation); इप्टा=इंडियन पीप्ल थिएटर असोसिएशन (Indian People Theatre Association); यूनेस्को=यूनाइटिड नेशन्स एज्यूकेशनल, साइंटिफ़िक ऐंड कल्चरल ऑर्गनाइज़ेशन (United Nations Educational, Scientific and Cultural Organisation); राडार=रेडियो डिटेक्शन ऐंड रेंजिग (Radio Detection and Ranging) आदि। मध्य प्रदेश में एक स्टेशन और नगर का नाम है नेपा। यह नाम वहाँ की काग़ज़ मिल के नाम (National News Print Mill Limited) से 'ने' 'प' के आधार पर 'आ' बोलने की सुविधा के लिए जोड़कर बना दिया गया है। 'मिग' (जहाज़ का नाम) अपने बनाने वालों—मिकोयान (Mikoyan) तथा गुरेविच (Gurevitch)—के नाम के 'मि' और 'ग' का योग है। भारत की उत्तरी-पूर्वी सीमा के प्रदेशों के लिए इसी प्रकार नेफ़ा (North East Frontier Agency) नाम प्रचलित हुआ, जिसे हिन्दी में उपूसी (उत्तरी पूर्वी सीमा) कहा गया। संसोपा (संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी), जीप (Vehicle for General Purpose=G.P.), नकेनवाद का नकेन (नलिनविलोचन शर्मा+केशरी कुमार+नरेश) आदि भी इसी प्रकार के शब्द हैं।

(च) **पूरे नाम का एक भाग**—कभी-कभी पूरे शब्द का एक भाग ही पूरे का स्थानापन्न शब्द बन जाता है। उदाहरण के लिए प्रिंसिपल टीचर=प्रिंसिपल; हस्तिन् मृग=हस्तिन्; बाइसाइकिल=बाइक, साइकिल, मोटर कार=कार; जिनरिक्शा=रिक्शा, साइकिल रिक्शा=रिक्शा। यह एक भाग आवश्यक नहीं कि यौगिक हो।

यहाँ तक हम देख रहे थे कि यौगिक शब्दों की रचना कैसे होती है। इससे हटकर भी शब्दों के बनने पर विचार किया जा सकता है। इस दृष्टि से

विचारणीय तो किसी भाषा या सभी भाषाओं के शब्द हैं, किन्तु किसी भी भाषा के सारे शब्दों के सम्बन्ध में यह जान पाना कि मूलतः वे कैसे बने हैं, कठिन ही नहीं, असम्भव-सा है। वस्तुतः यह प्रश्न बहुत कुछ भाषा की उत्पत्ति से सम्बद्ध है। संसार की भाषाओं में अनेकानेक आधारों पर शब्द बने हैं, जिनमें कुछ निम्नांकित हैं :—

(1) **अंधविश्वासों के आधार पर**—भाषाओं में कुछ शब्द अंधविश्वास के आधार पर बन जाते हैं। ऐसे शब्द उस समय बहुत अधिक बनते रहे होंगे जब विश्व के लोग बौद्धिक दृष्टि से बहुत अविकसित रहे होंगे, और उनमें अंधविश्वास बहुत अधिक रहा होगा। शिक्षा तथा बौद्धिक विकास एवं ज्ञान-विज्ञान के प्रचार आदि के कारण धीरे-धीरे ऐसे शब्दों का बनना कम और फिर बन्द हो गया किन्तु ऐसे बहुत से शब्द भाषाओं में अब भी चल रहे हैं, जो मूलतः अंधविश्वास के आधार पर बने हैं। उदाहरणार्थ :—

चक्षुश्रवा = सर्प (जो आँख से सुने, वस्तुतः साँप आँख से नहीं सुनता, यह एक अंधविश्वास मात्र है)।

सुधाकर = चाँद (अमृत का भण्डार। यह अंधविश्वास रहा है कि चन्द्रमा से अमृत द्रवित होता है। कदाचित् शीतल चाँदनी के कारण यह अंधविश्वास चला होगा। सुधानिधि, सुधाधर, सुधाधाम, सुधामयूख, सुधायोनि, सुधारश्मि, सुधावर्षी, सुधावास, अमृतांशु, अमृतकर, पीयूषरुचि आदि नाम भी इसी आधार पर हैं)।

मृगांक = चाँद (जिसके अंक में मृग हो। यह भी अंधविश्वास है। मृगधर, हरिणांक आदि शब्द भी इसी आधार पर बने हैं)।

एकाक्ष = कौआ (एक आँख का। विश्वास रहा है कि कौए की एक ही आँख होती है, वही दोनों गोलकों में आती-जाती है)। 'काकाक्षिगोलक न्याय' भी इसी से सम्बद्ध है।

मेघसार = कपूर (विश्वास रहा है कि स्वाती की बूंद केले में पड़कर कपूर बनती है। घनसार नाम भी इसी आधार पर है।)

काकसुता = कोयल (अंधविश्वास है कि यह कौए की लड़की होती है। यह भी कहते हैं कि कौए अपने अण्डे कोयल के घोंसले में रख देता है।)

(2) **व्यक्तिनाम के आधार पर**—व्यक्तियों के नाम के आधार पर भी बहुत से शब्द बन जाते हैं। जैसे मार्क्सवाद, गांधीवाद, बौद्ध, (बुद्ध), जैन (जिन), मोहमडेन (मोहम्मद), मर्सराइज्ड (मर्सर नाम के जुलाहे के नाम पर, जिसने कपड़े मर्सराइज करने की पद्धति निकाली), एटलस (एक दैत्य का नाम। मरकेटर प्रथम एटलसकार थे। उन्होंने अपने एटलस के प्रारम्भ में इस दैत्य का चित्र दिया था, अतः भूगोल-चित्र-पुस्तिका का नाम ही 'एटलस' पड़ गया), तथा बाईकॉट

(इंग्लैंड में एक कारिंदा जिसका बाईकॉट प्रजा ने किया) आदि।

(3) **स्थान के नाम के आधार पर**—जैसे सुरती (पुर्तगाली पहले-पहल भारत में तंबाकू ले आए और इसका केन्द्र 'सूरत' नगर में बनाया। वहीं से यह चारों ओर फैली। अतः भोजपुरी आदि कई बोलियों में 'तंबाकू' के स्थान पर इसे 'सुरती' कहते हैं, बनारसी (ठग, धूर्त), लखनौवा (छैला, शौक़ीन), बलियाटिक (मूर्ख), शिकारपुरी (मूर्ख), चीनी (मूलतः पक्की चीनी कदाचित् चीन से आई थी), मिश्री (मिस्री। मिस्र से आने के कारण), जापानी (सस्ता तथा कम टिकाऊ), सतना (मूलतः दिल्ली में ईंट चुनने के काम आने वाले चूने को सतना कहते हैं क्योंकि वह सतना नामक स्थान से आता है), बदरपुर (दिल्ली में विशेष प्रकार के लाल पाउडर को कहते हैं जो बदरपुर से आता है), मकराना (मकराना नामक स्थान से आनेवाला पत्थर), कैकेयी (केकय से), सैंडविच (इसी नाम की स्टेट के स्वामी ने सर्वप्रथम इसका प्रयोग किया, अतः यह नाम पड़ा) आदि अन्य उदाहरण हैं। कंठस्थानीय आभूषण 'कंठा' है तो अंगुष्ठ (मूलतः उँगली) स्थानीय 'अँगूठी'।

(4) **वर्तनी के आधार पर**—इसके आधार पर शब्दों का बनना अपवाद है। अब तक मुझे एक ही शब्द ऐसा मिला है। भौंरे को संस्कृत में 'भ्रमर' कहते है। इसमें दो 'र' के आधार पर संस्कृत में इसके लिए 'द्विरेफ' (जिसमें दो र हों) शब्द का प्रयोग मिलता है।

(5) **प्रयोग के आधार पर**—कुछ शब्द जिस वस्तु को अभिहित करते हैं, उसके प्रयोग के आधार पर बन जाते हैं। जैसे रबर (अंग्रेज़ी rub=रगड़ना; rubber जिसे रगड़ा जाय, मिटाने के लिए), खइनी (भोजपुरी में खाने की तंबाकू, जो खाई जाय), सुमिरनी (जिसका प्रयोग सुमिरन में किया जाय), कर्तरी (जिससे कर्तन किया जाय) आदि।

(6) **स्वरूप के आधार पर**—जैसे हाथी [जिसे हाथ (सूँड़) हो; हस्ती], करी (जिसके कर हो), द्विरद (=हाथी; जिसके दो दाँत हों; हाथी के दाँत खाने के और दिखाने के और), केशरी (जिसके केश हों, विशेषतः गर्दन पर), बंदगोभी (जो बंद हो, फूलगोभी की तरह खुली नहीं), गाँठगोभी (जो गाँठ जैसी हो) आदि। हिन्दी में बंदगोभी को 'करमकल्ला' भी कहते हैं। यह फ़ारसी शब्द है। इसमें 'करम' का अर्थ है 'सब्ज़ी' और कल्ला का अर्थ है 'सिर'; अर्थात् बंदगोभी 'सिर-जैसी सब्ज़ी' है। अंग्रेज़ी 'कैबेज' शब्द मूलतः फ्रांसीसी भाषा का 'caboche' है और इसका अर्थ भी 'सिर' है। रूसी में इसे 'कपूस्ता' कहते हैं, उसके मूल में भी 'सिर' का भाव है। चार पैर के कारण 'चौपाया' (पशु), 'चौपाई' (एक छंद), और 'चारपाई' (खाट) नाम पड़े हैं। 'तिपाई' भी ऐसा ही शब्द है। हाथ जैसा होने से 'हत्था' नाम है।

(7) **रंग के आधार पर**—जैसे स्याही (जो 'स्याह' अर्थात् 'काली' हो। पहले स्याही केवल काली हुआ करती थी); सब्ज़ी (जो 'सब्ज़' अर्थात् 'हरी' हो,

जैसे पालक, चौलाई, बंदगोभी आदि), पीलिया (रोग, जिसमें शरीर पीला पड़ जाता है) आदि।

(8) **ध्वनि के आधार पर**—इस श्रेणी के शब्दों की संख्या अच्छी-ख़ासी है। हिन्दी में भूँकना, खेखर (लोमड़ी के लिए शब्द; खे-खे करने के कारण), भोंपू, फटफटिया, धड़धड़, भड़भड़, गड़गड़, हड़हड़, चटचट। संस्कृत में कोकिल और अंग्रेज़ी में कुकू आदि भी इसी प्रकार के शब्द हैं।

(9) **दृश्य के आधार पर**—जगमग, बगबग, दकदक। इस श्रेणी के शब्द बहुत ही कम होते हैं।

(10) **कोई वस्तु जिससे बनी हो उसके नाम पर**—इस श्रेणी के शब्द भी बहुत अधिक नहीं होते। गिलास [प्रारम्भ में यह glass (=शीशा) की बनी, अतः यह नाम पड़ा], शीशा (=आईना; शीशे से बनने के कारण), अंग्रेज़ी 'आइरन' (=प्रेस; लोहे से बने होने से)। पेन (मूलतः Penna=पंख), बाइबिल (मूल अर्थ किताब, पहले यूनान में किताबें वृक्ष विशेष की छाल से बनती थीं। जिसे 'बिब-लास' कहते थे), आदि कुछ शब्द ऐसे हैं।

(11) **सादृश्य के आधार पर**—दूसरे शब्दों या वस्तुओं के सादृश्य के आधार पर भी कभी-कभी शब्द बन जाते हैं। 'अधूरा' शब्द 'आधा' से 'पूरा' के सादृश्य पर बना है। 'छठा' शब्द के स्थान पर कुछ लोग 'छठवाँ' का प्रयोग करने लगे हैं, जो स्पष्ट ही 'छः' से पाँचवाँ, सातवाँ के सादृश्य पर बना है। ऐसे ही 'बराती' के सादृश्य पर 'घर' से 'घराती', तथा 'गुलाम' के आधार पर 'तीन' से तिलाम (गुलाम का गुलाम) आदि। इसी प्रकार वस्तुओं का सादृश्य भी कभी-कभी नये शब्द बनाने के लिए आधार का काम करता है। 'पानी की रवानी', जैसा होने के कारण एक कपड़ा 'आब-ए-रवाँ' कहलाता है तथा फूल जैसा होने के कारण कान के आभूषण को 'कर्णफूल' कहते हैं। 'आकाशगंगा' भी दृश्यात्मक सादृश्य के आधार पर ही बना है।

(12) **कार्य के आधार पर**—इस आधार पर सभी भाषाओं में काफ़ी शब्द बने होते हैं। नेतृत्व करने के कारण आँख संस्कृत में 'नेत्र' कहलाई। 'प्रभा' करने के कारण सूर्य 'प्रभाकर' या 'विभाकर' है। 'दिनकर' भी ऐसा ही नाम है। 'क्षपाकर' का अर्थ है चन्द्रमा। 'क्षपा' रात है जिसे करने वाला 'क्षपाकर'। 'कलछी' या 'करछी' मूलतः 'कररक्षिणी' है। हाथ की रक्षा करने के कारण उसे यह नाम दिया गया। 'तृ' अर्थात् चुभने के कारण घास को संस्कृत में 'तृण' कहा गया। अंगरखा (अंग की रक्षा करने वाला), अजगर (बकरी को निगलने वाला), कठफोड़वा (काठ फोड़ने से), नग (गमन न करने वाला=पहाड़), खग (आकाश में जाने वाला) आदि भी ऐसे ही शब्द हैं।

(13) **बनाने की प्रक्रिया के आधार पर**—उदाहरण के लिए 'जेब' का मूल अर्थ है 'जो काटकर बनाया गया हो'। ऐसे ही 'टोस्ट' का अर्थ 'सेंकना' है। अब सेंक कर बनाए जानेवाले को भी 'टोस्ट' कहते हैं। ग्रंथ का मूल अर्थ है 'गूथा

हुआ' या 'ग्रथित'। पहले भोजपत्र को धागे से सिलकर ग्रंथ बनाते थे।

(14) **स्थिति के आधार पर**—नदियों के किनारे स्थित होने से तीर्थों को 'तीरस्थ' कहा गया। 'तीर्थ' उसी का विकास है। 'तटस्थ' भी ऐसा ही शब्द है। जो धार में न कूदकर तट पर हो। 'ओवरकोट' तथा 'वेस्टकोट' भी इसी श्रेणी के हैं।

(15) **जन्म से**—पंकज, जलज, स्वेदज, अंडज, उद्भिज, कार्तिकेय, अब्धिज, अंत्यज, द्विज (जो दो बारे जन्मे—पक्षी, एक बार अंडा फिर बच्चा; चन्द्रमा; प्रथम तीन वर्ण या ब्राह्मण। ये एक बार जन्मते हैं, फिर यज्ञोपवीत के समय दूसरा जन्म माना जाता है।)

(16) **संख्या के आधार पर**—चार सौ बीस, सठियाना (साठ से), दस नंबरी पैसा, सतरा-बहतरा होना (सत्तर-बहत्तर)।

(17) **कहानी के आधार पर**—कभी-कभी किसी कहानी के आधार पर शब्द बन जाते हैं। उदाहरण के लिए 'मक्खीचूस' ऐसा ही शब्द है। कहते हैं कि कोई व्यक्ति घी लेकर जा रहा था। उसके घी में मक्खी पड़ गई। वह मक्खी को घी से निकालकर चूसने लगा ताकि जो घी उसके पंख आदि में लग गया है, वह व्यर्थ में ज़ाया न हो। इसी आधार पर 'कंजूस' के लिए 'मक्खीचूस' शब्द चल पड़ा।

इस तरह शब्दों की रचना कई प्रकार से तथा कई आधारों पर की जाती है। यों पुराने शब्दों से नए शब्दों की रचना चार प्रकार से होती है :—

(क) **योजन से**—अर्थात् दो या अधिक शब्द (डाकघर, समाजभाषाविज्ञान) उपसर्ग (अहित, लापता) या प्रत्यय (समता, भलाई) जोड़कर।

(ख) **पश्चरचना** (Backformation) **से**—'सुर' शब्द पहले नहीं था। 'असुर' में से 'अ' निकालकर 'सुर' बनाया गया। ऐसे ही अब 'श्लील' का प्रयोग चल पड़ा है, जो 'अश्लील' में से 'अ' निकालने से बना है। 'डालना' से 'डलना' भी यही है। पहले 'पड़ना' चलता था।

(ग) **संक्षेपण से**—1. एकाधिक शब्दों के आदि अक्षरों को जोड़कर। जैसे भालोद (भारतीय लोक दल), आंसुका (आंतरिक सुरक्षा कानून), भाक्रांद (भारतीय क्रांति दल), संविद (संयुक्त विधायक दल), सुदी (शुक्ल दिवस), बदी (बहुलकृष्ण दिवस)। राडार, न्वॉइडा, यूनेस्को आदि भी ऐसे ही शब्द हैं। अंग्रेजी में ऐसे शब्दों को acronym कहते हैं। 2. आदि-अंत जोड़कर : मोटेल (मोटर+होटेल)। 3. कर्तन से—अर्थात् एक भाग काटकर। जैसे 'हस्तिन्मृग' से 'हस्ती', 'रेलवे स्टेशन' से 'स्टेशन', 'जिनरिक्शा' से 'रिक्शा', 'कैपिटल सिटी' से 'कैपिटल', 'प्रिंसिपल टीचर' से 'प्रिंसिपल' तथा 'मोटरकार' से 'कार' या 'मोटर' आदि।

(घ) **किसी शब्द के आधार पर**—जैसे ग्रीक Chaos से गैस।

6

शब्दार्थविज्ञान

'अर्थविज्ञान' भाषा के अर्थ पक्ष का अध्ययन करता है तो 'शब्दार्थविज्ञान' भाषा में प्रयुक्त शब्दों के अर्थपक्ष के अध्ययन तक सीमित होता है। उसमें पद, पदबंध, वाक्य आदि के अर्थ का अध्ययन नहीं आता।

ध्वनि शब्द का शरीर है तो अर्थ उसकी आतमा है। शब्द की सार्थकता इस अर्थ के ही प्रेषण में है। वस्तुतः अर्थ के प्रेषण के लिए ही भाषा का प्रयोग होता है। इस तरह अर्थ भाषा की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण इकाई है।

शब्द और अर्थ का सम्बन्ध कुछ शब्दों (जैसे ध्वन्यात्मक आदि) को छोड़कर यादृच्छिक है। घ्, ओ, ड़्, आ के मिले रूप से 'घोड़ा' (ध्वनि) का 'घोड़े के अर्थ' से सहजात सम्बन्ध नहीं है। यह सम्बन्ध केवल समाज का माना हुआ है। यदि समाज यह तै कर ले कि कल से 'क' का 'घोड़ा' के लिए प्रयोग होगा तो कल से 'क' का अर्थ घोड़ा माना जाने लगेगा। इसी प्रकार यदि सब लोग स्वीकार कर लें, तो कल से 'घोड़ा' शब्द का अर्थ फूल, आदमी, घर या कुछ भी हो सकता है। प्राचीन भाषाशास्त्रियों ने शब्द और अर्थ को एक माना है : एकस्मैवात्मनो भेदौ शब्दार्थावपृथक् स्थितौ (वाक्यपदीय 2-31)। तुलसी ने भी कहा है : गिरा अर्थ जल-बीचि सम कहिअत भिन्न न भिन्न। कालिदास भी कहते हैं : वागार्था-विवसम्पृक्तौ वागर्थ प्रतिपत्तये (रघुवंश 1-1)।

मैं इस परंपरागत मान्यता से बहुत सहमत नहीं हूँ। हम प्रायः पाते हैं कि शब्द बदल जाता है किन्तु अर्थ वही रहता है (गृह-घर, कृष्ण-कान्ह, सपत्नी-सौत), और दूसरी ओर अर्थ बदल जाता है किन्तु शब्द ज्यों-का-त्यों रहता है (कुशल—मूल अर्थ 'कुश' उखाड़ने में प्रवीण; परवर्ती अर्थ दक्ष; प्रवीण—मूल अर्थ वीणा बजाने में प्रवीण; परवर्ती अर्थ दक्ष)। दोनों एक होते तो एक के परिवर्तन से कदाचित् दूसरा भी परिवर्तित हो जाता।

'अर्थ' है क्या और उसकी प्रतीति कैसे होती है? वस्तुतः अर्थ प्रतीकात्मकता में है। 'क़लम' शब्द 'क़लम' कहलाने वाली वस्तु का प्रतीक है और 'अर्थ' है वस्तु तथा शब्द का प्रतीकात्मक सम्बन्ध। यहाँ यह बात भी संकेत करने की है कि शुद्ध वैज्ञानिक दृष्टि से शब्द का वास्तविक अर्थ नहीं होता, अपितु उसका अर्थ केवल प्रतीकात्मक या माना हुआ होता है। अर्थ की प्रतीति वाक्य पर निर्भर करती

है।[1] इसीलिए वाक्य ही भाषा का चरम अवयव है। वाक्यों का प्रयोग करते-करते हम इतने अभ्यस्त हो जाते हैं कि अलग शब्द सुनकर भी हममें अर्थ की प्रतीति होती है, किन्तु मूलतः वह वाक्य पर ही आश्रित है। दूसरे शब्दों में शब्द का अर्थ प्रयोगाश्रित है। कोशार्थ भी प्रयोग या प्रयोगों का ही सार होता है।

भर्तृहरि ने अर्थ-निश्चयन के सम्बन्ध में कहा है :—

वाक्यात्प्रकरणदर्थादौचित्याद्देशकालतः

शब्दार्थाः प्रविभज्यन्ते न रूपादेव केवलात् (2-316)

अर्थात् केवल रूप जान लेने से अर्थ का पता नहीं चलता, इसके लिए वाक्य (अर्थात् वाक्य में प्रयोग), प्रकरण (अर्थात् बात कहने का संदर्भ), अर्थ-औचित्य (अर्थात् प्रसंग में उक्त अर्थ का औचित्य), देश (इसका अर्थ लोगों ने तरह-तरह से किया है, मेरे विचार में देश का अर्थ है स्थान। देश या स्थान-भेद से अर्थ-भेद हो जाता है। उदाहरण के लिए बनारस में 'मौसा' शब्द माँ की बहन का पति मात्र है, किन्तु हरियाना में भाई का ससुर भी मौसा है), काल (इसका अर्थ भी लोगों ने दूसरे रूप में किया है, किन्तु प्रस्तुत पंक्तियों के लेखक के विचार में संकेत यह है कि काल-भेद से अर्थ-भेद हो जाता है जैसे 'हरिजन' का अर्थ पहले 'भक्त' था, अब 'अछूत' है) जानना अपेक्षित है।

इसी प्रकार तत्त्वचिंतामणि पर विचार करते हुए मथुरानाथ ने अर्थ जानने के लिए वृद्धव्यवहार, आप्तवाक्य, व्याकरण, कोश, वाक्यशेष, विवृति, सिद्धपद-सान्निध्य और उपमान का उल्लेख किया है, जिनके अर्थ क्रमशः 'वयोवृद्धों द्वारा प्रयोग', 'प्रामाणिक व्यक्तियों द्वारा प्रयोग', 'व्याकरणिक रचना का ज्ञान', 'कोशार्थ', 'सम्बद्ध संदर्भ के अन्य शब्द तथा वाक्य', 'व्याख्या', 'ज्ञात शब्दों के साथ शब्द का प्रायोगिक संबंध' तथा 'उपमान द्वारा अर्थ-स्पष्टीकरण' है।

कहना न होगा कि उपर्युक्त सभी बातों में अर्थ को जानने का प्रमुख साधन प्रयोग ही है। अन्य जितने हैं वे भी मूलतः प्रयोग पर ही आधारित हैं। अपवाद व्याकरण है।

अर्थविज्ञान इसी अर्थ के अध्ययन का विज्ञान है। जैसा अन्यत्र संकेत किया जा चुका है, यह अध्ययन वर्णनात्मक, ऐतिहासिक, तुलनात्मक तथा व्यतिरेकी हो सकता है।

अर्थ के वर्णनात्मक अध्ययन का अर्थ है किसी एक समय में किसी शब्द के अर्थ का विवेचन। ध्वनि, रूप या वाक्य की तुलना में अर्थ अधिक सूक्ष्म होता है, इसी कारण इसका अध्ययन भी अधिक कठिन है, जिसका परिणाम यह हुआ है कि अन्य क्षेत्रों (ध्वनि या वाक्य आदि) में वर्णनात्मक या संरचनात्मक दृष्टि से जितना काम हुआ है, उतना अर्थ को लेकर नहीं हुआ है।

1. वाक्यभवमवाप्तस्य सार्थकस्यावबोधतः
सम्पद्यते शाब्दबोधो न तन्मात्रस्य बोधतः (शब्दशक्ति प्रकाशिका १२)

क. अर्थ विज्ञान भाषा का केन्द्रिय /केन्द्रीय परिधि है?

किसी एक काल में किसी शब्द के कौन-कौन से अर्थ हैं इसका पता—जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है—प्रयोग से चलता है। इसका आशय यह हुआ कि भाषा के सारे प्रयोगों को एकत्र करके ही इस बात का पता लगाया जा सकता है। इस दृष्टि से अच्छे-से-अच्छे कोश भी हमारी बहुत सहायता नहीं कर पाते।

शब्दों के अर्थ के वर्णनात्मक अध्ययन के आधार पर हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि किसी भी भाषा में किसी एक समय में शब्द का अर्थ मुख्यतः तीन[1] प्रकार का होता है :—

(क) **केन्द्रीय अर्थ**—यह उस शब्द का उस काल में मूल, प्रकृत या सामान्य अर्थ होता है। इसी अर्थ में यह शब्द अधिक प्रयुक्त होता है। बच्चा, घर, शाकाहारी के केन्द्रीय अर्थ में प्रयोग हैं : उसका **बच्चा** मर गया; उस गाँव में सौ **घर** हैं, मैं **शाकाहारी** हूँ, मांस और अंडे नहीं खाता।

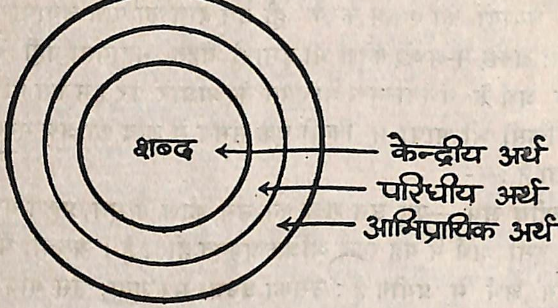
(ख) **परिधीय अर्थ**—परिधीय अर्थ केन्द्रीय अर्थ से ही विकसित होता है। यह किसी एक काल में एक से अधिक भी हो सकता है। 'राम पच्चीस का हुआ तो क्या, अभी तो **बच्चा** है, ये बातें नहीं समझ सकता।' में 'बच्चा' का अर्थ 'नासमझ' है। इसी प्रकार 'भोला-भाला', 'अपरिपक्व' आदि भी इसके परिधीय अर्थ हैं। परिधीय अर्थ में शब्द का प्रयोग प्रायः केन्द्रीय अर्थ की तुलना में कम होता है। परिधीय अर्थ के कुछ और उदाहरण हैं : 'यह बात उसके मन में **घर** कर गई है', 'वह तो पूरा **बनिया** है, एक पैसा नहीं दे सकता', 'क्या **मुहर्रमी** सूरत बना रखी है', 'भारत में जाने कितने ऐसे हैं जिनको दोनों जून **रोटी** नहीं मिलती।'

(ग) **आभिप्रायिक अर्थ**—केन्द्रीय अर्थ तो सुनिश्चित अर्थ होता है और परिधीय अर्थ केन्द्रीय से ही विकसित होता है। यह भी प्रायः निश्चित रहता है। किसी शब्द का आभिप्रायिक अर्थ वहाँ मिलता है जहाँ कोई व्यक्ति किसी ऐसे विशेष अर्थ को अभिव्यक्त करने के अभिप्राय से उस शब्द का प्रयोग करता है, जिस अर्थ में सामान्यतया वह शब्द प्रयुक्त नहीं होता। शैलीकार साहित्यिकों के लेखन में ऐसे प्रयोग कभी-कभार मिल जाते हैं : 'वह आदमी तो बिलकुल ही **शाकाहारी** है, उसके साथ लड़की भेजने में भला क्या परेशानी हो सकती है', 'अरे भला राम क्या खाकर थानेदार बनेगा, बिलकुल ही **शाकाहारी** है, थानेदार का पद पा जाने से थोड़े कोई थानेदार बनता है', 'आज पत्नी का पत्र मिला मगर बिलकुल ही **शाकाहारी**, कहीं भी कोई प्रेम-मुहब्बत की बात नहीं', 'कोयला **कोयला** ही रहेगा चाहे सौ मन साबुन खा जाय।'

इस तरह पहले अर्थ में शब्द का प्रयोग सर्वाधिक होता है, दूसरे में कम और तीसरे में बहुत कम। बहुप्रयुक्त होने पर कोई आभिप्रायिक अर्थ परिधीय बन सकता है तथा परिधीय अर्थ (यद्यपि बहुत कम) केन्द्रीय। तीनों अर्थों को चित्र

(1). यों सामाजिक अर्थ (जैसे 'आप' में मध्यम पुरुष के अर्थ के अतिरिक्त 'आदर' का सामाजिक अर्थ भी है) तथा शैलीय अर्थ (जैसे 'बैठना' और 'तशरीफ़ रखना' में शैलीय अर्थ का अन्तर है) आदि कुछ और अर्थ भी होते हैं।

रूप में यों दिखा सकते हैं :—



ध्वनि (स्वन) विज्ञान और रूपविज्ञान आदि के क्षेत्र में स्वनिम (phoneme)—संस्वन (allophone) तथा रूपिम (morpheme)—संरूप (allomorph) की बात बहुत प्रचलित है। अर्थविज्ञान में भी ऐसे विश्लेषण की पूरी गुंजाइश है। अर्थिम (sememe) किसी शब्द के सारे अर्थों का योग है और संअर्थ (alloseme) विभिन्न अर्थ हैं जो अलग-अलग सन्दर्भों में आते हैं। ये अलग-अलग सन्दर्भ ही वितरण हैं। इस दृष्टि से किसी भी भाषा का कोई व्यवस्थित विवेचन अभी तक मेरे देखने में नहीं आया। यहाँ एक हिन्दी शब्द 'पानी' द्वारा इस बात को उदाहृत किया जा सकता है। मान लीजिए, पानी के चार प्रयोग हमने लिए :—

(1) आसाम का पानी अच्छा नहीं है। (जलवायु)

(2) सबके सामने उसका पानी उतार दिया। (इज़्ज़त)

(3) पानी आया छतरी तान लो। (वर्षा)

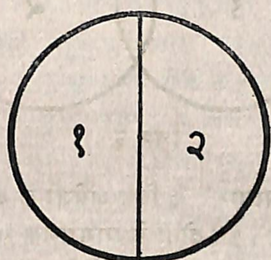
(4) यह पेड़ पाँच पानी का है। (वर्ष)

इनमें किसी में भी पानी का सामान्य अर्थ नहीं है। पानी का सामान्य अर्थ इन अर्थों की तुलना में अधिक प्रयुक्त होता है तथा आर्थिक संरचना की दृष्टि से वही केन्द्र में है। अन्य अर्थ विशेष प्रसंग या सन्दर्भ के हैं। यदि हम थोड़ी देर के लिए मान लें कि 'पानी' शब्द के सामान्य अर्थ को छोड़कर केवल ये ही चार अर्थ हिन्दी में चलते हैं तो कहा जा सकता है कि पानी के अर्थ या अर्थिम के पाँच संअर्थ हैं। 'जलवायु' अर्थ में वह एक प्रसंग में आता है, 'इज़्ज़त' अर्थ में दूसरे में, 'वर्षा' अर्थ में तीसरे में, 'वर्ष' अर्थ चौथे में; और सामान्य, मूल, प्रकृत या केन्द्रीय अर्थ में अन्यत्र। इसी प्रकार भाषा के अधिकांश शब्दों के संअर्थों तथा उनके वितरणों का पता लगाया जा सकता है।

वर्णनात्मक स्तर पर शब्द के अध्ययन की यह एक पद्धति थी। दूसरी पद्धति हो सकती है उसी अर्थ-क्षेत्र के अन्य शब्दों के अर्थ के संदर्भ में शब्द के अर्थ को देखना। अर्थ इतना सूक्ष्म होता है कि कुछ अपवादों को छोड़कर उसे प्रायः दूसरे

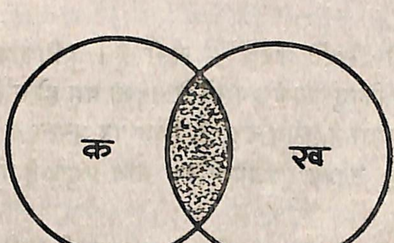
समानार्थी शब्दों के साथ अधिक अच्छी तरह समझा जा सकता है। 'प्रयोगविज्ञान' शीर्षक अध्याय में कुछ जोड़ों को लेकर इसी पुस्तक में अन्यत्र यह देखा गया है। वहाँ हमने देखा है कि पर्याय शब्दों में अर्थ का सूक्ष्म अन्तर होता है। वैसे शब्दों में एक का अर्थ दूसरे की पृष्ठभूमि में अधिक स्पष्ट होता है : एक उदाहरण लें :— 'कष्ट' का अर्थ यों तो कोशों में 'दु:ख' दे दिया जाता है तथा 'दु:ख' का 'कष्ट' किन्तु वास्तविक स्थिति यह है कि इन दोनों में किसी का भी ठीक अर्थ दूसरे के संदर्भ या दूसरे की तुलना में ही अधिक अच्छी तरह समझा या समझाया जा सकता है। दु:ख या कष्ट दोनों समानार्थी-जैसे हैं, किन्तु दु:ख मानसिक है तो कष्ट शारीरिक।

वस्तुतः होता यह है कि किसी भाव या अर्थ का एक क्षेत्र होता है, और यदि उसके लिए एक से अधिक शब्दों—मान लें दो—का प्रयोग होता है तो कभी तो दोनों शब्द एक-दूसरे के पूरक होते हैं, अर्थात् उस अर्थ-क्षेत्र के कुछ भाग को एक व्यक्त करता है तथा शेष को दूसरा।



चित्र अ

और कभी कुछ प्रयोगों में दोनों समानार्थी होते हैं और कुछ में भिन्न। उदाहरण के लिए इस चित्र में काले भाग में :—



चित्र आ

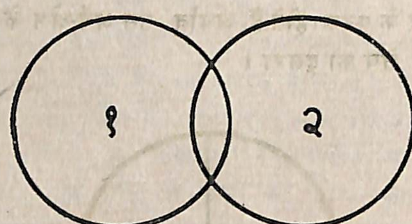
दोनों का प्रयोग हो सकता है किन्तु ख़ाली क भाग में एक का तथा ख़ में दूसरे

का । प्रयोग या अर्थ का यह अन्तर कभी तो बहुत कम होता है :—



चित्र इ

और कभी बहुत अधिक :—



चित्र ई

उदाहरण के लिए 'आधार' के लिए अंग्रेज़ी के दो शब्द—'बेस' (base) तथा 'बेसिस' (basis)—लें। इन दोनों के प्रामाणिक अर्थ या प्रयोग में चित्र 'अ' वाली स्थिति है। 'बेस' का प्रयोग ठोस वस्तुओं के लिए (पहाड़) होता है, जबकि 'बेसिस' आलंकारिक रूप से तर्क, आरोप, विश्वास जैसे सूक्ष्म के लिए। इसी प्रकार 'चाइल्डलाइक' और 'चाइल्डिश' भी हैं। पहला अच्छे अर्थ में आता है, दूसरा बुरे में। कुछ लोग कभी-कभी दोनों को कुछ सन्दर्भों में समानार्थी जैसा प्रयोग करते हैं तो चित्र इ वाली स्थिति होती है। चित्र ई वाली स्थिति कभी नहीं होती।

उद्देश्य-ध्येय की स्थिति चित्र इ जैसी है। अधिकांश प्रयोगों में ये प्राय: एकार्थी-जैसे आते हैं, किन्तु सतर्क प्रयोगों में उद्देश्य वह होता है जिसे पाने के लिए व्यक्ति प्रयत्नशील होता है, ध्येय वह है, जिस पर प्रयत्न के समय हमारा ध्यान रहता है। इस तरह उद्देश्य में प्रयत्न का भाव प्रमुख है तो ध्येय में प्राप्य पर ध्यान का।

चित्र अ वाली स्थिति के कुछ और उदाहरण भी लिये जा सकते हैं। रोग के लिए हिन्दी में आधि और व्याधि दोनों शब्द चलते हैं, किंतु दोनों के अर्थ में भेद है। भेद यह है कि आधि मानसिक बीमारी के लिए है तो व्याधि शारीरिक के लिए। इसी प्रकार हथियार के लिए अस्त्र और शस्त्र दो शब्द हैं। प्रथम में वे

हथियार आते हैं जिन्हें फेंक कर मारते हैं जैसे तीर, दूसरे में वे हथियार आते हैं जिन्हें हाथ में पकड़े हुए मारते हैं जैसे तलवार। आविष्कार और अन्वेषण भी इसी प्रकार के हैं। आविष्कार जिसका करते हैं, उसका पहले से अस्तित्व नहीं रहता। अन्वेषण जिसका करते हैं, उसका अस्तित्व पहले से रहता है, अन्वेषक उसे केवल सामने ला देता है।

इस प्रकार के शब्द-वर्गों के अर्थ या अर्थ पर आधारित प्रयोग के स्पष्ट अतर का अध्ययन तुलना के आधार पर ही अच्छी तरह किया जा सकता है।

एक शब्द के एकाधिक अर्थों के आपसी संबंध का अध्ययन भी इस वर्णनात्मक अर्थविज्ञान के अंतर्गत ही आएगा। यों इसका ऐतिहासिक अध्ययन भी अपेक्षित है कि कैसे पानी का अर्थ इज़्ज़त, चमक, वर्ष आदि हो गया।

कभी-कभी कुछ भाषाओं में दुहरे प्रयोग चलते हैं। हिन्दी में भला-बुरा, खरा-खोटा, ऊँच-नीच इसी वर्ग के हैं। ऐसे प्रयोगों में प्रायः हम पाते हैं कि बुरा या नकारात्मक या कोई भी एक भाव ही प्रमुख रहता है, जिसका अर्थ यह हुआ कि कुछ शब्दों के साथ आकर कुछ शब्द अपना अर्थ प्रायः खो-सा देते हैं। 'उसने ख़ूब खरी-खोटी सुनाई' में 'खरी' का भाव तो बहुत नहीं दबा है क्योंकि वह स्वयं कम तीक्ष्ण नहीं है, किन्तु 'उसने बहुत बुरा-भला कहा' में 'भला' का अर्थ बिल्कुल नहीं है। 'अगर फिर कुछ कहा-सुना तो ठीक न होगा' में 'सुना' की स्थिति भी ऐसी ही है। 'खंडन-मंडन के अनेक प्रयोगों में 'खंडन' का ही अर्थ रहता है।

कुछ उपसर्ग भी अर्थ की दृष्टि से इसी प्रकार के हैं। 'बे' उपसर्ग बेकार, बेरहम, बेजान में तो पूरी तरह सार्थक है किन्तु भोजपुरी, अवधी, ब्रज आदि में 'फ़ज़ूल' के अर्थ में प्रयुक्त शब्द 'बेफ़ज़ूल' में 'बे' निरर्थक है।

इसी प्रकार 'अनगढ़' 'अनपढ़', 'अनजान' में 'अन' सार्थक है किन्तु ब्रजभाषा-क्षेत्र के कुछ भागों (जैसे आगरा की बाह तहसील) में 'ग़ैर' के अर्थ में प्रयुक्त शब्द 'अनग़ैरी' में निरर्थक है। 'दुहरे नकारात्मक सकारात्मक' बना देते हैं' (Double negative makes positive.) का सिद्धांत यहाँ नहीं चलता। मूलतः ऐसे प्रयोगों में, प्रयोक्ता के मन में कदाचित 'बहुत अधिक' का भाव रहा हो। अर्थात् 'बेफ़ज़ूल' = बहुत अधिक फ़ज़ूल या 'अनग़ैरी' = बहुत अधिक ग़ैर। किन्तु अब तो दोनों ही 'फ़ज़ूल' और 'ग़ैर' का ही अर्थ देते हैं। अवधी में 'वृथा' के अर्थ में 'अबिरथा' का प्रयोग मिलता है। यह प्रवृत्ति काफ़ी पुरानी है। वैदिक साहित्य में 'पिहित' (छिपा हुआ) के स्थान पर 'अपिहित' एकाधिक स्थलों पर आया है।

संस्कृत के स्वार्थ प्रत्यय भी इसी वर्ग के हैं। मूलतः वे भी कदाचित् सार्थक रहे होंगे किन्तु बाद में वे अपना अर्थ खोकर निरर्थक बन बैठे : घोट-घोटक, बाल-बालक। हिन्दी में 'ड़' भी ऐसा ही है :—मुख-मुखड़ा, आँख-आँखड़ी, लंग-लँगड़ा, टूक-टुकड़ा।

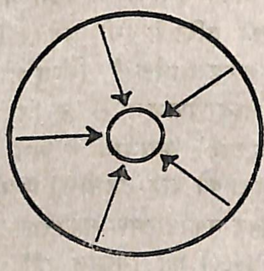
विलोमार्थ भी वर्णनात्मक अध्ययन के अंतर्गत आता है। पहला प्रश्न तो यह उठता है कि विलोमार्थ है क्या ? 'भाई' का विलोम 'भाभी' है या 'बहन' या दोनों

में कोई भी नहीं। विलोमार्थी का विवेचक इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि सभी शब्दों के विलोमार्थी शब्द हों ही, यह आवश्यक नहीं। धागा, चौकी, काग़ज़, पत्थर, गेहूँ जैसे अनेकानेक शब्दों के विलोम नहीं होते। कुछ शब्दों के अलग-अलग संदर्भों में अलग-अलग विलोम होते हैं : पानी-मिट्टी, पानी-आग; काला-सफ़ेद, काला-गोरा, राजा-रंक, राजा-प्रजा, राजा-रानी (?)। ज़मीन का विलोम क्या है? 'आसमान' या 'समुद्र'। सूखा-गीला, बड़ा-छोटा, दूर-नज़दीक, हलका-भारी आदि थोड़े ही ऐसे उदाहरण मिलते हैं जहाँ सुविधापूर्वक विलोम-निर्धारण हो सकता है।

शब्दों के अर्थ का ऐतिहासिक अध्ययन उपर्युक्त अध्ययन की तुलना में अधिक मनोरंजक तथा सरल है। कदाचित् इसी कारण इस दिशा में कार्य भी काफ़ी हुआ है। शब्दों के अर्थ के ऐतिहासिक अध्ययन का आशय यह है कि उनके अर्थ में क्या कुछ परिवर्तन हुआ है।

शब्दों के अर्थ में परिवर्तन तीन प्रकार का माना जाता है :—

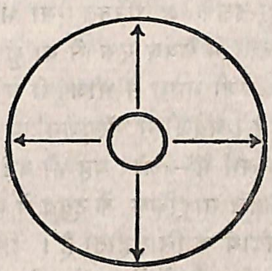
(क) अर्थ-संकोच—इसमें पहले की तुलना में अर्थ संकुचित हो जाता है। उदाहरण के लिए 'मृग' का अर्थ पहले 'पशु' था, इसीलिए सिंह को 'मृगराज' (पशुओं का राजा) कहा गया। अब मृग का अर्थ हिरन, अर्थात् केवल एक पशु है। अर्थात् इसके अर्थ का विस्तार संकुचित हो गया है। इसे चित्र-रूप में इस प्रकार दिखाया जा सकता है :—



यहाँ बड़ा वृत्त पूर्ववर्ती अर्थ है तथा छोटा वृत्त परवर्ती। इसी तरह 'मुर्ग़' का पुराना अर्थ पक्षी है। इसीलिए जलपक्षी को 'मुर्ग़ाबी' (मुर्ग़+आब+ई) कहते हैं। अब मुर्ग़ केवल एक पक्षी है। 'वेदना' का संस्कृत में पुराना प्रयोग दु:ख और सुख दोनों के लिए मिलता है, अब वह केवल दु:ख तक सीमित है।

(ख) अर्थ-विस्तार—यह अर्थ संकोच का उलटा है। इसमें अर्थ विस्तृत हो जाता है। प्रारंभ में 'स्याही' नाम इसलिए पड़ा था कि वह 'स्याह' या काली होती थी। अब स्याही का प्रयोग काली के अतिरिक्त हरी, नीली, लाल आदि स्याहियों के लिए भी होता है। इस तरह 'स्याही' शब्द का अर्थ-क्षेत्र पहले की तुलना में विस्तृत हो गया है। 'सब्ज़ी' भी इसी प्रकार का शब्द है। हरी होने के कारण 'सब्ज़ी' नाम पड़ा था, अब तो बैंगनी (बैंगन), सफ़ेद (मूली), प्याज़ू (प्याज़), पीली (सीताफल) आदि सभी रंग की तरकारियाँ सब्ज़ी हो गई हैं। संस्कृत में

'परश्वः' का प्रयोग आनेवाले परसों के लिए तथा 'कल्य' का प्रयोग आने वाले कल के लिए होता था, अब उन्हीं से विकसित 'परसों' और 'कल' आने वाले और बीते हुए दोनों के लिए आते हैं। इस प्रकार अनेक शब्दों के अर्थ में विस्तार हो जाता है। अर्थविस्तार को यों दिखाया जा सकता है :—



अर्थादेश—कभी-कभी अर्थ में न तो विस्तार होता है, और न संकोच, बल्कि अर्थ कुछ-का-कुछ हो जाता है। इसे अर्थादेश कहते हैं। जैसे 'गँवार' का मूल अर्थ है 'गाँव का रहने वाला', परअब इसका अर्थ उजड्ड, असंस्कृत आदि हो गया है। इसी प्रकार 'बौद्ध' (बुद्ध के अनुयायी)का 'बुद्धू' (मूर्ख), या 'दुर्लभ'(जिसका मिलना कठिन हो) का 'दुलहा' (वर, पति) भी अर्थादेश के उदाहरण हैं। अर्थादेश किसी न किसी प्रकार के साहचर्य की भावना से होता है। नए अर्थ का संबंध किसी न किसी स्तर पर पुराने अर्थ से होता है।

इन तीनों के ही उदाहरण कभी-कभी अर्थोपकर्ष एवं अर्थोत्कर्ष के उदाहरण-स्वरूप भी रखे जाते हैं। अर्थापकर्ष में अर्थ अच्छे से बुरा हो जाता है। 'हरिजन' का मूल अर्थ 'भक्त' था, अब 'अछूत' है। संस्कृत का वज्रवटुक (पक्का ब्रह्मचारी) हिन्दी में 'बजरबट्टू' (मूर्ख) बन गया। 'हज़रत ईसा' का 'हज़रत' 'आप तो पूरे हज़रत निकले' में कहाँ से कहाँ चला गया है। इसके विपरीत कभी-कभी अर्थ बुरे से अच्छा भी हो जाता है। संस्कृत में 'कर्पट' का अर्थ फटा-पुराना कपड़ा है पर हिन्दी 'कपड़ा' में ऐसा कोई भाव नहीं है। 'साहस' संस्कृत में व्यभिचार, हत्या आदि बुरे काम के लिए आता है किन्तु हिन्दी में यह प्रायः अच्छे अर्थ में आता है। वस्तुतः अर्थापकर्ष और अर्थोत्कर्ष अर्थ-परिवर्तन के स्वतंत्र रूप नहीं हैं। उपर्युक्त तीन परिवर्तनों में ही अपकर्ष-उत्कर्ष आधार पर कुछ को एक में तथा कुछ को दूसरे में रख लेते हैं।

इसी तरह अर्थ का कभी-कभी सूक्ष्मीकरण होता है। जैसे कुर्सी = पद, रोटी = जीविका, परदा = दुराव। दूसरी तरफ़ स्थूलीकरण भी देखा जाता है। 'देवता' शब्द मूलतः 'देव' की भाववाचक संज्ञा है, किन्तु अब इसका अर्थ 'देव' है। सामग्री (मूल अर्थ संचय), पुराण (मूल अर्थ प्राचीन), मिठाई (मूल अर्थ मिठास), खटाई (मूल अर्थ खटास) भी इसी के उदाहरण हैं।

अब तक अर्थ-परिवर्तन के रूप या दिशा के सम्बन्ध में इस नामपर प्रायः दी

जाने वाली सामग्री की चर्चा की गई। इसमें कोई संदेह नहीं कि भाषाओं में अधिकांश अर्थ-परिवर्तन इसी प्रकार के होते हैं किन्तु कुछ थोड़े अर्थ-परिवर्तन ऐसे भी होते हैं, जो इनसे कुछ भिन्न होते हैं। उदाहरण के लिए, ऊपर अर्थ-संकोच में इस बात का उल्लेख किया गया कि किसी विशेष अर्थ में शब्द का अर्थ-क्षेत्र संकुचित हो जाता है, किन्तु इसके अतिरिक्त ऐसा भी प्रायः होता है कि किसी शब्द के कई अर्थों में कालान्तर में केवल एक ही या कुछ ही अर्थ रह जाते हैं, शेष समाप्त हो जाते हैं। जैसे अंग्रेज़ी भाषा से भोजपुरी में काफ़ी शब्द गए हैं जिनमें एक सॅल्यूशन (solution) है। अंग्रेज़ी में 'सॅल्यूशन' के कई अर्थ हैं, किन्तु भोजपुरी में इसका प्रयोग केवल एक अर्थ में—और वह भी बड़े संकुचित अर्थ में होता है। वहाँ इस शब्द का प्रयोग केवल साइकिल के ट्यूब में हुए पंचर को ठीक करने में काम आने वाले चिपचिपे पदार्थ के लिए होता है। हिन्दी में 'पंचर' की भी यही स्थिति है। वह केवल रबर की चीज़ों में हुए छेद के लिए आता है। रेकर्ड, चेन, मैच, बैंक, बूट, सैंडल आदि शब्द भी इसी श्रेणी के हैं। ऐसे बहुत अधिक शब्द हिन्दी में संस्कृत से भी आए हैं। उदाहरणार्थ अंग, अंतर, अंतरा, अक्षत, अन्न, अभय, आसन, जाल, दिव्य, पंक्ति, पतन, पत्र, परम आदि शब्दों के प्रयोग हिन्दी में जितने अर्थों में होते हैं उतने ही अर्थों में संस्कृत में नहीं होते थे। संस्कृत में कहीं अधिक अर्थ (संबद्ध) थे। वस्तुतः किसी भी अन्य भाषा से किसी दूसरी भाषा में कोई शब्द जाता है तो प्रायः अपने सीमित अर्थ में ही जाता है। इसके कई कारण हैं। कभी तो विशेष संदर्भ में शब्द के जाने के कारण उसके साथ वही अर्थ जाता है, और शेष नहीं जाते, कभी ऐसा भी होता है कि अन्य अर्थों की दूसरी भाषा में आवश्यकता नहीं रहती, या रहती भी है तो उसके लिए उसका अपना शब्द प्रयोग में आता है।

कभी-कभी कुछ उदाहरण ऐसे भी मिलते हैं जिनमें किसी भाषिक इकाई में अर्थ-परिवर्तन नहीं होता, अपितु वह अर्थ पूर्णतः समाप्त हो जाता है। पीछे इसके उदाहरण—क (बालक, घोटक), बे (बेफ़जूल), अन (अनगैरी)—दिए जा चुके हैं। 'उन आवारों के साथ कहीं वह भी कुछ भला-बुरा कर बैठा तो···' तथा 'उन आवारों के साथ कहीं वह भी कुछ बुरा कर बैठा तो···' में विशेष अन्तर नहीं लगता। तो क्या ऐसे प्रयोगों में 'भला' की तरह आने वाले शब्द भी अपना अर्थ खो बैठे हैं या खो बैठते हैं?

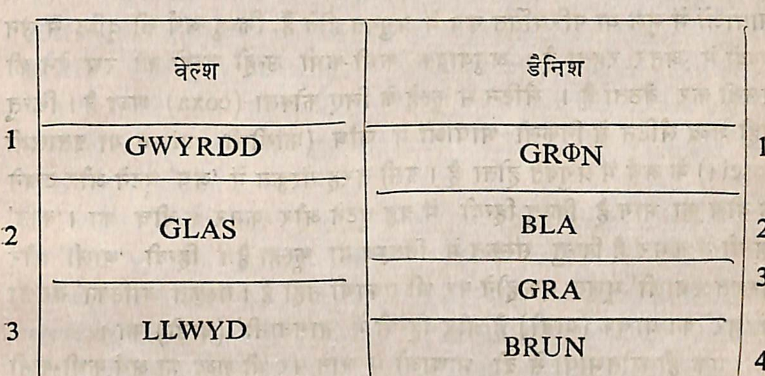
कभी-कभी ऐसा भी होता है कि व्यक्तिवाचक शब्दों से व्यक्तिवाचकता का अर्थ निकल जाता है और वे जातिवाचक हो जाते हैं। हिन्दी में 'डालडा', 'सर्फ़' आदि ऐसे ही शब्द हैं।

अर्थ-परिवर्तनों के पीछे अनेकानेक कारण काम करते हैं, जिनके लिए प्रस्तुत पंक्तियों के लेखक की पुस्तक 'भाषाविज्ञान' का 'अर्थविज्ञान' शीर्षक अध्याय देखा जा सकता है।

विभिन्न शब्दों को अलग-अलग लेकर उनमें घटित अर्थ-परिवर्तनों का

सकारण विवेचन भी ऐतिहासिक ध्वनिविज्ञान में अध्ययन की एक अच्छी दिशा है। उदाहरणार्थ 'तात' से विकसित शब्द 'दादा' पितामह, बड़ा भाई तथा गुंडा तीनों अर्थों में आता है। यह अध्ययनीय है कि किन कारणों से और कैसे 'तात' का अर्थ इन अर्थों में परिवर्तित हो गया। इसी तरह किसी भी भाषा के सभी या अधिकांश शब्दों का अध्ययन किया जा सकता है।

तुलनात्मक तथा व्यतिरेकी अर्थविज्ञान की एक-दो बातों की ओर ऊपर संकेत किया जा चुका है। तुलना करके 'समानता' और 'व्यतिरेक' वर्णन और इतिहास दोनों ही स्तरों पर निकाले जा सकते हैं। तुलनात्मक अर्थविज्ञान एक भाषाभाषी के लिए दूसरी भाषा सीखने या एक भाषा से दूसरी भाषा में अनुवाद करने में



बड़ा सहायक होता है। ऐसा प्रायः होता है कि एक भाषा के किसी शब्द के लिए दूसरी भाषा में प्राप्त प्रतिशब्द उस शब्द का पूरी तरह प्रतिनिधित्व नहीं करता। उदाहरण के लिए, अंग्रेज़ी शब्द प्ले(play)के लिए हिन्दी 'खेलना' है, किन्तु बाजों के संदर्भ में 'खेलना' से काम नहीं चलता, 'प्ले' के लिए 'बजाना' का प्रयोग करना पड़ता है। कभी-कभी इस प्रकार की समस्याएँ और गहरी हो जाती हैं। रंगों को लेकर कुछ भाषाओं की तुलना की गई है। यहाँ एक उदाहरण लिया जा सकता है। वेल्श और डैनिश भाषाओं में रंगों के लिए प्रयुक्त शब्दों के अर्थ पूरी तरह समानांतर नहीं हैं। ऊपर के आरेख से स्पष्ट है कि वेल्श में इन रंगों के तीन वर्ग हैं तो उनके स्थान पर डैनिश में चार हैं। वेल्श के 1 से, डैनिश के 1 का विस्तार बड़ा है। वह वेल्श के 2 के कुछ भाग को भी अपने में समाहित कर लेता है। वेल्श का 2, डैनिश के 1 के कुछ भाग, पूरा 2 तथा 3 के कुछ भाग को अपने में ले लेता है। अर्थ की यह असमानांतरता, व्यतिरेक या विरोध अलग-अलग संस्कृतियों की भाषाओं में बहुत अधिक मिलता है। विभिन्न भाषाओं के विभिन्न शब्दों की अर्थ-सीमाएँ समान नहीं होतीं। अनुवादक के लिए ऐसे स्थलों पर बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ता है। हिन्दी-अंग्रेज़ी में इस श्रेणी के दर्शन-फ़िलासफ़ी या धर्म-

रेलिजन जैसे अनेक शब्द खोजे जा सकते हैं। कभी-कभी संबद्ध और भौगोलिक दृष्टि से पास-पास की भाषाओं में भी यह अंतर दिखाई पड़ता है। इस दृष्टि से एक भाषा की किन्हीं भी दो बोलियों का अध्ययन महत्त्वपूर्ण हो सकता है। उदाहरण के लिए, हिन्दी में 'ससुर' और 'मौसा' दो शब्द हैं। भोजपुरी-भाषी अपने भाई के ससुर को भी 'ससुर' कहेगा किन्तु हरियानी-भाषी भाई के ससुर को 'मौसा' कहेगा। अर्थात् भोजपुरी और हरियानी में ससुर और मौसा की अर्थ-सीमाएँ समान नहीं हैं। भोजपुरी और ब्रज के चाचा, चाची या समधी में भी इसी प्रकार का अंतर है।

मूल भाषा से, उससे निकली भाषाओं में अनुवाद करने में अर्थ-विषयक एक दूसरी पहेली कभी-कभी सामने आती है। मूल भाषा के अनेक शब्द, उससे निकली भाषाओं में मूल या परिवर्तित रूप में प्रयुक्त होते हैं, किन्तु अर्थ की दृष्टि से उन शब्दों में अंतर रहता है। अनुवादक कभी-कभी उन्हीं शब्दों को रख देने की ग़लती कर बैठता है। लैटिन में कूल्हे के लिए कोक्सा (coxa) शब्द है। किन्तु यही शब्द लैटिन से निकली भाषाओं में जाँघ (फ्रांसीसी cuisse या इतालवी coscia) के अर्थ में प्रयुक्त होता है। इसी तरह संस्कृत में 'जंघ' घुटने और टखने के बीच का भाग है किन्तु हिन्दी में वह घुटने और कमर के बीच का। 'कटि' हिन्दी में कमर है किन्तु संस्कृत में नितम्ब या कूल्हा है। हिन्दी 'थाली' और संस्कृत 'स्थाली' मूलतः एक होने पर भी एकार्थी नहीं हैं। संस्कृत 'वाटिका' बँगला में 'घर' का वाचक (बाड़ी) है और हिन्दी में 'बाग़बानी' (बाड़ी) का।

एक ही स्रोतभाषा से दो भाषाओं में जाने पर भी शब्द का अर्थ कभी-कभी बदल जाता है। संस्कृत 'स्थाली' हिन्दी में 'थाली' है। यही शब्द तमिल में 'स्ताली' है और वहाँ उसका अर्थ 'मिट्टी की तश्तरी' 'खाना पकाने का बर्तन' तथा 'पानी पीने का बर्तन' है। उड़िया में 'अंगार' का अर्थ 'कोयला' है जबकि हिन्दी में कुछ और है। 'बही' हिन्दी में हिसाब-किताब की होती है, उड़िया में 'बही' पुस्तक को कहते हैं। हिन्दी में 'ज़रूर' आवश्यक है, तमिल में उसका प्रयोग 'तेज़ी' और 'त्वरितता' के लिए भी होता है। इसी प्रकार, 'अवसर', 'आलस्य', 'उचित', 'प्रसंग' तथा 'लेख' हिन्दी में क्रमशः मौक़ा, सुस्ती, वाजिब, संदर्भ तथा निबन्ध हैं तो तेलुगु में आवश्यक, देर, मुफ़्त, व्याख्यान, चिट्ठी। तुलनात्मक तथा व्यतिरेकी शब्दार्थविज्ञान में इस प्रकार के अध्ययन भी आते हैं।

7
शब्दसमूहविज्ञान

'शब्दसमूह' या 'शब्दभंडार' का अर्थ है शब्दों का भांडार या समूह। अंग्रेज़ी में इसे vocabulary कहते हैं। इसका प्रयोग किसी व्यक्ति, पुस्तक या भाषा द्वारा प्रयुक्त समस्त शब्दों के लिए किया जाता है। कोई व्यक्ति कुल कितने शब्दों का प्रयोग करता है या किसी पुस्तक में कुल कितने शब्द आए हैं या किसी भाषा में कुल कितने शब्द प्रयुक्त किए जाते हैं, और वह कैसे हैं आदि का अध्ययन शब्दों के अध्ययन की एक महत्त्वपूर्ण कड़ी है। शब्दसमूहविज्ञान किसी के भी शब्दसमूह के अध्ययन का विज्ञान है।

व्यक्ति, पुस्तक या भाषा के शब्दसमूह को हम क्रम से लें तो सबसे पहले व्यक्ति के शब्दसमूह की समस्या आती है। दिवंगत व्यक्तियों में केवल उन्हीं के शब्दसमूह का अध्ययन सम्भव है जिन्होंने कुछ कहा (जैसे कबीर) या लिखा (जैसे तुलसी) है, और जिनकी वह कथित या लिखित सामग्री आज प्राप्त है। जिन्होंने कुछ लिखा या साहित्यिक रचना के रूप में कहा नहीं, या जिन्होंने लिखा और कहा किन्तु वह सामग्री आज उपलब्ध नहीं है, उनके शब्दसमूह का अध्ययन सम्भव नहीं है। जीवित व्यक्तियों में सभी के शब्दसमूह का अध्ययन सम्भव है।

ऐसे व्यक्तियों के शब्दसमूह के अध्ययन के लिए, जिनकी रचनाएँ प्राप्त हैं, उन रचनाओं की शब्दानुक्रमणी बनानी पड़ती है। इसके बारे में पीछे 'शब्द-संकलन' शीर्षक अध्याय में विस्तार से कहा जा चुका है। इस प्रकार प्राप्त शब्द-सूची उनका शब्दसमूह मानी जा सकती है। हालाँकि यह मानने की ही बात है। वास्तविक रूप में किसी व्यक्ति के साहित्य में उसके पूरे शब्दसमूह का प्रयोग नहीं मिलता। होमर के ग्रन्थों में लगभग 9000, मिल्टन में लगभग 8000, शेक्स-पियर में लगभग 15,000 तथा तुलसीदास में लगभग 16,000 शब्दों का प्रयोग हुआ है, किन्तु इसका यह आशय नहीं कि इन साहित्यकारों का पूरा शब्दभंडार केवल यही था। इसका अर्थ यह हुआ कि किसी के साहित्य के द्वारा केवल उसके द्वारा प्रयुक्त शब्दसमूह का ही पता चल सकता है, उसके पूरे शब्दभंडार का नहीं।

व्यक्ति का शब्दसमूह मोटे रूप से दो प्रकार का होता है। एक तो वह जिसे हम उसका **सक्रिय शब्दसमूह** (active vocabulary) कह सकते हैं। व्यक्ति अपनी सामान्य अभिव्यक्ति में इन्हीं शब्दों को प्रयोग करता है। इन सक्रिय शब्दों

के अतिरिक्त, उसके शब्दभंडार में काफ़ी निष्क्रिय शब्द होते हैं जिन्हें वह जानता-समझता है किन्तु जिनका वह प्रायः प्रयोग नहीं करता । पढ़ने में तथा दूसरों को सुनने में ही ये शब्द प्रायः काम आते हैं। ऐसे शब्दों के भंडार को **निष्क्रिय शब्द-समूह** (passive vocabulary) कहा जा सकता है। इस सक्रियता-निष्क्रियता का मूल आधार व्यक्ति द्वारा अपनी अभिव्यक्ति में शब्दों का प्रयोग करना और न करना है। इन सक्रिय-निष्क्रिय शब्दभंडारों के आगे भी भेद-उपभेद किये जा सकते हैं। क्योंकि सक्रिय में भी कुछ तो **बहुसक्रिय** होते हैं, कुछ **सक्रिय** होते हैं और कुछ **अल्पसक्रिय**। इसी प्रकार निष्क्रिय के भी **बहुनिष्क्रिय**, **निष्क्रिय** तथा **अल्पनिष्क्रिय** तीन भेद हो सकते हैं। अभी तक इस दृष्टि से किसी व्यक्ति के शब्दभंडार का अध्ययन हुआ है या नहीं, मैं नहीं कह सकता। कम से कम मेरे देखने में ऐसा अध्ययन नहीं आया। मैंने स्वयं अपने शब्दसमूह का इस दृष्टि से विश्लेषण करने का प्रयास किया है। मोटे रूप से मेरे शब्दभंडार के विभिन्न वर्गों का प्रतिशत इस प्रकार है :—

बहुसक्रिय	10%	
सक्रिय	14%	35%
अल्प सक्रिय	11%	
अल्प निष्क्रिय	15%	
निष्क्रिय	30%	
बहुनिष्क्रिय	20%	65%

उपर्युक्त प्रतिशत के आधार पर यह कहा जा सकता है कि व्यक्ति अपने शब्दभंडार के बहुत कम भाग का प्रयोग अभिव्यक्ति के लिए करता है, उसका अधिक भाग दूसरों के समझने में ही प्रयुक्त होता है या वह चुपचाप उसके मस्तिष्क में पड़ा रहता है।

इस प्रसंग में यह बात भी संकेत्य है कि हर व्यक्ति के उपर्युक्त प्रतिशत अलग-अलग होंगे। विभिन्न विषयों के लेखकों के शब्दभंडार-विश्लेषण के आधार

पर प्रस्तुत पंक्तियों का लेखक इस निष्कर्ष पर पहुँचा है कि सामान्य व्यक्ति (जो लेखक, वकील, इंजीनियर, विज्ञानवेत्ता आदि नहीं है) के शब्दभंडार में सक्रिय शब्दों का प्रतिशत काफ़ी कम होता है। इसके विपरीत तकनीकी व्यक्तियों की सक्रिय शब्दावली का प्रतिशत सामान्य लोगों की तुलना में अधिक होता है, क्योंकि वे उन शब्दों का प्रयोग तो करते ही हैं जिनका प्रयोग सामान्य लोग करते हैं, इसके अतिरिक्त अपने विषय से सम्बद्ध अनेक तकनीकी शब्दों का भी वे प्रयोग करते हैं।

लेखकों के साहित्य में जो शब्दावली होती है, वह सारी की सारी सक्रिय शब्दावली ही नहीं होती। उपन्यासकार, कहानीकार, रेखाचित्र एवं संस्मरण-लेखक तथा नाटककार अपने साहित्य में कुछ अपवादों को छोड़कर प्रायः अपने सक्रिय शब्दभंडार का प्रयोग करते हैं, किन्तु इन्हीं क्षेत्रों में इतिहास या वैज्ञानिक विषयों को लेकर लिखने वालों को निष्क्रिय का भी प्रयोग कभी-कभी करना पड़ता है। कवि प्रायः अपनी बात केवल सक्रिय शब्दावली से नहीं कह पाते। छंद की आवश्यकताओं के कारण उन्हें निष्क्रिय शब्दावली भी कभी-कभी काम में लानी पड़ती है। इसीलिए पुराने कवियों या साहित्यकारों की सक्रिय शब्दावली का पता उनके साहित्य से लगाना काफ़ी कठिन है।

किसी व्यक्ति के पूरे शब्दभंडार का पता लगाना भी कम कठिन नहीं है। इसका एक ही तरीक़ा हो सकता है कि उससे शब्दकोश के सारे शब्दों को एक-एक करके पूछा जाय। यों यह पद्धति भी बहुत कारगर नहीं हो सकती, क्योंकि किसी भी जीवित भाषा का कोश पूर्ण नहीं होता।

किसी व्यक्ति का अधिकतम और लघुतम शब्दसमूह क्या हो सकता है, यह अभी खुला प्रश्न है। लोगों का अनुमान है कि अच्छे विज्ञानवेत्ता का शब्दसमूह प्रायः 80,000 शब्दों का होता है। अच्छे वकीलों का शब्दसमूह 50,000 से ऊपर होता है। सामान्य अनपढ़ किसान 4000 से 8000 के बीच शब्दों का, या कुछ उदाहरणों में तो इससे भी कम का प्रयोग करता है। यह उसका सक्रिय शब्द-भंडार होता है। चर्चिल का शब्दभंडार 60,000 कहा गया है, जिसमें से 39,000 का तो वे प्रयोग करते थे। कोशकारों का शब्दभंडार सहज ही काफ़ी बड़ा होता है, किन्तु उसका बहुत बड़ा भाग सच्चे अर्थों में निष्क्रिय रहता है।

व्यक्ति के शब्दभंडार में परिवर्तन होता रहता है। बचपन में उसका शब्द-भंडार बहुत सीमित होता है। उम्र के साथ-साथ उसमें विकास होता रहता है। यही नहीं, उसके सक्रिय और निष्क्रिय शब्दभंडार में तथा दोनों के प्रतिशत में भी परिवर्तन होता रहता है। शब्दभंडार में परिवर्तन का कारण पुराने शब्दों का लुप्त होना तथा नए शब्दों का भंडार में आना है। व्यक्ति की भाषा में ऐसा भी होता है कि बचपन में कोई शब्द (उदाहरण के लिए खेल-सम्बन्धी तकनीकी शब्द) उसके सक्रिय भंडार में है, बड़े होने पर वह निष्क्रिय में चला गया और बुढ़ापे तक जाते-जाते वह उसे प्रायः पूर्णतः भूल गया।

किसी पुस्तक में प्रयुक्त शब्दावली उस पुस्तक का शब्दभंडार है। अभी तक कम ही पुस्तकों के शब्दभंडार की गणना हुई है। बाइबिल की पुरानी पोथी में 5642 शब्द हैं तथा नई में लगभग 4800। मैंने 'कामायनी' की शब्दावली पर काफ़ी विस्तार से काम किया है। मेरी गणना के अनुसार कामायनी में प्रयुक्त कुल पद संख्या 25,441 है, जिनमें मूल शब्द केवल 3505 हैं। विभिन्न प्रकार के व्याकरणिक रूपों के प्रतिशत इस प्रकार हैं :—

संज्ञा	51%	क्रिया	24%
विशेषण	20%	सर्वनाम	2.5%
क्रियाविशेषण	1.25%	संख्यावाचक	0.05%
परसर्ग	0.04%	अन्य अव्यय	0.98%

लिंगीय प्रयोगों का प्रतिशत है :—

पुल्लिंग	73%	स्त्रीलिंग	27%

वचनीय प्रयोगों का प्रतिशत है :—

एकवचन	85%	बहुवचन	15%

व्यक्ति की तुलना में सहज ही भाषा का शब्दभंडार काफ़ी बड़ा होता है। किन्तु कई दृष्टियों से व्यक्ति-शब्दभंडार और भाषा-शब्दभंडार में समानताएँ हैं। जिस प्रकार किसी जीवित व्यक्ति के पूरे शब्दभंडार का पता लगाना काफ़ी कठिन है, उसी प्रकार किसी भाषा के भी शब्दभंडार का पता प्रायः नहीं लगाया जा सकता। इसी तरह मृत व्यक्ति के साहित्य में केवल उन शब्दों के भंडार का ही पता चल सकता है, जो उसके साहित्य में प्रयुक्त हुए हैं, व्यक्ति के पूरे शब्द-भंडार का पता नहीं चल सकता। वैसे ही मृत भाषा (जैसे संस्कृत, लैटिन) केवल उसी शब्दभंडार का पता चल सकता है जो उसके प्राप्त साहित्य में प्रयुक्त है, किंतु वह उस भाषा का पूरा शब्दभंडार नहीं होता। ऐसे भी काफ़ी शब्द हो सकते हैं जो उस भाषा में प्रयुक्त होते रहे होंगे, किन्तु साहित्य में नहीं आए, या आए भी तो वह साहित्य आज उपलब्ध नहीं है। हिन्दी के 'वृहद् हिन्दी कोश' (तीसरा संस्करण) में शब्द-संख्या लगभग 1,38,000 हैं, किन्तु वस्तुतः इसके आधार पर संख्या का ठीक पता लगाना कठिन है। इसका कारण यह है कि इसमें एक ओर तो ऐसे काफ़ी शब्द हैं जो हिन्दी में प्रयुक्त होते हैं या हुए हैं किन्तु उसमें नहीं आए हैं, और दूसरी ओर उस कोश में संस्कृत तथा अरबी-फ़ारसी के काफ़ी शब्द ऐसे भी रख दिए गए हैं, जो हिन्दी में न तो कभी प्रयुक्त हुए और न हो रहे हैं, और न भविष्य में जिनके प्रयोग की सम्भावना है। इधर केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय, डॉ० रघुवीर जैसे अनेक व्यक्तियों, तथा कुछ प्रदेशीय सरकारों और नागरी प्रचारिणी सभा तथा हिन्दी साहित्य सम्मेलन जैसी संस्थाओं ने काफ़ी पारिभाषिक शब्दों का निर्माण किया है। उनमें ऐसे शब्द कम नहीं हैं जो हिन्दी वाङ्मय में

प्रयुक्त होने लगे हैं। काफ़ी शब्द अन्य भाषाओं एवं बोलियों से लिए गये हैं तथा लिये जा रहे हैं। सम्भवतः इस समय हिन्दी भाषा के शब्दभंडार की संख्या दो लाख के आस-पास आँकी जा सकती है। शब्दभंडार की दृष्टि से इस समय अंग्रेज़ी भाषा विश्व में कदाचित् सम्पन्नतम हैं। उसमें लगभग छः लाख से ऊपर शब्दों के होने का अनुमान लगाना अन्यथा न होगा।

किसी भाषा का किसी एक काल का शब्दसमूह सर्वदा एक नहीं रहता। इस दृष्टि से भी वह व्यक्ति-भाषा के समान है। किसी भाषा के शब्दसमूह में परिवर्तन दो कारणों से होता है :—

(क) पुराने शब्दों का लोप

(ख) नए शब्दों का आगमन

होता यह है कि समय के साथ-साथ भाषा की आवश्यकताएँ बदलती हैं, अतः अनावश्यक पुराने शब्द शब्दभंडार से निकलते रहते हैं, और नए आते रहते हैं। उदाहरण के लिए हिन्दी की आदिकालीन शब्दावली वह नहीं थी जो मध्ययुग में थी, और आज की शब्दावली मध्ययुग से काफ़ी परिवर्तित है। वस्तुतः भाषा सामाजिक संस्था है, अतः समाज का परिवर्तन उसमें भी प्रतिफलित होता रहता है। समाज से जो परम्पराएँ, वस्तुएँ या कार्य निकल जाते हैं, भाषा भी उनसे सम्बद्ध शब्दों को निकाल फेंकती हैं। उदाहरण के लिए वैदिक काल में यज्ञों का प्रचलन था, अतः उनसे सम्बद्ध न्यूङ्ख, यज्वा, अहीन, सुत्या जैसे अनेक शब्द प्रचलित थे किंतु बाद में जब यज्ञ हमारे जीवन के अंग न रहे तो ये शब्द भी भाषा से निकल गए। पुराने खान-पान, वस्त्र-आभूषण, धार्मिक कर्मकांड से सम्बद्ध शब्दों की भी धीरे-धीरे यही गति हुई, और आज उनका शव प्राचीन कोशों या प्राचीन साहित्य में ही मिल सकता है। वे हमारी भाषा के अंग नहीं रहे। दूसरी ओर सभ्यता के विकास के साथ या नए वातावरण के सम्पर्क के साथ नई आवश्यकताएँ हमें नए शब्दों को ग्रहण करने को बाध्य करती हैं। मुसलमानों के आगमन ने हिन्दी को लगभग छः हज़ार शब्द दिए। इन शब्दों का सम्बन्ध धर्म (रोज़ा, हज), शासन (सरकार, तहसीलदार, चपरासी), न्याय (वकील, अदालत), सेना (फ़ौज, जमादार, संगीन), पोशाक(कुर्ता, पाजामा, शलवार), फल (अंगूर, अनार, सेब), मिठाई (बरफ़ी, जलेबी, शकरपारा), शृंगार (सुर्मा, साबुन, हजामत), बीमारी (दमा, नब्ज़, बुख़ार) आदि से है।

यह ध्यान देने की बात है कि कुछ शब्द तो नई आवश्यकताओं (नई चीज़, नई संकल्पना, नई परंपरा) के कारण आते हैं जिनके लिए अपने यहाँ शब्द पहले से होते हैं, किन्तु सांस्कृतिक प्रभाव (या सांस्कृतिक दासता) हमें उन्हें अपनाने को बाध्य करता है। बुख़ार (ज्वर), नब्ज़ (नाड़ी), हज़ार (सहस्र, दशशत), आईना (दर्पण), अंगूर (दाख, द्राक्ष) ऐसे ही शब्द हैं। यूरोपीय सम्पर्क ने भी हमें काफ़ी शब्द दिए जिनमें सर्वाधिक अंग्रेज़ी के हैं। ये मुख्यतः यन्त्र, सवारी, चिकित्सा, शिक्षा, पोशाक, शासन, प्रेस, खेल, खानपान, सेना, कला एवं शृंगार-सम्बन्धी हैं :

मोटर, इंजन, कैमरा, रेडियो, ग्रामोफ़ोन, लारी, बस, साइकिल, कार, आपरेशन, अस्पताल, डॉक्टर, ड्रेसिंग, स्कूल, कॉलिज, मास्टर, रीडर, प्रोफ़ेसर, फ़ीस, पैंट, कोट, सूट, टाई, वारंट, डिप्टी कलक्टर, कलक्टर, कमिश्नर, टाइप, प्रूफ़, हॉकी, क्रिकेट, बैडमिंटन, बिस्कुट, कॉफ़ी, टोस्ट, आइसक्रीम, रेज़र, टैंक, बम, ब्रश, फ़ोटो, स्केच, क्रीम, पाउडर, स्नो आदि। कुछ पुर्तगाली, फ्रांसीसी, स्पेनी तथा रूसी शब्द भी आए हैं।

किसी भाषा में इस प्रकार के विदेशी शब्द तीन रूपों में आते हैं। कुछ तो प्रायः ज्यों-के-त्यों आ जाते हैं : पैंट, कोट, ट्रक, स्कूल, वकील, मुख़्तार। यहाँ प्रायः इसलिए कहा गया कि सूक्ष्म दृष्टि से उच्चारण में अन्तर तो आ ही जाता है किंतु सामान्यतः इस श्रेणी के शब्द मूल जैसे ही लगते हैं। दूसरे प्रकार के शब्द वे हैं जो ग्रहण करने वाली भाषा की ध्वनि-व्यवस्था के अनुकूल परिवर्तित या अनुकूलित होकर आते हैं। तिजोरी (ट्रेज़री), रपट (रिपोर्ट), अगस्त (ऑगस्ट), अर्दली (ऑर्डरली), कुर्ता (कुर्तह्) आदि। तीसरे प्रकार के शब्द अनूदित होकर आते हैं : कटिबद्ध (कमरबस्ता), लालफ़ीताशाही (redtapism), स्वर्णजयंती (golden jubilee), हीरक जयंती (diamond jubilee), दृष्टिकोण (angle of vision), प्रधानाध्यापक (headmaster), मालगाड़ी (goods train)।

किसी भाषा में अन्य भाषाओं से, सर्वाधिक शब्द संज्ञावर्ग के आते हैं, और सबसे कम सर्वनाम। विशेषणों की संख्या संज्ञा से कम किंतु अन्यों से अधिक होती है। धातु और अव्यय सर्वनाम और विशेषण के बीच में आते हैं। हिन्दी में फ़ारसी से आने वाले शब्दों का संख्या की दृष्टि से क्रम है : संज्ञा (सर्वाधिक) विशेषण, धातु, अव्यय, सर्वनाम (सबसे कम)। संज्ञा के उदाहरण ऊपर आ चुके हैं। अन्यों के उदाहरण हैं : आसान, बेईमान, ख़ुश, तेज़, बदनाम, बारीक, तराशना, वसूलना, शर्माना, ख़रीदना, अगर, कि, वरना, लेकिन, ख़ुद, फ़लाँ। यूरोपीय भाषाओं से केवल संज्ञा शब्द ही आए हैं। विशेषण (फ़ाइन, रफ़, सुपरफ़ाइन, मर्सराइज़्ड, डबल, गोल्डन, हेड, हाफ़) इने-गिने हैं तथा क्रिया (फ़िल्माना) तो इक्की-दुक्की।

भाषाओं के शब्दभंडार से कभी-कभी कुछ शब्द अश्लील हो जाने से निकल जाते हैं। स्त्री-पुरुष के विशेष अंगों या उनसे सम्बद्ध क्रियाओं के लिए प्रयुक्त शब्द ऐसे ही हैं। कभी-कभी कुछ शब्द उच्च स्तर के लोगों के शब्दसमूह से ही 'निकल' या 'प्रायः निकल' जाते हैं। यहाँ हिन्दी की तुलना में अंग्रेज़ी का उदाहरण सुविधाजनक हो गया। पहले लैट्रिन और यूरिनल शब्द चलते थे। अत्यन्त प्रचलित हो जाने पर इनमें अश्लीलता की गन्ध आ गई। अतः 'बाथरूम' शब्द इन दोनों या दूसरे के लिए प्रयुक्त होने लगा, हालाँकि इसका अर्थ 'स्नानघर' है। धीरे-धीरे यह भी अश्लीलता की गन्ध से युक्त हो गया तो 'ट्वायलेट' (जिसका मूल अर्थ बालों का शृंगार करते समय कंधों पर डाला जाने वाला कपड़ा, शृंगार की मेज़, सिंगारदान, या शृंगारघर आदि था) का प्रयोग होने लगा, और अब इस

शृंखला में आने वाला नवीनतम शब्द 'क्लोकरूम' (मूल अर्थ ओवरकोट तथा हैट रखने का बाहरी कमरा या स्टेशन पर सामान रखने का कमरा) है। पता नहीं अभी और कितने श्लील शब्दों को इस परम्परा में आ-आकर अश्लील बनना है।[1]

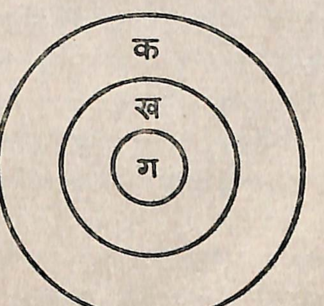
जैसा कि कहा जा चुका है कि किसी भाषा में प्रयुक्त सारे शब्दों को उस भाषा का 'शब्दभंडार' या 'शब्दसमूह' कहते हैं। प्रयोग-बाहुल्य और भाषा की विभिन्न स्तर की आवश्यकताओं के आधार पर किसी भाषा के शब्दसमूह को तीन वर्गों में बाँटा जा सकता है :—

(क) उच्च या बाह्य शब्दसमूह—इसमें वे शब्द आते हैं जिनका प्रयोग दैनिक व्यवहार की सामान्य भाषा में अपेक्षाकृत कम होता है। पारिभाषिक शब्दों का काफ़ी बड़ा भाग इसी प्रकार का होता है। हिन्दी में अद्वैतवाद, विपर्यय नाभिकीय जैसे शब्द इसी श्रेणी के हैं।

(ख) मध्यवर्ती शब्दसमूह—इस वर्ग के शब्द 'क' की तुलना में अधिक प्रयुक्त होते हैं, साथ ही ये अपनी भाषा के अधिक आवश्यक अंग होते हैं, किंतु भाषा की मूलभूत अभिव्यक्ति के लिए ये प्रायः बहुत आवश्यक नहीं होते। सामान्य शब्दों के अल्पप्रयुक्त पर्याय, साहित्य में शैलीय सौंदर्य के काम आने वाले शब्द तथा सामान्य जीवन में नहीं, अपितु अवसर विशेष पर काम आने वाले शब्द आदि इसके अन्तर्गत आते हैं। उदाहरणार्थ हिन्दी में नीर, मनोरम, गृह, दिवस, लेखनी आदि शब्द ऐसे ही हैं।

(ग) आधारभूत शब्दसमूह—इस वर्ग के शब्द भाषा के आधार या नींव होते हैं, तथा इनका प्रयोग उपर्युक्त दोनों की तुलना में बहुत अधिक होता है। हिन्दी में पहाड़, पानी, सुन्दर, घर आदि शब्द इसी श्रेणी के हैं। आधारभूत शब्दससूह को 'बेसिक या बुनियादी शब्दावली' भी कहते हैं।

किसी भाषा के शब्दसमूह को निम्न रूप में रेखांकित किया जा सकता है—



(1) शब्दसमूह में परिवर्तन पर विस्तार से देखने के लिए प्रस्तुत पंक्तियों के लेखक की पुस्तक 'भाषाविज्ञान' का 'शब्दविज्ञान' शीर्षक अध्याय देखा जा सकता है।

यह बात ध्यान देने योग्य है कि उपर्युक्त आरेख में 'ग' आधारभूत शब्दसमूह है, जो केन्द्र में है तथा 'क' एवं 'ख' से छोटा है। 'ख' मध्यवर्ती शब्दसमूह है जो 'ग' की तुलना में बाहरी है तथा उससे बड़ा भी है। 'क' उच्च या बाह्य शब्दसमूह है जो 'ग' और 'ख' दोनों की तुलना में बाहरी या ऊपरी है, साथ ही दोनों की तुलना में बड़ा भी है।

आगे चौदहवें अध्याय में 'आधारभूत शब्दावली' शीर्षक से इस पर अलग से भी विचार किया जा रहा है।

8
नामविज्ञान

'नामविज्ञान' शब्दों के अध्ययन या 'शब्दविज्ञान' की एक महत्त्वपूर्ण शाखा है जिसमें नामों का अध्ययन होता है। अंग्रेज़ी में इसके लिए तीन नामों (onomatology, onomasiology, onomastics) का प्रयोग होता है। नाम, वह शब्द या शब्दों का समूह है जिससे किसी व्यक्ति, वस्तु या सत्ता आदि का बोध होता है। कोई आवश्यक नहीं कि व्यक्ति, स्थान या वस्तु आदि का सार्थक संबंध उनके नाम से हो। 'सुन्दरलाल' नाम का व्यक्ति महा असुन्दर हो सकता है और 'घूरेलाल' कामदेव के अवतार हो सकते हैं। 'सोनबरिसा' (जहाँ सोना बरसे) नाम के गाँव में धूल उड़ सकती है और 'सूखेपर' (जहाँ की धरती सूखी ही सूखी हो) में लहलहाते खेतों की सरसता दृष्टिगत हो सकती है। इसका अर्थ यह हुआ कि नाम संकेत या प्रतीक होता है। वह संकेत यादृच्छिक भी हो सकता है जैसे जिस घर में फूटी कौड़ी भी न हो, उस घर के लड़के का नाम अशर्फ़ीलाल या करोड़पति के लड़के का नाम छकौड़ीमल, और दूसरी ओर सार्थक भी हो सकता है, जैसे माताबदल, कनछेदी, नकछेदी, बेचू आदि। उल्लेख्य है कि कुछ क्षेत्रों में जिन व्यक्तियों के लड़के मर जाते हैं वे अंधविश्वासवश पुत्र पैदा होते ही माँ बदल देते हैं, अर्थात् दूसरी स्त्री (माँ) को दे देते हैं (माताबदल), कुछ लोग उसके कान (कनछेदी) या नाक (नकछेदी) या दोनों छेद देते हैं और कुछ आने-दो आने में टोना-टोटका स्वरूप उसे बेच (बेचू) देते हैं, और तदनुसार नामकरण कर देते हैं। नाम बहुत छोटे भी होते हैं जैसे शिव, लावा (गाँव का नाम) तथा बहुत बड़े भी होते हैं, जैसे उदयप्रताप बहादुर सिंह, मोहनदास करमचन्द गाँधी। ग्रेट ब्रिटेन में एक रेलवे स्टेशन का नाम 58 वर्णों (Leanfairpwllgwyngyllgogerychwyrndrobwllllantysiliogogogoch) का तथा आस्ट्रेलिया में एक झील का नाम 38 (Kardivilliwarrakurrakurrieapparlarndoo) वर्णों का है।

नामविज्ञान में जिन नामों का अध्ययन होता है वे व्यक्तिवाचक संज्ञा होते हैं। इनमें व्यक्तियों के नाम या उपनाम; जानवरों के नाम (पालतू जानवरों को लोग कभी-कभी नाम दे देते हैं, जैसे कुत्ते का नाम लालू, कालू, टाइगर, रॉबिन आदि : इसी प्रकार हाथी, घोड़े, बन्दर, बिल्ली, शेर, चीते, आदि के भी नाम होते हैं। चिड़ियाघर में अनेक जानवरों के इस प्रकार के नाम होते हैं); पक्षियों

के नाम (तोते आदि के जैसे आत्माराम, शिवशंकर, रामू आदि); भौगोलिक नाम (महासागर, सागर, खाड़ी, नदी, झील, तालाब, महाद्वीप, द्वीप, अंतरीप, प्रायद्वीप, देशों के संघ, देश, प्रदेश या प्रांत, डिविज़न, सबडिविज़न, कमिश्नरी, ज़िला, तहसील, परगना, नगर, क़स्बा, ग्राम, मुहल्ला, स्टेशन, सड़क, गली, चौराहा, तिराहा आदि के); लोगों के मकानों व बँगलों के नाम; पुस्तकों के नाम, पत्र-पत्रिकाओं के नाम; लेख, कविता, कहानी, नाटक, रेखाचित्र, तथा चलचित्र के शीर्षक; जाति, धर्म, गोत्र के नाम; त्यौहारों के नाम; संस्थाओं के नाम; छापनाम [जैसे अशोक (ब्लेड), सनलाइट (साबुन), कोकाकोला (पेय), डालडा (वनस्पति घी), ब्रुकबांड (चाय), नेस (काफ़ी), पार्कर (क़लम), मरफ़ी आदि]; ऋतुओं-महीनों-तिथियों-दिनों के नाम; तारा-ग्रह-उपग्रह-राशि के नाम; भाषा-उपभाषा-बोली-उपबोली के नाम—कहने का आशय यह कि सभी तरह के नाम आते हैं।

इन नामों के वर्गीकरण के आधार पर नामविज्ञान को कभी दो (व्यक्तिनामविज्ञान तथा स्थाननामविज्ञान), कभी तीन [व्यक्तिनामविज्ञान, सामूहिक नामविज्ञान (जैसे जाति, धर्म, आस्पद, गोत्र आदि के नामों का अध्ययन), भौगोलिकनामविज्ञान] तथा कभी और अधिक शाखाओं में बाँटा गया है। वस्तुतः उपर्युक्त नामों का ठीक-ठीक वर्गीकरण काफ़ी कठिन है, इसी कारण अभी तक सर्वसम्मति या बहुसम्मति से नामविज्ञान की शाखाओं-प्रशाखाओं के नाम स्वीकृत नहीं हुए हैं। यों मोटे रूप से व्यक्तिनाम, स्थाननाम, सामूहिकनाम तथा अन्य नाम—ये चार वर्ग माने जा सकते हैं।

नामविज्ञान के क्षेत्र में विदेशों में पर्याप्त काम हुआ है। अंग्रेजी वाङ्मय इस दृष्टि से काफ़ी सम्पन्न है। गार्डिनर की 'द थ्यूरी ऑफ़ प्रापर नेम्ज़', एकवैल (Ekwall) की 'द कन्साइज़ आक्सफ़र्ड डिक्शनरी आफ़ इंगलिश प्लेस नेम्ज़' तथा रेनले एवं अन्य लोगों की 'द ओरिजिन ऑफ़ इंगलिश प्लेस नेम्ज़' इस क्षेत्र में उल्लेख्य हैं। लंदन की गलियों के नामों पर भी काम हो चुका है।

भारत में, नामविज्ञान रूप में शब्दविज्ञान की यह शाखा अभी अपनी शैशवावस्था में है, किन्तु नामों के अध्ययन के प्रयास अत्यन्त प्राचीन काल से होते रहे हैं। संस्कृत वाङ्मय में अनेक ग्रंथों में यत्र-तत्र स्थान या व्यक्तिनामों की व्युत्पत्ति देने के प्रयास हुए हैं। इस दृष्टि से यास्क का निरुक्त प्राचीनतम उल्लेख्य ग्रंथ है। उसमें पृथ्वी, अग्नि, आदित्य, वैश्वानर आदि अनेक देवी-देवताओं तथा कम्बोज आदि कई स्थाननामों की व्युत्पत्तियाँ दी गई हैं। पाणिनि के अष्टाध्यायी, वाल्मीकि रामायण, महाभारत, विष्णु पुराण, ब्रह्मवैवर्त्त पुराण आदि में भी यत्र-तत्र अच्छी सामग्री है।

आधुनिक काल में अंग्रेज़ों के आने के बाद इस दृष्टि से ठोस प्रयास हुए हैं। इस दिशा में सर्वप्रमुख उल्लेख्य ग्रंथ विभिन्न ज़िलों के गज़ेटियर हैं जिनमें नगरों क़स्बों आदि के नामों पर काफ़ी सामग्री है। कुछ अन्य प्रकार के ग्रंथों

(जैसे ग्राउज़ का 'मथुरा मेम्वॉयर' या प्रयाग, काशी, अयोध्या आदि तीर्थों पर धार्मिक दृष्टि से लिखी गई परिचयात्मक पुस्तिकाएँ) में भी कुछ सामग्री मिल जाती है। इसी प्रकार भाषाओं के इतिहास पर लिखी गई पुस्तकों में भी स्थानों और कहीं-कहीं व्यक्तिनामों की व्युत्पत्ति पर थोड़ी-बहुत सामग्री (जैसे सुनीति कुमार चटर्जी के 'ओरिजिन एंड डेवलपमेंट ऑफ़ बेंगाली लैंग्विज' या बानीकांत काकती के 'असमीज़; इट्स फ़ार्मेशन एंड डेवलपमेंट' में) है।

हिन्दी में नामविज्ञान के क्षेत्र में धीरेन्द्र वर्मा का लेख 'अवध के ज़िलों के नाम' (उनकी पुस्तक 'विचारधारा' में संकलित) प्रथम व्यवस्थित अध्ययन है। बाद में उन्हीं के निर्देशन में कार्य करके विद्याभूषण विभु ने हिन्दी प्रदेश के हिन्दी पुरुषों के नाम पर प्रयाग विश्वविद्यालय से डी० फ़िल० की उपाधि ली। ग्रंथ 'अभिधान अनुशीलन' नाम से छप चुका है। राहुल सांकृत्यायन ने एक लम्बा लेख 'ज़िला आज़मगढ़ के नामों का इतिहास' सम्मेलन पत्रिका (भाग 43, संख्या 1) में प्रकाशित किया था। सरयूप्रसाद अग्रवाल ने 'अवध के स्थाननामों का भाषा-वैज्ञानिक अध्ययन' पर लखनऊ विश्वविद्यालय से डी० लिट्० तथा श्री प्रकाश कुर्ल ने सहारनपुर ज़िले के स्थाननामों (a socio-linguistic study of District Saharanpur place-names) पर एवं लक्ष्मीनारायण शर्मा ने 'ब्रज के स्थान-अभिधानों का भाषावैज्ञानिक अध्ययन' पर आगरा से पी-एच० डी० की उपाधि प्राप्त की है। श्री शर्मा जी ने एम० ए० के लिए लघु शोधप्रबन्ध भी इसी विषय (आगरा मुहल्ले के नामों का भाषावैज्ञानिक अध्ययन) पर प्रस्तुत किया था। मुरादाबाद के स्थाननामों पर भी एक शोधप्रबंध डॉ० उषा चौधरी आ चुका है। प्रस्तुत पंक्तियों के लेखक ने भी 'अमृत पत्रिका' (प्रयाग से प्रकाशित हिन्दी दैनिक जो अब बन्द हो चुका है) के कुछ अंकों में इस विषय पर कुछ लेख लिखे थे। इसी प्रकार प्रस्तुत लेखक की पुस्तक 'भाषाविज्ञान कोश' में विश्व की प्रमुख भाषाओं के परिचय में बहुतों के नाम पर संक्षेप में विचार किया गया है। लेखक की दूसरी पुस्तक 'हिन्दी भाषा' में हिन्दी, उर्दू आदि नामों पर काफ़ी विस्तृत तथा हिन्दी प्रदेश की प्रमुख बोलियों के नामों पर संक्षिप्त सामग्री दी गई है। यों हिन्दी में ऐसे कार्यों का अभी श्रीगणेश ही हुआ है और काफ़ी कार्य होना शेष है।

नामों का अपने आप में एक मनोरंजक अध्ययन तो है ही, और इससे नामों के बारे में हमारी जिज्ञासा की शांति तो होती ही है साथ ही इससे हमारे अंध-विश्वास, प्राचीन इतिहास और संस्कृति, जाति-मिश्रण तथा मनोविज्ञान आदि पर भी अच्छा प्रकाश पड़ता है।

भारत एक धर्म प्रधान देश है। इसीलिए यहाँ व्यक्तिनामों में लगभग अस्सी प्रतिशत नाम धर्म और दर्शन पर आधारित हैं, शेष में अन्य प्रकार के नाम हैं। स्थाननामों की आवश्यकता तो कभी-कभार ही पड़ती है, अतः उन पर तो समय का प्रभाव बहुत अधिक नहीं पड़ता, किन्तु व्यक्तिनामों की आवश्यकता तो रोज

पड़ती है, अतः उन पर बहुत अधिक प्रभाव दृष्टिगत होता है। हमारे नाम समय के साथ बदलते रहे हैं। वैदिक काल से लेकर अब तक के नामों पर एक दृष्टि डालें तो यह बात स्पष्ट हुए बिना नहीं रहती। प्राचीन वैदिक नाम बहुत अधिक धर्म-प्रधान नहीं हैं किंतु परवर्ती काल में जैसे-जैसे धर्म के प्रति अंध आस्था बढ़ती गई धार्मिक नाम बढ़ते गए। बौद्ध और जैन धर्म आए तो उनके आधार पर भी नामकरण किए जाने लगे (अमिताभ, गौतम बुद्ध, सिद्धार्थ, राहुल, बुद्धदेव, ऋषभ, जिनेश्वर, जैनेन्द्र, सुपार्श्व)। आगे चलकर मुसलमानों के आगमन तक इसी प्रकार के नामों की सम्मिलित प्रवृत्ति विशेष रूप से चलतीं रही। मुसलमानों के आगमन ने अन्य क्षेत्रों की भांति नामों पर भी प्रभाव डाला और राम ग़ुलाम, राम इक़बाल, इज़्ज़तसिंह, उलफ़त राय, मुसद्दीलाल, ख़ुशीराम, हुरमत, ख़ुशबख्त, मुंशीराम, बहराम, हज़ूरसिंह, सुहराब, रुस्तम, ख़ुरशेद जैसे नाम हिंदुओं में भी काफ़ी प्रचलित हो गए। अंग्रेज़ भारत में राजा तो रहे किन्तु वे हमारी संस्कृति में प्रवेश न कर सके। इसी कारण स्वीटी, बेबी, रूबी, लिली, डॉली जैसे कुछ ही नाम विशेष मिलते हैं। इनमें भी प्रायः वास्तविक नाम न होकर पुकारने के नाम होते हैं। हाँ डिप्टीसिंह, कप्तानसिंह जैसे कुछ नाम अवश्य हैं। स्वामी दयानंद सरस्वती के आर्य समाज-आन्दोलन ने भी नामों को बहुत अधिक प्रभावित किया : शन्नो देवी, ओमवती, ओमप्रकाश, वेदपाल, वेदप्रकाश, वेदमित्र, वेदव्रत, वेदमणि। देश की आज़ादी के लिए संघर्ष और स्वराज्य की प्राप्ति ने भी नामों पर अपनी छाप छोड़ी है : देशराज, देशरत्न, भारत भूषण, भारत मित्र, स्वदेशीलाल, क्रांतिकुमार, स्वतंत्रनारायण, स्वराज्यपाल, सुदेशचंद, स्वदेश कुमार।

व्यक्ति नामों में सबसे मनोरंजक सामग्री अंधविश्वास पर आधारित नामों में मिलती है। पीछे मातावदल, छेदी, बेचू का उल्लेख किया जा चुका है। ऐसे नाम अनपढ़ या कम पढ़े-लिखे निम्न श्रेणी के लोगों में विशेष रूप से मिलते हैं। कुछ नाम हैं : खदेरन, खदेरू, पबारू; घुरफेंकन, फेंकू; लुटई; बदलू; घसीटू, घसीटेलाल, खचेड़ू; छेदी, कनछेदी, छिद्दन, नत्थू, नथुनी; जोखू, तुल्लू; फेरू, लौटू, बिक्कू, बिकाऊ; बेचन, बेचई, बेचू, सौदू, मोलू, बिसाऊ; माँगू, मँगतू; घुरहू, अलियार।

ये सारे के सारे मूलतः अंधविश्वास पर आधारित हैं। एक सबसे बड़ा अंधविश्वास तो यह है कि जैसे अच्छी चीज़ सबको पसन्द आती है, वैसे ही अच्छा नाम रखने से वह सबको पसन्द आएगा, अतः नाम पर नज़र लग कर उस पर भी लग जाएगी और दूसरे, वह भगवान को भी पसन्द आ जाएगा, अर्थात् मर जाएगा। इस कारण बहुत से अनपढ़ भारतीय अच्छे नामों की तुलना में बुरे नामों को पसन्द करते रहे हैं।

उपर्युक्त नाम मूलतः इस अंधविश्वास पर आधारित हैं कि बच्चे को यदि पैदा होते ही घर से निकाल (खदेरन, खदेड़ू) या बाहर फेंक (पबारू, फेंकू) दें, घूरे पर फेंक दें (घुरफेंकन), लुटा या किसी और के बच्चे से बदल दें (लुटई,

फेरू, बदलू), ज़मीन पर घसीट दें (घसीटू, घसीटेलाल, खचेड़ू=जो खींचा गया हो), कान या नाक या दोनों छेद दें (छेदी, कनछेदी, नकछेदी, नत्थू=जो नाथ दिया गया हो, नथुनी=नथ), पैदा होते ही तराज़ू पर तौल कर बेच दें (जोखू, तुल्लू, बेचऊ, सौदू, मोलू, बिकाऊ, बिक्कू) या बदल दें (बदलू) तो वह दीर्घायु होता है। बहुत से लोग, जिनके बच्चे बार-बार मर जाते हैं, ऐसा करते रहे हैं, और इसी आधार पर ऐसे नाम रखते रहे हैं। बाद में परंपरा चल जाने पर ऐसी कोई क्रिया न करने पर भी लोग ऐसे नाम रखने लगे। अब शिक्षा के प्रचार के साथ ऐसे नाम कम होते जा रहे हैं, और शायद शीघ्र ही वह समय आएगा जब ये नाम इतिहास की चीज़ बन जाएँगे।

पुराकालीन नामों का अध्ययन अपार संभावनाओं से भरा है। रामायण और महाभारत के बारे में परंपरागत विश्वास यह है कि ये सारी-की-सारी घटनाएँ ऐतिहासिक हैं और इन दोनों काव्यों के सभी पात्र ऐतिहासिक हैं। किन्तु इनके नामों के अध्ययन से विचित्र संकेत मिलता है। कौरवों के नाम दुर्योधन, दुःशासन, दुस्सह आदि हैं। कौन बाप अपने लड़के के ये नाम रखेगा? इसी प्रकार रामायण में रावण पक्ष के नाम कुंभकर्ण, मेघनाद, शूर्पणखा आदि भी वही बात कह रहे हैं। तो क्या ये कल्पित हैं?

महाभारत के कुछ पात्रों के नामों का अध्ययन कुछ विद्वानों ने किया है जिससे बड़े आश्चर्यजनक परिणाम निकलते हैं। यहाँ विस्तार से इस प्रश्न को नहीं उठाया जा सकता। किन्तु निष्कर्षस्वरूप यह कहा जा सकता है कि पाँचों पांडव वस्तुतः सगे भाई नहीं थे। अर्जुन जाति के प्रतीक अर्जुन, वृक जाति के प्रतीक भीम, यौधेय जाति के प्रतीक युधिष्ठिर तथा मद्र जाति के प्रतीक नकुल और सहदेव थे। इन चारों जातियों ने मिलकर पुरु और भरत जातियों के मिश्रण कौरवों से युद्ध किया था (विस्तार के लिए देखिए: महाभारत: एक ऐतिहासिक अध्ययन—बुद्ध प्रकाश, इलाहाबाद, 1959)।

यह कम लोगों को ज्ञात है कि 'विनोबा भावे' का वास्तविक नाम विनायक भावे है। वे जब पहले-पहले गांधीजी के आश्रम में गए तो वहाँ पहले से एक पंजोबा नाम के सज्जन रहा करते थे। गांधीजी ने पंजोबा के सादृश्य पर इनको विनोबा कहना प्रारंभ किया और 'विनायक भावे' 'विनोबा भावे' बन गए।

अब तक हम लोग व्यक्तियों के नामों पर विचार कर रहे थे। स्थाननामों का अध्ययन भी कम उपयोगी और मनोरंजक नहीं है। नीचे कुछ नामों पर संक्षेप में विचार किया जा रहा है।

'बिहार' प्रांत का नाम यहाँ पर बौद्ध विहारों के आधिक्य के कारण पड़ा है। अंडमान द्वीप का पुराना नाम अंगमान (अंग, बंग का उल्लेख मिलता है) माना जाता रहा है। अब लोगों का विचार है यह नाम 'हनुमान' का विकसित रूप है। संभव है पहले यहाँ 'वानर' जाति के लोग रहते हों। उल्लेख्य है कि राम के साथ सेना बन्दरों की नहीं थी, यह 'वानर' नामक आदिवासियों की थी। बन्दर की

पूजा के कारण या कुछ-कुछ बन्दर-सा होने के कारण उन्हें कदाचित् यह नाम दिया गया था। मध्य एशिया स्थित 'बुख़ारा' नगर का नामकरण वहाँ प्राचीन काल में बौद्ध विहारों के बाहुल्य के कारण पड़ा है। इतिहास के विद्यार्थी इस बात से भली-भाँति परिचित हैं कि बौद्ध धर्म किसी समय में वहाँ तक फैला था। प्रस्तुत पंक्तियों के लेखक को अपनी बुख़ारा-यात्रा में वहाँ काफ़ी भग्नावशेष देखने को मिले जो भारतीय सम्पर्क के प्रमाण थे। एक प्राचीन खँडहर पर तो स्वस्तिक का चिह्न भी मिला।

आसाम में मिट्टी के तेल का प्रसिद्ध केन्द्र है 'डिगबोई'। इस नाम का मूल बड़ा अजीब है। कहा जाता है कि 'असम रेलवेज़ एंड ट्रेडिंग कम्पनी लिमिटेड' को डिब्रूगढ़ से आगे रेलवे लाइन बनाते समय उधर मिट्टी का तेल होने का संकेत मिला। तेल के लिए खुदाई एक अंग्रेज की देख-रेख में शुरू हुई। खोदने वाले मज़दूरों से वह अंग्रेज़ 'डिग ब्वॉय डिग ब्वॉय' (खोदते जाओ, खोदते जाओ) कहता था। यह 'डिगब्वॉय' मज़ाक़-मज़ाक़ में वहाँ के मज़दूरों की ज़बान पर चढ़ गया और वह स्थान डिगब्वॉय के आधार पर 'डिगबोई' कहलाने लगा।

प्राचीन काल में नगर, ग्राम, मुहल्ले आदि के नामों के साथ ग्राम, पल्ली, क्षेत्र, प्रस्थ, स्थल, हट्ट, पुर, नगर, पट्टन, मंडप, चत्वर, चतुष्क आदि का प्रयोग होता था। मुस्लिम काल में कटरा, बाज़ार, बाड़ा, कूचा, गली, बाग़, बस्ती, दरवाज़ा, मोहल्ला, दरीबा, गंज आदि प्रयोग शुरू हुए। अंग्रेज़ों के समय में रोड, गार्डन, मार्केट, सिटी, गेट, टाउन आदि जोड़े जाने लगे। इस श्रेणी के कुछ नाम बड़े दिलचस्प हैं। मुसलमानों के काल में भारत में 'गुलामों' की बिक्री होने लगी थी। घोड़े का प्रचार भी बहुत अधिक बढ़ गया था, जिसका परिणाम यह हुआ कि हर अच्छे नगर में घोड़ों और ग़ुलामों के बाज़ार लगा करते थे। अरबी भाषा में एक शब्द है 'नख़्ख़ास' जिसका अर्थ होता है 'जानवर या ग़ुलाम बेचने वाला'। भारतीय नगरों में वे स्थान जहाँ ग़ुलाम और घोड़े बेचे जाते थे, इसी आधार पर नख़्ख़ास कहलाए। आज भी ग़ाज़ीपुर, बनारस, इलाहाबाद, लखनऊ, आगरा, फ़र्रुख़ाबाद आदि अनेक नगरों में नख़्ख़ास, नख़्ख़ास कोना या नख़्ख़ास मुहल्ला नाम के स्थान हैं। यों अब लोग भूल चुके हैं इनका अर्थ, किन्तु इनका विश्लेषण स्पष्ट करता है कि ये स्थान कभी ग़ुलामों और घोड़ों आदि के विक्रय-स्थल थे।

इसी प्रसंग में दिल्ली के मुहल्ले 'मोरी गेट' का नाम लिया जा सकता है। यह मुहल्ला मुसलमानी काल का है, और उस समय इसका नाम 'मोरी दरवाज़ा' था। 'मोरी' तुर्की भाषा का शब्द है और इसका अर्थ है 'घोड़ा'। इस शब्द के अर्थ का विश्लेषण यह स्पष्ट करता है कि तुर्कों के ज़माने में इस स्थान पर घोड़े बिका करते थे। इसी प्रकार दिल्ली के 'उर्दू बाज़ार' को सामान्यतः लोग 'उर्दू भाषा की पुस्तकों का बाज़ार' समझते हैं। वस्तुतः उर्दू का मतलब है 'फ़ौजी शिविर'। उर्दू बाज़ार मूलतः सैनिकों के लिए बाज़ार होने के कारण इस नाम से

अभिहित हुआ था।

यहाँ तक हमने स्थाननामों पर कुछ फुटकल रूप से विचार किया। स्थान-नामों का पूरा और विस्तृत अध्ययन विस्तार से भी किया जा सकता है। उदाहरण के लिए यहाँ उत्तर प्रदेश के एक छोटे से नगर ग़ाज़ीपुर के नाम का अध्ययन प्रस्तुत किया जा रहा है।

'ग़ाज़ीपुर' या इससे मिलते-जुलते नाम से, ग़ाज़ीपुर नगर का कोई पुराना उल्लेख हमें नहीं मिलता। प्रसिद्ध चीनी यात्री फ़ाह्यान पटना से बनारस इधर से ही गया होगा किन्तु उसने इसका कोई उल्लेख नहीं किया है। फ़ाह्यान के प्रायः 200 वर्ष बाद ह्वेनसांग यहाँ गया था। उसके अनुसार इस प्रदेश का नाम 'चेन चू' था। कहने की आवश्यकता नहीं कि चीनी भाषा में व्यक्तिवाचक नामों का भी अनुवाद कर लिया जाता है। 'चेन चू' का शाब्दिक अर्थ 'युद्धों के स्वामी का राज्य' होता है। इस आधार पर लोगों का अनुमान है कि उस समय इसका नाम कदाचित् 'युद्धपतिपुर' था। कनिंघम ने 'चेन चू' के आधार पर उस स्थान का नाम 'गर्जपतिपुर' या 'गर्जपुर' होने का अनुमान लगाया है और 'ग़ाज़ीपुर' इस विचार से गर्जपतिपुर या गर्जपुर का बिगड़ा रूप है। फ़्लीट ने भी इस मत का समर्थन किया है। किन्तु परवर्ती विद्वानों ने प्रायः इसे अशुद्ध माना है। नंदलाल डे ने भी अपने भौगोलिक कोश में इसे अशुद्ध कहा है। डॉ० होई भी इसी मत के हैं। नेविल के मतानुसार ह्वेनसांग का 'चेन चू' ग़ाज़ीपुर ज़िले का 'उधरनपुर' है जिसका उस समय अनुमानित नाम 'युद्धरनपुर' रहा होगा। आज का 'उधरनपुर' 'युद्धरनपुर' का ही बिगड़ा या विकसित रूप है।

ग़ाज़ीपुर के नाम के सम्बन्ध में दूसरा अनुमान वहाँ के एक बड़े टीले या कोट से लगाया जाता है। ग़ाज़ीपुर नगर से बिल्कुल लगा एक बहुत ऊँचा टीला है जिसे लोग राजा गाधि का टीला कहते हैं। इस अनुमान पर लोगों का कहना है कि महर्षि विश्वामित्र के पिता राजा गाधि का यहाँ क़िला था और उन्हीं के नाम पर इस नगर का प्राचीन नाम 'गाधिपुर' था। इस आधार पर 'ग़ाज़ीपुर' 'गाधिपुर' का ही विकसित रूप ठहरता है। एक 'गाधिपुर' नाम का उल्लेख पुराणों में है किन्तु वह कदाचित् कन्नौज के पास था। कुछ लोगों के अनुसार 'कन्नौज' का ही पुराना नाम 'गाधिपुर' था।

'ग़ाज़ीपुर' नाम के सम्बन्ध में एक और जनश्रुति भी है। कहा जाता है कि मांधाता नाम के राजा एक बार जगन्नाथपुरी जा रहे थे। रास्ते में ग़ाज़ीपुर ज़िले के कठौत गाँव के एक तालाब में स्नान करने से उनकी इच्छा पूरी हो गई। इसके फलस्वरूप मांधाता वहीं रुक गए और एक क़िला बनाकर रहने लगे। उनके परिवार में किसी ने एक मुसलमान की लड़की पकड़ ली और फलस्वरूप उसकी विधवा माँ ने उस समय के मुसलमान बादशाह के यहाँ प्रार्थना-पत्र दिया और उनके यहाँ से चालीस ग़ाज़ियों का एक समूह आया और राजा को मार डाला। ग़ाज़ियों के इस समुदाय के नेता सईद मसऊद ने यहाँ के बाग़ी हिन्दुओं को बुरी

तरह पीसा, जिसके फलस्वरूप उसे 'मलिक-उस-सदत-ग़ाज़ी' की पदवी मिली। उसने इस 'ग़ाज़ी' उपाधि के उपलक्ष्य में ही 'ग़ाज़ीपुर' का शहर बसाया।

यह जनश्रुति कुछ साधार मालूम होती है। 'ग़ाज़ीपुर' नाम निश्चय ही किसी मुसलमान का बसाया या कम-से-कम उनके नाम पर रखा ज्ञात होता है। 'ग़ाज़ी' शब्द किसी पुराने संस्कृत शब्द का (जैसे गाधि का) बिगड़ा रूप नहीं हो सकता। बिगड़े रूप में 'ग़' और 'ज़' जैसी विदेशी ध्वनि आने की प्रवृत्ति प्रायः नहीं मिलती। यहाँ एक और बात की ओर भी ध्यान जाता है। ह्वेनसांग के अनुसार इसका नाम 'चेन चू' था जिसका अर्थ 'लड़ाई के स्वामी का प्रदेश' या 'लड़ाई करने वाले का प्रदेश' है। आश्चर्य के साथ कहना पड़ता है 'ग़ाज़ी' का भी शाब्दिक अर्थ यही है। 'ग़ाज़ी' शब्द अरबी का है। इसका सम्बन्ध अरबी शब्द 'ग़ज़्युन' से है जिसका अर्थ 'लड़ना' होता है। अरब में इसी आधार पर बड़े धर्मयुद्धों को 'ग़ज़वा' तथा छोटे को 'सरिया' कहते थे। इसका अर्थ तो यह होता है कि ह्वेनसांग के समय में भी इसका नाम 'ग़ाज़ीपुर' ही था। पर यह संभव नहीं लगता। उसका समय 5वीं सदी है और इस प्रकार की घटना घटने का समय एक हज़ार ईसवी के आस-पास। अतः यह अर्थैक्य आकस्मिक हो सकता है।

यों एक संभावना यह भी हो सकती है कि इसका पुराना नाम भी इसी प्रकार का कुछ रहा हो, और मुसलमानी काल में यह नया नाम दे दिया गया हो या उसी का मुसलमानीकरण कर दिया गया हो। आश्चर्य है कि इसे ग़ाज़ियाबाद (ग़ाज़ी+आबाद) नहीं कहा। वस्तुतः मुसलमानी काल में मिश्रित नाम भी काफ़ी रखे गए थे—बादशाहपुर, बेगमपुर, सुलतानपुर।

नामों के अध्ययन से तरह-तरह की सूचनाएँ मिलती हैं। 'वृन्दावन' कहता है कि कभी वहाँ जंगल था। ब्रज का महावन स्थान भी अपने बारे में यही संकेत करता है, यद्यपि अब वहाँ वन बिलकुल नहीं हैं। 'मिर्ज़ापुर' स्पष्ट ही मुसलमानी शासन काल का नाम है। इधर भारतीय संस्कृति के बहुत से तथाकथित प्रेमी उसे 'मीरजापुर' कहने और लिखने लगे हैं। उनका कहना है कि 'मीर' का अर्थ है 'समुद्र' और 'जा' का अर्थ 'उत्पन्न'। अर्थात् यह 'मिर्ज़ा' नहीं है, अपितु 'मीरजा' अर्थात् 'लक्ष्मी' है और इस तरह 'मीरजापुर' का अर्थ है 'लक्ष्मीपुर'। कहना न होगा कि यह शब्द इन प्रयोक्ताओं के मनोविज्ञान का अच्छा उद्घाटन कर रहा है। 'बनारस' का पुनः 'वाराणसी' या 'अलक्ज़ेंडर' का 'अलक्षेन्द्र' कर देने वालों का मनोविज्ञान भी इससे बहुत भिन्न नहीं है।

वाराणसी नाम स्पष्ट कहता है कि मूलतः यह नगर गंगा के 'असी' घाट तथा 'वरुणा' नदी के बीच में स्थित था।

अंत में दो शब्दों की कहानी देखकर हम यह प्रकरण समाप्त करेंगे।

सिनहा

हिन्दी का एक बहुत प्रचलित शब्द है 'सिनहा' जिसे कुछ कायस्थ अपने

नामों के साथ लगाते हैं। मूलतः यह शब्द संस्कृत भाषा का 'हिंस्र' है जिसका सम्बन्ध 'हिंस्' धातु से और जिसका अर्थ है 'ख़ूंख़ार' या 'हिंसा करने वाला'। आगे चलकर वर्णविपर्यय से यही शब्द हिंस्र 'सिंह' बन गया ('र'का लोप) जो शेर का संस्कृत पर्याय है। सिंह अपनी वीरता के लिए प्रसिद्ध है, अतः प्रारंभ में क्षत्रियों ने प्रतीकस्वरूप इसका प्रयोग अपने नामों के साथ आरम्भ किया, और धीरे-धीरे यह क्षत्रियों या राजाओं के नाम के साथ प्रयुक्त होने लगा। साहित्य में प्राप्त इसका प्राचीनतम प्रयोग अमरसिंह के अमरकोश में 'शाक्यसिंह' रूप में मिलता है, जिसका अर्थ यह हुआ कि पहली ईसवी के आस-पास यह प्रयोग में आ चुका था। आगे चलकर यह केवल क्षत्रियों तक सीमित नहीं रहा; कोई भी राजा, जाट, गूजर, अहीर आदि तथा यों भी अपने को वीर समझने वाले इसका प्रयोग करने लगे। राजस्थान के बहुत से ब्राह्मण अपने नाम के साथ 'सिंह' लगाते हैं। अपने इसी प्रचार में यह कायस्थों के नामों के साथ भी प्रयुक्त होने लगा। अंग्रेज़ी भाषा के प्रचार के बाद कुछ 'सिंह' लोगों ने अपने 'सिंह' की वर्तनी अंग्रेज़ी में SINHA की, जिसे इस शब्द से अपरिचित अंग्रेज़ों और अन्य लोगों ने 'सिनहा' पढ़ा। प्रारम्भ में ऐसा कदाचित् अंग्रेजी से कायस्थों के नाम के साथ हुआ, अतः वे ही 'सिनहा' कहलाए। आश्चर्य है कि 'हिंस्र' शब्द की यात्रा की परिसमाप्ति 'सिनहा' में हुई है।

हिन्दी

'हिन्दी', 'हिन्दू', 'हिन्दुस्तान' मूलतः 'हिन्दु' शब्द से सम्बन्धित हैं। प्रश्न यह है कि इस 'हिन्दु' का मूल क्या है?

हमारे परम्परावादी संस्कृत-पण्डित मूल शब्द 'हिन्दु' मानते हैं। इसकी व्युत्पत्ति कई प्रकार से दी जाती है। कुछ लोग 'हिन्' (=नष्ट करना)+'दु' (=दुष्ट) से 'हिन्दु' मानते हैं। अर्थात् 'हिन्दु' का अर्थ है 'दुष्टों का विनाश करने वाला' (हिनस्ति दुष्टान्)। 'शब्दकल्पद्रुम' (खण्ड 5, 1961) में 'हीन +दुष्+डु' से 'हिन्दु' सिद्ध किया गया है। इस दृष्टि से 'हिन्दु' का अर्थ हुआ 'हीनों या ओछों को दूषित करने वाला' हीनं दूषयति)। 'मेरुतंत्र' के 23वें प्रकाश में शंकर, पार्वती से कहते हैं :—

हिन्दुधर्मप्रलोप्तारो जायन्ते चक्रवर्तिनः।
हीनञ्च दूषात्येव हिन्दुरित्युच्यते प्रिये ।।

अर्थात् 'हीनों को दूषित करने वाला' 'हिन्दु' है। यहाँ 'हीन' का अर्थ कुछ लोग 'म्लेच्छ' आदि विदेशी मानते हैं। 'मेरुतंत्र' को प्रायः परम्परावादी पण्डित प्राचीन ग्रन्थ समझते हैं, किन्तु वास्तविक स्थिति यह नहीं है। इसमें 'फिरंगी' शब्द का प्रयोग मिलता है जिससे स्पष्ट है कि यह बहुत बाद का ग्रन्थ है और यूरोपीयों के भारत में आने पर लिखा गया है।

'हिन्दु' की एक तीसरी व्युत्पत्ति 'हीन—दु' [हीनों (म्लेच्छों) का दलन या

दण्डित करने वाला] से भी मानी गई है। 'हिन्दु' की एक चौथी व्युत्पत्ति है— 'यो हिंसाया: दूयते, सः हिन्दू' अर्थात् हिंसा को देखकर जो दुखी होते हैं, वे हिन्दू हैं।

वस्तुतः उपर्युक्त चारों व्युत्पत्तियाँ कल्पनाप्रसूत हैं। 'हिन्दु' शब्द 'ह' के साथ संस्कृत शब्द नहीं है। उल्लेख्य है कि किसी भी प्राचीन ग्रन्थ में इसका प्रयोग नहीं हुआ है। मुझे इसका प्राचीनतम प्रयोग सातवीं सदी के अन्तिम चरण के ग्रन्थ 'निशीथ चूर्णि' में मिला है।

आधुनिक विद्वानों द्वारा स्वीकृत एवं प्रायः सर्वमान्य मत यह है कि 'हिन्दु' शब्द फ़ारसी भाषा का है। यों फ़ारसी का यह अपना शब्द नहीं है अपितु संस्कृत शब्द 'सिधु' का फ़ारसी रूपान्तरण है। प्रश्न उठता है कि 'सिन्धु' की व्युत्पत्ति क्या है? संस्कृत के अधिकांश वैयाकरण इसका सम्बन्ध 'स्यन्द्' धातु से मानते हैं, जिसका अर्थ है पसीजना, द्रवना, स्रवित होना। इसी में, 'य्' के सम्प्रसारण, 'दस्य धः', तथा 'उद्' प्रत्यय के योग से 'सिन्धु' शब्द बना है, जिसका अर्थ नदी-विशेष, तथा समुद्र आदि है। हाथी के गण्ड-स्थल से मद बहने के कारण उसे भी 'सिन्धु' या 'सिन्धुर' आदि कहा गया है। इस प्रकार इसका मूल अर्थ 'बहना' है।

'सिन्धु' की एक दूसरी व्युत्पत्ति संस्कृत की 'इन्द्' धातु से मानी गई है। 'इन्द्' का अर्थ होता है 'ऐश्वर्य होना'। संस्कृत का 'इन्द्र' शब्द भी इसी से सम्बद्ध है। ग्रासमान, रॉथ आदि विद्वान 'इन्द्' को मूलतः 'इध्' या 'इन्ध्' मानते हैं, यद्यपि बेनफ़े तथा कुछ और विद्वान् 'इन्द्र' को भी मूलतः 'स्यन्द्' से ही निष्पन्न मानते हैं। 'इन्द्' या 'स्यन्द्' से ही स्लाव शब्द 'ज़ेद्र्', सं० 'इन्द्र' अवेस्ता 'ज़ेन्दाह' (ज़िन्दा, ज़िन्दगी) आदि सम्बन्धित हैं। 'सिन्धु' शब्द को 'इन्द्' या 'इन्ध्' से सम्बद्ध मानने वाले उस नदी में ऐश्वर्य या उसकी जीवन-शक्ति पर बल देते हैं। मोनियर विलियम्स 'सिन्धु' शब्द को 'सिध्' (=जाना) धातु से निकला होने का अनुमान लगाते हैं।

प्रस्तुत पंक्तियों का लेखक उपर्युक्त मतों से सहमत नहीं है। ये सब पुरानी धातुएँ तो ठीक हैं, किन्तु मेरी निजी राय यह है कि इस नदी-विशेष का 'सिन्धु' नाम, मूलतः संस्कृत का शब्द नहीं है। जब आर्य भारत में आये उस समय पश्चिमोत्तर भारत में आर्येतर लोग रहते थे, और ये लोग पर्याप्त सुसंस्कृत थे। ऐसी स्थिति में यह स्वाभाविक है कि सिन्धु नदी का कोई नाम इन आर्येतर लोगों द्वारा प्रयुक्त होता रहा होगा। प्रायः ऐसा होता भी नहीं कि कोई विदेशी जाति किसी देश में आये और वहाँ के सारे के सारे नामों को बदल डाले; विशेषतः ऐसी स्थिति में जब कि वहाँ के रहने वाले असभ्य न होकर सुसंकृत हों। हाँ, नवागन्तुक ऐसी नदियों या ऐसे पहाड़ों आदि के नाम तो बदल सकते या रख लेते हैं, जिनको अधिक लोग नहीं जानते; किन्तु पश्चिमोत्तर भारत की सबसे बड़ी नदी के सम्बन्ध में, जिसकी घाटी में इतनी बड़ी संस्कृति थी, उनको ऐसा करना पड़ा

हो या उन्होंने ऐसा किया हो, ऐसा मानने का कोई करण नहीं दीखता[1]। ऐसी स्थिति में कम-से-कम इतना तो कहा ही जा सकता है कि यह शब्द मूलतः द्रविड़ भाषा का है। यों, यह भी असम्भव नहीं कि द्रविड़ लोग जब भारत में आये हों तो उन्हें भो यह नाम आस्ट्रिक आदि किसी अन्य पुरानी जाति से मिला हो। साथ ही, यह भी सम्भव है कि आर्यों के आने के समय इस नदी का जो नाम प्रचलित रहा हो, आर्यों ने 'सिन्धु' रूप में उसका संस्कृत रूप बना लिया हो, क्योंकि शब्दों के संस्कृतीकरण की परम्परा आर्यों में प्राचीनकाल से मिलती है। उन्होंने अनेक देशी-विदेशी नामों ('एलेग्ज़ेंडर' के लिए कौटिल्य के अर्थशास्त्र में 'अलकंद' आया है) एवं शब्दों के साथ ऐसा किया है। 'सिड्' 'सिद्', 'सित्' या 'चिन्द्' आदि रूपों में, द्रविड़-परिवार की कई भाषाओं एवं बोलियों में एक अत्यन्त प्राचीन धातु मिलती है, जिसका प्रयोग 'छिड़कने', 'सींचने' या 'बहने' आदि के लिए होता है। मेरा अनुमान है कि द्रविड़ों को यह शब्द यदि किसी पुरानी जाति से नहीं मिला था, तो इसी धातु के आधार पर प्राचीन द्रविड़ों ने इस बड़ी नदी (सिन्धु) को 'सिद्' या 'सित्' नाम दिया। यह नाम इसमें बहते हुए बहुत अधिक पानी के कारण भी हो सकता है, या इस कारण भी हो सकता है कि इनकी सभ्यता का उस काल में मूल केन्द्र (सिन्धु की घाटी) जो था, इसी से सींची जाने वाली भूमि पर बसा था। नदी ही नहीं, मेरे विचार से तो, नदी के आधार पर आसपास के प्रदेश का भी तात्कालिक नाम कदाचित् 'सिद्' या सित्' ही था। सन् 1928-29 में पश्चिमोत्तर भारत में प्राप्त कुछ अभिलेखों से यह पता चलता है कि हड़प्पा-मोहनजोदड़ो के लोगों के स्थान का नाम उस काल में 'सिद्' या 'सित्' था[2]। इससे मेरे उक्त अनुमान की पुष्टि होती है। इसका अर्थ यह हुआ कि संस्कृत में इस नदी या प्रदेश के लिए 'सिन्धु' शब्द वस्तुतः संस्कृत शब्द न होकर प्राचीन द्रविड़ शब्द 'सिद्' या 'सित्' का ही संस्कृतीकृत रूप है, जैसा कि ऊपर संकेत किया गया है। ज्ञान की वर्तमान परिधि में 'सिन्धु' शब्द को और पीछे तक ले जाना सम्भव नहीं। किन्तु यह असम्भव नहीं कि भविष्य में और प्रमाणों के मिलने पर इसे आस्ट्रिक या और किसी प्राचीन भाषा का शब्द सिद्ध किया जा सके।

द्रविड़ 'सिद्' या 'सित्' के आधार पर संस्कृतीकरण के द्वारा बने इस 'सिन्धु[3]

1. 'गंगा' को भी संस्कृत के पण्डित संस्कृत शब्द मानते हैं तथा 'गम्यते ब्रह्मपदमनया गच्छतीति वा, गम्+गन+टाप, रूप में उसकी व्युत्पत्ति देते हैं। किन्तु अब यह प्रायः स्वीकृत तथ्य है कि यह शब्द मूलतः संस्कृत का नहीं है और भारत के प्राचीन निवासियों से ही यह आर्यों को मिला है।
2. 'जरनल आफ़ ओरियण्टल रिसर्च', मद्रास, अंक 11, पृष्ठ 246
3. प्राचीन चीनी साहित्य मे 'शिन्तु' (परवर्ती साहित्य में 'इन्तु') को देवों का देश कहा गया है, यह भी 'सिन्धु' ही है। भारत में, भारत के लिए प्राचीनतम नाम मातृभूमि (अथर्ववेद) है। भारतवर्ष (महाभारत), भारत (विष्णुपुराण), भरत खण्ड, जम्बूद्वीप (बौद्ध ग्रन्थ), तथा कुमारीद्वीप (परवर्ती पुराण) बाद में मिलते हैं। 'हिन्द' पर आधारित

शब्द का भारतीय साहित्य में प्रथम प्रयोग 'ऋग्वेद' में मिलता है। 'ऋग्वेद' में इसका प्रयोग सामान्य रूप से नदी (भात्वक्षसो अत्यक्तुर्न सिन्धवोऽग्ने 1.143.3. आदि), नदी विशेष (10.75) तथा कदाचित् नदी के आस-पास के प्रदेश (2.8.96) के लिए हुआ है। यों जल-देवता आदि अन्य अर्थ भी हैं जो मूल अर्थ से बहुत दूर नहीं हैं। प्रदेश विशेष के अर्थ में बाद में यह 'महाभारत' तथा परवर्ती काव्य-ग्रन्थों में भी आता है। 'ऋग्वेद' में 'सप्तसिन्धवः' (सात नदियाँ) तथा 'सप्तसिन्धुषु' आदि भी मिलते हैं।

आर्यों के भारत-आगमन के पूर्व भी भारत से ईरान का सांस्कृतिक तथा व्यापारिक सम्बन्ध रहा है, जैसा कि ज्योतिष, पौराणिक कथाओं तथा अन्य क्षेत्रों में आपसी प्रभावों से स्पष्ट होता है। आर्यों के भारत-आगमन के बाद यह सम्पर्क सगोत्रीय होने के कारण कदाचित् और अधिक बढ़ गया। 500 ई० पू० के आस-पास दारा प्रथम के काल में सिन्धु नदी के आसपास का प्रदेश ईरानी लोगों के हाथ में था। इन्हीं सम्पर्कों के साथ भारत से ईरान तथा ईरान से भारत में याजक आया-जाया करते थे। शकद्वीप के मग ब्राह्मण (जो भारत में शाकलद्वीपी ब्राह्मण कहलाए) फ़ारस के पूर्वोत्तर भाग से ही आकर यहाँ बसे। कदाचित् याजकों के साथ हमारे 'सिन्धु' और 'सप्तसिन्धवः' आदि शब्द भी ईरान पहुँचे। हमारी प्राचीन 'स' ध्वनि ईरान की अवेस्ता आदि में 'ह' उच्चारित होती रही है; जैसे सं० 'सप्त', अवेस्ता 'हफ़्त'; सं० 'असुर', अवेस्ता 'अहुर' आदि। इसी कारण ये 'सिन्धु' और 'सप्तसिन्धवः' आदि शब्द अवेस्ता में 'हिन्दु' (अवेस्ता में महाप्राण ध्वनियाँ नहीं होतीं, अतः 'ध' का 'द' हो गया है) और 'हफ़्तहिन्दव' आदि रूप में मिलते हैं। प्राचीन ईरानी साहित्य में 'हिन्दु' शब्द नदी के अर्थ में तो प्रयुक्त हुआ ही है, साथ ही सिन्धु नदी के पास के प्रदेश के अर्थ में भी प्रयुक्त हुआ है। उस समय ईरान वालों के पास भारत की भूमि के लिए केवल वही एक शब्द था, अतः धीरे-धीरे ईरानी, भारत के जितने भी भाग से परिचित होते गए, उसे वे इसी नाम से अभिहित करते गये। इस प्रकार किसी अन्य शब्द के अभाव में इस शब्द का अर्थ-विस्तार होता गया और 'सिन्धु नदी के पास की भूमि का वाचक' शब्द धीरे-धीरे पूरे भारत का वाचक हो गया। ईरानी सम्राट दारा (प्राचीन रूप दारयवहु, सं० धारयद्वसु) के अभिलेखों में 'भारत' के लिए 'हिन्दु' आया है। सूसा के राजमहल के अभिलेख में आता है : **पिरुशह्या इदा कत हचा कुश उता हिन्दौव उता हचा हरउतिया अयरिय्**; अर्थात् राजमहल के अभिलेख में हाथीदाँत जिस पर यहाँ काम किया गया, कुश (सम्भवतः अबीसीनिया), हिन्दु (भारत) और हरह्वती (सं० सरस्वती, कदाचित् सीमा प्रांत) से लाया गया। अवेस्ता ग्रन्थ 'वेन्दीदाद' (1.18) में हप्त-हिन्दु (सप्त-सिन्धु) को

नाम भारत में प्रथम बार कदाचित् जैनग्रन्थ 'निशीथ चूर्णि' में 'एहि हिन्दुगदेसं बच्चाग्रो' रूप में (7 वीं सदी अन्तिम चरण) में आता है।

सोलह पवित्र स्थानों में एक माना गया है। 'यस्न' (57.29) में भी 'हिन्दु' शब्द भारत के लिए प्रयुक्त हुआ है । प्राचीन ईरानी साहित्य में 'हिन्दुश' (यूनानी शब्द Indos यही है), हिन्दु, हिन्दुवअ (सं० सिन्धुव्य=सिन्धुवासी) आदि अनेक अन्य प्रयोग भी मिलते हैं । 'हिन्दु' शब्द में धीरे-धीरे अर्थ सम्बन्धी विकास ('सिन्ध प्रदेश' से बढ़कर 'भारत') तो हुआ ही, साथ ही इसमें ध्वनिक विकास भी हुआ और इसमें 'हि' पर बलाघात होने के कारण अन्त्य 'उ' लुप्त हो गया, और इस प्रकार यह शब्द 'हिन्दु' से 'हिन्द' हो गया। आगे चलकर 'हिन्द' शब्द में ईरानी के विशेषणार्थक प्रत्यय 'ईक' जुड़ने से 'हिन्दीक'[1] शब्द बना जिसका अर्थ था 'हिन्द का' । इसी 'हिन्दीक' का विकास ('क' के लुप्त हो जाने के कारण) 'हिन्दी' रूप में हुआ। इस प्रकार 'हिन्दी' का मूल अर्थ है 'हिन्द का' या 'भारतीय' । इस अर्थ में 'हिन्दी' शब्द का प्रयोग मध्यकालीन फ़ारसी तथा अरबी आदि में अनेक स्थलों पर हुआ है । उदाहरणार्थ अरबी में 'तमर' का अर्थ है 'सूखा खजूर' । इससे कुछ मिलते-जुलते होने के कारण उन लोगों ने 'इमली' को (जिसका परिचय उन्हें भारत से ही प्राप्त हुआ था) 'तमर-हिन्दी' या 'तमर-ए-हिन्द'[2] कहा । विशेषण के रूप में प्रयुक्त होने के अतिरिक्त 'हिन्दी' शब्द संज्ञा रूप में भी बहुत सी भाषाओं में प्रयुक्त होता रहा है, उदाहरणार्थ फ़ारसी तथा अरबी में 'हिन्दी' शब्द का प्रयोग विशेष प्रकार की तलवार के लिए (जो भारतीय इस्पात की बनी होती थी या भारत से जाती थी) तथा तलवार के वार के लिए भी होता रहा है । मिस्र में मलमल (जो भारत से जाती थी) के लिए 'हिन्दी' शब्द चलता रहा है । भारतीयों के काला होने के कारण फ़ारसी में 'हिन्दू' का अर्थ 'काला' भी है । कभी भारतीयों से उनकी अनबन भी थी, इसी कारण फ़ारसी में 'हिन्दू' के अन्य अर्थ 'डाकू' भी हैं।

भाषा के लिए 'हिन्दी' शब्द के प्रयोग का इतिहास भी फ़ारस और अरब से ही आरम्भ होता है। छठी सदी ईसवी के कुछ पूर्व से ही ईरान में 'ज़बाने-हिन्दी' का प्रयोग भारत की भाषाओं के लिए होता रहा है । इस दृष्टि से कुछ उदाहरण उल्लेख्य हैं : (1) ईरान के प्रसिद्ध बादशाह नौशेरवाँ (531-579 ई०) ने अपने दरबार के प्रमुख विद्वान् हकीम बज़रोया को 'पञ्चतन्त्र' का अनुवाद कर लाने के लिए भारत भेजा था । बज़रोया ने यह काम पूरा किया। 'कर्कटक और दमनक' के आधार पर उसने इस अनुवाद का नाम 'कलीला व दिमना' रखा। इसकी भूमिका नौशेरवाँ के मन्त्री बुज़र्च मिहर ने लिखी । भूमिका में अन्य बातों के अतिरिक्त यह भी कहा गया है कि यह अनुवाद 'ज़बाने हिन्दी' से किया गया है । यहाँ स्पष्ट ही 'ज़बाने हिन्दी' का प्रयोग 'भारतीय भाषा' या 'संस्कृत' के

1. यही 'हिन्दीक' शब्द अरबी से होता, ग्रीक में 'इन्दिके', 'इन्दिका', लैटिन में 'इन्दिया' तथा अंग्रेज़ी आदि में 'इण्डिया' हुआ। चीनी साहित्य में कभी-कभार प्रयुक्त 'इन्तुको' भी यही है।
2. यही शब्द अंग्रेज़ी में टैमरिण्ड (Tamrind=इमली) है ।

लिए है । (2) इस पहलवी अनुवाद से इस पुस्तक के अरबी गद्य तथा पद्य में कई नामों से कई अनुवाद हुए । 9वीं सदी तक के प्रायः सभी अनुवादों में मूल पुस्तक को 'ज़बाने हिन्दी' का कहा गया है । उदाहरणार्थ 700 ई० के आस-पास में किए गए अब्दुल्ला इब्नुल मुक़फ़्फ़ा के अनुवाद में, इब्ने मक़ना के अनुवाद में, तथा 'जाविदाने ख़िरद' नाम से 813 ई० में इब्ने सुहैल द्वारा किए गए अनुवाद में । (3) 'महाभारत' के भी कुछ भागों का रूपान्तर पहलवी भाषा में 7वीं सदी में किया गया था । उसमें भी मूल भाषा को 'ज़बाने हिन्दी' कहा गया।(4)1227 ई० में मिनहाजुस्सिराज भारत आया था । उसने अपनी पुस्तक 'तबक़ाते-नासिरी' में लिखा है कि 'ज़बाने हिन्दी' में 'बिहार' का अर्थ 'मदरसा' है । स्पष्ट ही यहाँ 'ज़बाने हिन्दी' का प्रयोग संस्कृत के लिए न होकर या तो सामान्य भारतीय भाषा के अर्थ में है, या फिर भारत के 'मध्य भाग की भाषा'(कदाचित् 'हिन्दुवी' या 'हिन्दी') के लिए । (5) 1333 ई० में इब्ने बतूता अपने 'रेहला इब्ने बतूता' में तारन नगर के सम्बन्ध में लिखता है—'किताबत अला बाज़ अलजदरात बिल हिन्दी' अर्थात् कुछ दीवारों पर हिन्दी में लिखा था । भाषा के अर्थ में स्वतन्त्रतः 'हिन्दी' शब्द का विदेशों में यह कदाचित् प्राचीनतम प्रयोग है, यद्यपि यह नाम आज की हिन्दी के लिए न होकर संस्कृत के लिए है । (6) तैमूर लंग के पोते के काल में (1424 ई०) शरफ़ुद्दीन यज़्दी ने तैमूर और उसके परिवार के सम्बन्ध में 'ज़फ़रनामा' नामक ग्रन्थ लिखा । इसमें एक स्थान पर आता है कि 'राव' हिन्दी शब्द है। विदेशों में 'हिन्दी भाषा' के लिए 'हिन्दी' शब्द का सम्भवतः यह प्रथम प्रयोग है ।

भारतवर्ष में भी भाषा के अर्थ में 'हिन्दी' शब्द के प्रयोग का प्रारम्भ मुसलमानों द्वारा ही किया गया। भारतीय परम्परा में 'प्रचलित भाषा' के लिए प्राचीन काल से ही 'भाषा' शब्द का प्रयोग होता आया है । इसका प्रयोग क्रम से संस्कृत, प्राकृत तथा बाद में हिन्दी आदि के लिए हुआ । यहाँ कतिपय उदाहरण द्रष्टव्य हैं—'सो देख कै बनमाली शिष्यार्थ **भाषा** टीका कीन्ह' (1438 ई० में लिखित **भास्वती** की भाषा-टीका), 'संस्कृत कबिरा कूप जल **भाषा** बहता नीर' (कबीर), 'आदि अंत जसि कथ्था अहै, लिखि **भाषा** चौपाई कहै' (जायसी), '**भाषा** भनति मोर मति थोरी', '**भाषा** निबद्ध मति मंजुल' (तुलसीदास), '**भाषा** बोल न जानहीं जेहि के कुल के दास' (केशवदास) । संस्कृत आदि के ग्रन्थों की हिन्दी टीकाओं में भाषा-टीका रूप में भी यह शब्द उसी अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। रामप्रसाद निरञ्जनी कृत 'भाषा योगवासिष्ठ' (1741 ई०), 19 फरवरी 1802 को फ़ोर्ट विलियम कॉलिज द्वारा 'भाखा मुंशी' की माँग की स्वीकृति तथा लल्लू लाल को उक्त कॉलिज के काग़ज़ों में 'भाषा मुंशी' कहे जाने से पता चलता है कि हिन्दी के लिए 'भाषा' शब्द का प्रयोग आधुनिक काल तक चलता रहा है । संस्कृत के टीका-ग्रन्थों में तो यह अब भी चल रहा है । पुरानी पीढ़ी के पण्डित 'हिन्दी-टीका' न कहकर 'भाषा-टीका' ही कहते हैं ।

मुसलमान यहाँ आये तो यहाँ की भाषा को 'ज़बाने हिन्दी' कहने लगे। उनका विशेष सम्बन्ध मध्यदेश से था, अतः धीरे-धीरे मध्यदेशीय बोली के लिए उन्होंने 'ज़बाने हिन्दी' या 'हिन्दी ज़बान' या 'हिन्दी' नाम का प्रयोग किया। आरम्भ में इस नाम के अन्तर्गत पंजाबी (कम-से-कम पूर्वी) भी कदाचित् आती थी।

'हिन्दी' नाम का भारत में प्रथम प्रयोग कब और किसने किया, यह अभी तक अनुसन्धान का विषय है। प्रायः यही कहा जाना है कि अमीर ख़ुसरो की रचना में सबसे पहले 'हिन्दी' शब्द हिन्दी भाषा के लिए मिलता है। वस्तुतः भाषा के अर्थ में ख़ुसरो में 'हिन्दी' शब्द का प्रयोग संदिग्ध है। हाँ उन्होंने हिन्दी शब्द का प्रयोग 'भारतीय मुसलमानों' या 'भारतीय' (इलिअट 3. 8. 539) के लिए किया है। यहाँ बहुत विस्तार से इस विषय को लेना सम्भव नहीं है, किंतु संक्षेप में कुछ बातें कही जा सकती हैं। इस सम्बन्ध में सबसे बड़ा तर्क तो यह दिया जाता है कि ख़ुसरो लिखित 'ख़ालिक़बारी' में 'हिन्दी' शब्द कई बार आया है। किंतु कुछ के अनुसार 'ख़ालिक़बारी' ख़ुसरो की रचना नहीं है, वह ख़ुसरो के बहुत बाद के किसी 'ख़ुसरो शाह' की रचना है। इसके लिए कई तर्क दिये जा सकते हैं, जिनमें से प्रमुख ये हैं : (क) अमीर ख़ुसरो जैसे विद्वान की रचना यदि 'ख़ालिक़बारी' होती तो वह पर्याप्त व्यवस्थित होती, जबकि 'ख़ालिक़बारी' बहुत ही अव्यवस्थित है। कभी फ़ारसी शब्दों के समानार्थी हिन्दी शब्दादि दिये गये हैं, तो कभी वाक्यों के समानार्थी वाक्य। भाषा सीखने की दृष्टि से भी इन वाक्यों या शब्दों में कोई एकरूपता नहीं है। जो शब्द लिये गये हैं, उनमें सब ऐसे नहीं हैं जिनको भाषा के प्रारम्भिक ज्ञान के लिए आवश्यक समझा जाय। साथ ही, प्रारम्भिक ज्ञान के लिए बहुत से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण शब्द छूट भी गए हैं। जो वाक्य दिये गये हैं, वे भी तुक या छन्द बैठाने की दृष्टि से लिये गये ज्ञात होते हैं। भाषा के प्रारम्भिक ज्ञान की दृष्टि से उनका कोई विशेष मूल्य नहीं है। कारक, काल-रचना आदि की दृष्टि से भी वे महत्त्व नहीं रखते। (ख) छन्दों का बिना किसी योजना के परिवर्तन और कहीं-कहीं उनमें अप्रवाह या दोष भी 'ख़ालिक़बारी' को कविवर ख़ुसरो की रचना मानने में व्याघात उपस्थित करते हैं। (ग) बीच में आता है—'तुर्की जानी ना'। तुर्की का विद्वान् ख़ुसरो यह लिखे कि उसे अमुक शब्द की तुर्की उसे नहीं आती, यह बात कल्पनातीत है। यों सभी शब्दों के लिए तुर्की शब्द दिये भी नहीं गये हैं। अतः ऐसा कथन निरर्थक-सा लगता है। यह बात भी 'ख़ालिक़बारी' को अमीर ख़ुसरो से सम्बद्ध करने में अड़चन डालती है। (घ) शब्दों की ग़लतियाँ भी हैं। हिन्दी 'काना' के लिए फ़ारसी 'कोर' दिया गया है, जबकि 'कोर' का अर्थ 'अन्धा' होता है। 'तिदर्व', 'कुबक' और 'हंस' को एक माना है, जबकि तीनों अलग-अलग हैं। 'तीतर' के लिए एक स्थान पर 'दुर्राज' तथा अन्यत्र 'लगलग' दिया गया है। 'ख़ालिक़बारी' से इस तरह की अशुद्धियों के अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं। ऐसी भद्दी ग़लतियाँ ख़ुसरो नहीं कर सकते और न ऐसी कम योग्यता के आदमी को, जैसा कि 'ख़ालिक़बारी' का लेखक लगता है, ग़यासुद्दीन तुग़लक

अपने लड़कों को हिन्दी पढ़ाने के लिए ऐसा कोश बनाने का आदेश ही दे सकते थे। (कहा जाता है कि ग़यासुद्दीन तुग़लक के कहने से अमीर ख़ुसरो ने उनके लड़कों को हिन्दी पढ़ाने के लिए इसे बनाया था।) उपर्युक्त बातों को देखते हुए यह कहना उचित नहीं लगता कि 'ख़ालिक़बारी' ख़ुसरो की रचना है। ऐसी स्थिति में 'हिंदी' शब्द का ख़ुसरो द्वारा प्रयोग 'ख़ालिक़बारी' के आधार पर नहीं माना जा सकता। दूसरे प्रमाण के रूप में ख़ुसरो का एक वाक्य उद्धृत किया जाता है जिसमें उन्होंने कहा है कि मैंने फ़ारसी के साथ-साथ हिन्दी में भी चन्द नज़्में कही हैं ('जुज़्वे चन्द नज़्मे हिन्दी नीज़ नज़्रे दोस्तां करदा शुदा अस्त') वस्तुतः यह वाक्य उनके किसी भी प्रामाणिक संस्करण में मुझे नहीं मिला। 'देवल देवी ख़िज़्र ख़ाँ' मसनवी से कुछ लोगों ने उद्धरण दिये हैं, किन्तु वहाँ भी मूलतः 'हिन्दुवी' का प्रयोग है न कि 'हिन्दी' का। इसके अतिरिक्त ख़ुसरो द्वारा भाषा के अर्थ में 'हिन्दी' शब्द के प्रयोग का कोई अन्य प्रमाण देखने में नहीं आया। यों भाषा के अर्थ में 'हिन्दुवी' या 'हिन्दुई' शब्द का प्रयोग ख़ुसरो में कई स्थलों पर मिलता है। एक स्थान पर वे कहते हैं—'तुर्क हिन्दुस्तानियम मन हिन्दवी गोयम जवाब' अर्थात् मैं 'हिंदुस्तानी तुर्क हूँ, हिन्दुवी में जवाब देता हूँ।' उनकी मसनवियों में भी यह शब्द एकाधिक स्थलों पर आया है। इस प्रकार ख़ुसरो के द्वारा 'हिन्दी' नाम के प्रयोग की बात बहुत प्रामाणिक नहीं ज्ञात होती। हाँ, यह अवश्य है कि उनके कुछ ही बाद इस शब्द का भाषा के अर्थ में प्रयोग हो गया था।

यह प्रायः कहा जाता है कि 'हिन्दी' और 'हिन्दवी' शब्दों का एक ही अर्थ था और ये एक ही अर्थ में प्रयुक्त होते थे। किन्तु मुझे यह बात ठीक नहीं ज्ञात होती। एक ही भाषा के लिए बिना किसी विशेष कारण के दो नामों का साथ-साथ प्रयुक्त होना और बिलकुल एक ही अर्थ में चलना कुछ जँचता नहीं। मुझे ऐसा लगता है कि प्रारम्भ में ये दोनों शब्द भिन्नार्थी थे। ऊपर कहा गया है कि ख़ुसरो ने 'हिन्दी' शब्द का प्रयोग भारतीय मुसलमानों के लिए किया है और 'हिन्दवी' शब्द का प्रयोग 'मध्यदेशीय भाषा' के लिए। यह 'हिन्दवी' शब्द वस्तुतः 'हिंदुवी' या 'हिन्दुई' है। हिन्दू + ई = अर्थात् 'हिन्दुओं की भाषा'। 'हिन्दवी' शब्द के प्रयोग के कुछ दिन बाद 'हिन्दी' (अर्थात् भारतीय मुसलमानों) की भाषा के लिए कदाचित् 'हिन्दी' शब्द चल पड़ा। 'हिन्दुवी' या 'हिन्दवी' तो वह भाषा थी जो शौरसेनी अपभ्रंश से विकसित हुई थी और मध्यप्रदेश में सहज रूप से प्रयुक्त हो रही थी। 'हिन्दी' अर्थात् 'भारत के मुसलमानों' ने भी इसे अपनाया, किन्तु स्वभावतः धार्मिक तथा सांस्कृतिक (खान-पान, रहन-सहन, कपड़ा-लत्ता) कारणों से उनकी भाषा में अरबी, फ़ारसी, तुर्की के शब्द अधिक थे। इसी भाषा के लिए आरम्भ में कदाचित् 'हिन्दी' शब्द चला। इसी प्रकार 'हिन्दवी' शब्द पुराना है और 'हिन्दी' अपेक्षाकृत बाद का। साथ ही मूलतः दोनों में कुछ अन्तर भी है। शुद्ध हिन्दी में लिखने वाले पुराने कवियों तथा लेखकों ने सम्भवतः इसी कारण अपनी भाषा को प्रायः 'हिन्दवी' ही कहा है—'तुरकी अरबी हिन्दवी भाषा जेति आहि। जामें

मारग प्रेम का, सबे सराहैं ताहि' ।। (जायसी) । श्री परकासदास (1666 ई०) के अम्बेर के दीवान को लिखे गये पत्र, तुलसी के फ़ारसी पञ्चनामे, जटमल की 'गोरा-बादल की कथा' तथा इंशा अल्ला ख़ाँ की 'रानी केतकी की कहानी' में भी 'हिन्दवी' शब्द ही मिलता है, 'हिन्दी' नहीं ।

किन्तु ऐसा लगता है कि यह भेद अधिक दिनों तक चला नहीं। अरबी-फ़ारसी-तुर्की के बहुत से आम-फ़हम शब्द 'हिन्दवी' में आ गये, और दूसरी ओर हिन्दुओं एवं भारतीय वातावरण के प्रभाव से पर्याप्त भारतीय शब्द मुसलमानों की भाषा में भी गृहीत हो गये तथा हिन्दी-हिन्दवी दोनों ही शब्द प्रायः (किन्तु पूर्णतः नहीं) समानार्थी हो गये । यों कुछ विशेष प्रयोगों में इन शब्दों के मूल अर्थ भी लगभग 18वीं सदी उत्तरार्द्ध तक या उसके भी बाद तक चलते रहे । हातिम (18वीं सदी उत्तरार्द्ध) ने 'दीवानेज़ादे' के दीबाचे में लिखा है—'ज़बान हर दयार ता बहिन्दवी, कि आँरा भाका गोयन्द···।' इससे स्पष्ट है कि हिन्दवी और भाषा प्रायः एक थी। उसी के कुछ दिन बाद 'तज़किरह मख़जन उल्ग़रायब' में लिखा मिलता है—'दर ज़बाने हिन्दी कि मुराद उर्दू अस्त' अर्थात् हिन्दी में जिससे मतलब उर्दू है । किन्तु जैसा कि संकेत किया गया है तथा आगे भी कुछ उदाहरणों से स्पष्ट होगा, इस प्रकार का अन्तर सर्वत्र नहीं किया गया है। श्री चन्द्रबली पाण्डेय ने यह दिखाने का (उर्दू का रहस्य, पृष्ठ 40-48) प्रयास किया है कि 'हिन्दवी' हिन्दुओं की भाषा नहीं थी । इसी आधार पर डॉ० उदयनारायण तिवारी (हिन्दी भाषा का उद्गम और विकास, प्रथम संस्करण; पृष्ठ 184) ने भी कदाचित् इसे स्वीकार कर लिया है, किन्तु पाण्डे जी के तर्क वस्तुतः उनके मत को प्रमाणित करने में समर्थ नहीं दीखते ।

'हिन्दी' शब्द का प्रयोग, जब भी और जिसके भी द्वारा हुआ हो, इसके अविच्छिन्न प्रयोग की प्राचीन परम्परा 'दक्खिनी हिन्दी' के कवियों एवं गद्यकारों में ही मिलती है। उदाहरणार्थ : (1) शाह मीराजी (1475 ई०)—'यों देखत हिन्दी बोल', (2) शाह बुर्हानुद्दीन (1582 ई०)—'ऐब न राखें हिन्दी बोल' ('इर्शादनामा' में), (3) मुल्ला वजही (1635 ई०)—'हिन्दोस्तान में हिन्दी ज़बान सों' ('सबरस' की भूमिका में), (4) जुनूनी (1690 ई०)—'मैं इसको दर हिन्दी ज़बाँ इस वास्ते कहने लगा' (मौलाना रूम के 'मोजज़ा' के अनुवाद में) । इसके साथ-साथ 'हिन्दवी' शब्द भी प्रयुक्त हो रहा था । 17वीं सदी से 'हिन्दी' शब्द उत्तर भारत में भी अविच्छिन्न रूप से मिलने लगता है । उदाहरणार्थः ख़फ़ी ख़ाँ के 'मुन्तख़बुल्लबाब' (17वीं सदी उत्तरार्द्ध), मिर्ज़ा ख़ाँ के 'तुहफ़तुल हिन्द' (1676 ई०), बरकतुल्ला पेमी के 'अवारफ़े हिन्दी' (लगभग 17०० ई०) तथा 'मआसिरुल उमरा' (1742-1747) आदि में । हिन्दी कवियों में 1773 ई० में सूफ़ी कवि नूर मुहम्मद ने लिखा है—'हिन्दू मग पर पाँव न राख्यौं । का जौ बहुतै हिन्दी भाख्यौं ।।' इससे संकेत यह मिलता है कि इस काल तक आते-आते 'हिन्दी' शब्द हिन्दुओं की भाषा की ओर झुक गया था और इसमें

से हिन्दुओं की शब्दावली निकालकर, फ़ारसी शब्दों के आधार पर उर्दू की नींव पड़ रही थी। 1800 ई० के लगभग मुरादशाह लिखते हैं :—

झिझोड़ा फ़ारसी के उस्तख़्वाँ को
किया पुर मग़्ज़ तब हिन्दी ज़बाँ को
फ़साहत फ़ारसी से जब निकाली
लताफ़त शेर में हिन्दी के डाली।

इस प्रकार जैसा कि हम आगे देखेंगे, 'हिन्दी' शब्द का प्रयोग इसके विरुद्ध सामान्य अर्थों में लगभग 19वीं सदी के मध्य तक मिलता है।

यह ध्यातव्य है कि 'हिन्दवी' या 'हिन्दी' का प्रयोग यद्यपि मध्यदेश की जन-भाषा के लिए चल रहा था और वह उत्तर भारत से दक्षिण भारत में भी जा पहुँचा था, किन्तु इसका स्वीकृत भाषाओं में अकबर के काल तक नाम नहीं मिलता। अमीर ख़ुसरो ने अपने ग्रन्थ 'नुहेसिहेर' में उस काल की प्रसिद्ध ग्यारह भाषाओं (सिन्धी, लाहौरी, काश्मीरी, बंगाली, गौड़ी, गुजराती, तिलंगी, मावरी (कोंकणी), ध्रुव समुन्दरी, अवधी, देहलवी) का उल्लेख किया है, किन्तु इनमें 'हिन्दवी' या 'हिन्दी' नहीं है। अबुलफ़ज़ल की 'आइने अकबरी' में दी गई बारह भाषाओं (देहलवी, बंगाली, मुलतानी, मारवाड़ी, गुजराती, तिलंगी, मरहठी, कर्नाटकी, सिन्धी, अफ़ग़ानी, बलूचिस्तानी, काश्मीरी) में भी इसका नाम नहीं आता। हाँ, एक बात अवश्य विचार्य है। ख़ुसरो और अबुलफ़ज़ल दोनों ही ने 'देहलवी' का उल्लेख किया है और मध्यप्रदेश की कोई भाषा नहीं ली है। इसका आशय यह हुआ कि ख़ुसरो से लेकर अबुलफ़ज़ल के काल तक इस भाषा का प्रचलित नाम शायद 'देहलवी' था। 'हिन्दवी', 'हिन्दी' नाम कदाचित् केवल साहित्य तक ही सीमित थे।

ऊपर यह संकेत किया जा चुका है कि 'हिन्दी' शब्द मूलतः मुसलमानों की हिन्दी के लिए प्रयुक्त होकर, फिर हिन्दुओं की भाषा की ओर आ रहा था। किन्तु 19वीं सदी के मध्य के पूर्व तक उर्दू के लेखकों में प्रायः इसका प्रयोग 'उर्दू' या 'रेख़्ता' के समानार्थी रूप में चल रहा था। हातिम (18वीं सदी उत्तरार्द्ध), नासिख़, सौदा (1713-1780 ई०), मीर (1719-1758 ई०) आदि ने एकाधिक बार अपने शेरों को 'हिन्दी' शेर कहा है। ग़ालिब ने अपने ख़तों में 'उर्दू', 'हिन्दी', 'रेख़्ता' को कई स्थलों पर समानार्थी शब्दों के रूप में प्रयुक्त किया है। 1803 ई० लिखित 'तज़किरह मख़ज़न उलग़रायब' में आता है—'दरज़बाने हिन्दी कि मुराद उर्दू अस्त।' फ़ोर्ट विलियम कॉलेज के हिन्दी अध्यापक गिलक्रिस्ट के लेखों से पता चलता है कि वे हिन्दी, हिन्दुस्तानी, उर्दू तथा रेख़्ता आदि को समानार्थी समझते थे, किन्तु उनकी दृष्टि में इनका परिनिष्ठित रूप अरबी-फ़ारसी मिश्रित था, अर्थात् उनकी 'हिन्दी' आज की दृष्टि से 'उर्दू' थी। 1820 में उनकी एक किताब निकली, जिसका नाम था—'क़वानीने-सर्फ़-व नहो हिन्दी'। पुस्तक पर अंग्रेजी में लिखा था—Rules of Hindee

है, जिसमें अरबी-फ़ारसी शब्दों का प्रयोग नहीं होता और मुसलमानी आक्रमण Grammar। पुस्तक के भीतर सर्वत्र ही 'हिन्दी' या 'रेख़्ता' शब्द का प्रयोग है, किन्तु व्याकरण उर्दू का है। इसकी भाषा भी अरबी-फ़ारसी शब्दों से लदी है, जैसा कि नाम (क़वानीने-सर्फ़) से भी स्पष्ट है। आशय यह है कि सन् 1800 के आस-पास 'हिन्दी' शब्द का प्रयोग 'उर्दू' तथा 'रेख़्ता' के लिए हो रहा था।

'हिन्दी' के आधुनिक अर्थ में प्रयुक्त होने का इतिहास बड़ा विचित्र है। पीछे के नूर मुहम्मद तथा मुरादशाह के उद्धरणों से इस बात का कुछ संकेत मिलता है कि कभी-कभी उसका प्रयोग हिन्दुओं की भाषा या अरबी-फ़ारसी के कठिन शब्दों से रहित मध्यदेशीय भाषा के लिए होता था, किन्तु ऐसे प्रयोग प्रायः अपवाद स्वरूप हैं। प्रायः 'हिन्दी' का प्रयोग उस भाषा के लिए मिलता है, जो अरबी-फ़ारसी से भरती जा रही थी, या जो वह भाषा थी, जो बाद में विकसित होकर 'उर्दू' कहलाई। जनता में 19वीं सदी के प्रायः मध्य तक कुछ अपवादों को छोड़कर 'हिन्दी' का इसी अर्थ में प्रयोग मिलता है।[1]

आधुनिक अर्थ में 'हिन्दी' शब्द के व्यापक प्रयोग का श्रेय मूलतः अंग्रेज़ों को है। 1800 ई० में कलकत्ते में फ़ोर्ट विलियम कॉलिज की स्थापना हुई। वहाँ गिलक्राइस्ट हिन्दी या हिन्दुस्तान के अध्यापक नियुक्त हुए। यदि गिलक्राइस्ट ने मध्यप्रदेश की वास्तविक प्रतिनिधि भाषा को, जो न तो अधिक अरबी-फ़ारसी की ओर झुकी हुई थी और न संस्कृत की ओर, अपनाया होता, तो आज हिन्दी-उर्दू नाम की दो भाषाएँ न होतीं और हिन्दी भाषा एवं उसके साहित्य का नक्शा कुछ और ही होता। किन्तु उनकी हिन्दी(जैसा कि उनके हिन्दी-व्याकरण के नाम 'क़वानीने-सर्फ़-व-नहो हिन्दी' से स्पष्ट है) बहुत ही कठिन उर्दू थी। वे सन् 1904 तक अध्यापक रहे, अतः वही भाषा हिन्दी कही जाती रही। किन्तु वहाँ के कर्मचारियों का ध्यान इस बात की ओर गया कि प्रतिनिधि भाषा वह नहीं है। इसका परिणाम यह हुआ कि 'हिन्दुस्तानी' शब्द तो अरबी-फ़ारसी शब्दों से युक्त गिलक्राइस्ट की हिन्दी (जो वस्तुतः उर्दू थी) के लिए प्रयुक्त होने लगा और 'हिन्दी' शब्द हिन्दुओं में प्रचलित संस्कृत मिश्रित भाषा के लिए। इस अर्थ में 'हिन्दी' शब्द की परम्परा प्राप्त साहित्य में कहीं-कहीं ही मिली है। सम्भव है, जनता में उस समय 'हिन्दी' नाम का कुछ अधिक प्रचार रहा हो, जहाँ से अंग्रेज़ों ने उसे लिया। इस नवीन अर्थ में 'हिन्दी' का स्पष्ट रूप से लिखित प्रयोग कदाचित् सर्वप्रथम कैप्टन टेलर ने किया। 1812 में फ़ोर्ट विलियम कॉलिज के वार्षिक विवरण में वे कहते हैं—"मैं केवल हिन्दुस्तानी या रेख़्ता का ज़िक्र कर रहा हूँ जो फ़ारसी लिपि में लिखी जाती है···मैं हिन्दी का ज़िक्र नहीं कर रहा, जिसकी अपनी लिपि

1. शासन के लोगों में इस रूप में प्रयुक्त होने पर भी 'हिन्दी' शब्द उर्दू के अर्थ में साहित्यिकों तथा जनता आदि में 19वीं सदी के लगभग मध्य तक चलता रहा। ग़ालिब ने अपने कई पत्रों में हिन्दी, उर्दू और रेख़्ता को प्रायः समान अर्थों में प्रयुक्त किया है।

से पहले जो भारतवर्ष के समस्त उत्तर-पश्चिम प्रान्त की भाषा थी" (Imperial Records, Vol. IV, पृ० 276-77)। इस उद्धरण से यह स्पष्ट है कि उस समय तक 'हिन्दी' शब्द इस अर्थ में कम-से-कम कॉलिज के लोगों में कुछ समझा जाने लगा था, किन्तु बहुत अधिक नहीं, क्योंकि उसे 'हिन्दुस्तानी' या 'रेख़्ता' से अलग स्पष्ट करने की आवश्यकता अभी समाप्त नहीं हुई थी, जैसा कि टेलर के कथन से स्पष्ट है। उक्त कॉलिज में हिन्दी-उर्दू (या हिन्दुस्तानी) का यह अलगाव बढ़ता ही गया। 1824 में उक्त कॉलिज के हिन्दी प्रोफ़ेसर विलियम प्राइस ने स्पष्ट शब्दों में हिन्दी के लगभग सभी शब्दों के संस्कृत के होने की बात कही तथा हिन्दुस्तानी के शब्दों के अरबी-फ़ारसी के होने की। 1825 में कॉलिज के वार्षिक अधिवेशन के भाषण में लार्ड ऐमहर्स्ट ने 'हिन्दी' भाषा को हिन्दुओं से सम्बद्ध कहा तथा 'उर्दू' को उनके लिए उतनी ही विदेशी कहा, जितनी 'अंग्रेज़ी'। इस प्रकार अंग्रेज़ों ने, जिस नीयत से भी किया हो, 19वीं सदी के प्रथम 25 वर्षों में एक ओर 'हिन्दवी' या 'हिन्दी-देवनागरी-संस्कृत-हिन्दू' शब्दों को जोड़ दिया, तो दूसरी ओर 'हिन्दुस्तानी-रेख़्ता या उर्दू-फ़ारसी लिपि-अरबी-फ़ारसी-मुसलमान' शब्दों को। सम्भवतः शासन के ही इशारे पर 1862 में हिन्दी-उर्दू का प्रश्न शिक्षा के संयोजकों के समक्ष आया और इस प्रकार 19वीं सदी के तीसरे चरण में 'हिन्दी' आजकल के अर्थ में निश्चित रूप से स्वीकृत हो गई। उर्दू और हिन्दी भाषा को लेकर उस काल में कितनी गरमगरमी थी, इसके चित्र 'सितारे हिन्द' और 'भारतेन्दु' उपाधि की अंतःकथा में मूर्तिमान हैं।

इस तरह नामों के अध्ययन में एक तरफ़ तो भाषाविज्ञान, इतिहास, समाजशास्त्र, संस्कृति, भूगोल आदि की जानकारी अपेक्षित होती है, और दूसरी ओर शब्दों का अध्ययन भाषा, इतिहास, समाजशास्त्र, संस्कृति तथा प्राचीन भूगोल आदि पर प्रकाश डालने के लिए बड़ी उपयोगी सामग्री प्रस्तुत करता है।

9

शब्दध्वनिविज्ञान

यहाँ 'शब्दध्वनिविज्ञान' शब्द का प्रयोग भाषा विशेष में प्रयुक्त शब्दों के आधार पर उस भाषा की ध्वनियों के अध्ययन के लिए किया जा रहा है। अंग्रेजी में इस अर्थ में 'वर्डफ़ोनॉलजी' का प्रयोग होता है। इसे यों भी कहा जा सकता है कि इसके अंतर्गत किसी भाषा के शब्दों का ध्वनि की दृष्टि से अध्ययन किया जाता है।

वस्तुतः समग्रतः किसी भाषा की ध्वनि-व्यवस्था का अध्ययन तथा मात्र शब्दों के आधार पर उसकी ध्वनि-व्यवस्था के अध्ययन में थोड़ा अन्तर होता है। इस प्रसंग में मुख्यतः दो-तीन बातें कही जा सकती हैं। एक तो यह कि शब्दध्वनि-विज्ञान में मात्र शब्दों की रचना में प्रयुक्त होने वाली संधियों का अध्ययन आता है, किंतु यदि भाषा की पूरी व्यवस्था को लें तो कुछ संधियाँ वाक्य में प्रयुक्त दो शब्दों के बीच में भी उच्चारण के स्तर पर मिलती हैं। जैसे मार + डाला = माड्डाला, दूध + दो = दूद्दो। इस तरह की संधियाँ शब्द-स्तर पर प्रायः नहीं मिलतीं। दूसरे, यदि तान भाषाओं (Tone language) की बात छोड़ दें तो हिंदी आदि भाषाओं में अनुतान (Intonation) शब्द के स्तर पर न होकर वाक्य-स्तर पर होता है, अतः भाषा की सामान्य ध्वनि व्यवस्था में तो अनुतान किया जायेगा किन्तु ऐसी भाषाओं के शब्दध्वनिविज्ञान में यह नहीं आएगा। हाँ, तान भाषाओं में शब्द-स्तर पर तान (Tone) को अवश्य लिया जाता है। ऐसे ही संगम, विवृति या संहिता (Juncture) का विचार भी शब्दध्वनिविज्ञान में नहीं किया जाता।

शब्दध्वनिविज्ञान में सबसे पहले भाषा-विशेष के शब्दों में आने वाली ध्वनियों में स्वनिमों का निर्धारण करते हैं। ये स्वनिम, स्वर तथा व्यंजन आदि खंड्य भी होते हैं, तथा दीर्घता, अनुनासिकता आदि खंड्येतर भी। साथ ही संयुक्त व्यंजन, व्यंजन-अनुक्रम, संयुक्त स्वर, स्वरानुक्रम तथा अक्षर आदि की व्यवस्था का भी विश्लेषण किया जाता है। (विस्तार के लिए देखिए, प्रस्तुत लेखक की पुस्तक 'भाषाविज्ञान' का 'ध्वनिविज्ञान' शीर्षक अध्याय।)

शब्दध्वनिविज्ञान में ध्वनियों के निर्धारण में यह ध्यान रखना चाहिए कि लिखित सामग्री में शब्दों की वर्तनी ध्वनियों या उच्चारण की दृष्टि से कभी-कभी बहुत भ्रामक होती है। अतः अध्ययन में हमारा ध्यान उच्चारण पर होना चाहिए, वर्तनी पर नहीं। इस दृष्टि से कई बातें संकेत्य हैं जो आगे दी जा रही हैं।

शब्दों में ध्वनियाँ आसपास की ध्वनियों से प्रभावित होती हैं । होता यह है कि प्रायः आगे आनेवाली ध्वनि के उच्चारण की तैयारी में उच्चारण-अवयव पूर्ववर्ती ध्वनि का उच्चारण परवर्ती ध्वनि के अनुरूप कर देते हैं । उदाहरण के लिए जब हम 'डाकघर' शब्द बोलते हैं तो वस्तुतः 'डाकघर' नहीं कहते । 'घ' का उच्चारण करने के लिए स्वरतंत्रियाँ पहले से एक दूसरे के समीप आ जाती हैं । अतः पूर्ववर्ती ध्वनि 'क' 'ग' हो जाती है । 'घ' के घोष होने के कारण 'क' का घोष रूप 'ग' हो जाता है अर्थात् घोष हो जाने की प्रक्रिया काम करती है। इसका आशय यह हुआ कि जिस रूप में कोई भी भाषा लिखी जाती है उसी रूप में यदि कोई पढ़ने का यत्न करे तो उस भाषा का स्वाभाविक उच्चारण वह नहीं कर सकता । इस तरह, इस दृष्टि से शब्दों का अध्ययन, शब्दों का ठीक उच्चारण जानने के लिए आवश्यक है । उच्चारण में यदि कोई व्यक्ति इन वातों का ध्यान न रखे तो वह शब्दों का ठीक उच्चारण नहीं कर सकता । हिन्दी शब्दों का इस दृष्टि से विश्लेषण किया गया है, जिसके कुछ प्रमुख निष्कर्ष निम्नांकित हैं :—

(1) शब्द के मध्य या अन्त में आने वाला कोई ऐसा संयुक्त व्यंजन जिसका दूसरा सदस्य य, व, र, या ल हो, उच्चारण में तीन व्यंजनों का युक्त रूप हो जाता है, क्योंकि प्रथम व्यंजन द्वित्त या दीर्घीकृत हो जाता है :

वर्तनी	वास्तविक उच्चारण
उपन्यास	उपन्न्यास
अन्य	अन्न्य
कन्या	कन्न्या
शक्य	शक्क्य
अन्वय	अन्न्वय
परिपक्व	परिपक्क्व
तत्व	तत्त्व
चक्र	चक्क्र
अजस्र	अजस्स्र
अक़्ल	अक़्क़्ल

(2) उपर्युक्त परिस्थितियों में यदि प्रथम व्यंजन महाप्राण हो तो उसके पूर्व एक अल्पप्राण व्यंजन आ जाता है :—

अभ्यास	अब्भ्यास
सभ्य	सब्भ्य
मुख्य	मुक्ख्य
मध्य	मद्ध्य
मध्व	मद्ध्व

(3) यदि पूर्ववर्ती अक्षर (syllable) की अन्तिम ध्वनि क, च, ट, त, प, हो और परवर्ती अक्षर की प्रथम ध्वनि घोष व्यंजन हो तो क, च, ट, त, प, क्रमशः ग, ज, ड, द, ब हो जाते हैं :—

डाकघर	डाग्घर
नाचघर	नाज्घर
ठाटबाट	ठाड्बाट
मतदाता	मद्दाता
धूपबत्ती	धूब्बत्ती

(4) इसके विपरीत यदि परवर्ती अक्षर की प्रथम ध्वनि अघोष व्यंजन हो तो पूर्ववर्ती अक्षर के अन्त में आने वाले ग, ज, ड, द, ब क्रमशः क, च, ट, त, प हो जाते हैं :—

नागपुर	नाक्पुर
आजकल	आच्कल
बदतमीज़	बत्तमीज़
किताबकापी	किताप्कापी

(5) उपर्युक्त परिस्थितियों में पहले ख, छ, ठ, थ, फ हों तो क्रमशः क, च, ट त, प हो जाते हैं :—

लेखपाल	लेक्पाल
पूछताछ	पूच्ताछ
अठपहला	अट्पहला
हाथपाँव	हात्पाँव
हाँफकर	हाँप्कर

संस्कृत सन्धियों के नियम भी इसी प्रकार थे। एक बड़ी अजीब बात है कि यद्यपि विश्व के सभी लोगों के उच्चारण-अवयव प्रायः समान होते हैं किन्तु इस प्रकार के नियम विभिन्न भाषाओं में अलग-अलग होते हैं। उदाहरण के लिए ऊपर हमने देखा कि पूर्ववर्ती ध्वनि, परवर्ती से प्रभावित हो रही थी। अंग्रेज़ी में बात ठीक उलटी है। परवर्ती ध्वनि पूर्ववर्ती से प्रभावित होती है। इसी कारण dogs, clubs, buds के उच्चारण डॉग्ज़, क्लब्ज़, बड्ज़ होते हैं। यदि ये शब्द हिन्दी में होते तो इनके उच्चारण डॉक्स, क्लप्स, बट्स हो जाते। तो, इस तरह वर्तनी उच्चारण की दृष्टि से भ्रामक होती है।

ऊपर पार्श्ववर्ती ध्वनियों के प्रभाव के कारण परिवर्तन से वर्तनी और उच्चारण में अन्तर की बात की जा रही थी। शब्दों की वर्तनी और उच्चारण में एक अन्य प्रकार का भी अन्तर मिलता है, और उसका भी अध्ययन शब्दध्वनिविज्ञान

में अपेक्षित है। होता यह है कि प्रारंभ में जब कोई भी भाषा लिखी जाती है, तो शब्दों की वर्तनी उच्चारण के अनुकूल होती है, किन्तु वर्तनी तो वही रहती है और उच्चारण परिवर्तित होता चला जाता है। उच्चारण में जितना ही अधिक परिवर्तन होता है वर्तनी और उच्चारण के बीच की खाई उतनी ही ज़्यादा बढ़ती चली जाती है। अंग्रेज़ी में डॉटर-डाउघ्टर (daughter), टॉक-टॉल्क (talk), नोक्नोव (Know), साइकॉलजी-प्साइकॉलजी (psychology), नॉ-ग्नॉ (gnaw), हैच-हैट्च (hatch) में यह अन्तर स्पष्ट है।

हिन्दी में प्रायः लोग समझते हैं कि उच्चारण और वर्तनी में कोई अन्तर नहीं है, किन्तु वास्तव में यह बात नहीं है। कुछ प्रमुख अन्तर निम्नांकित हैं :—

(1) हिन्दी शब्दों के लेखन में अक्षरांत अ वर्तनी में तो है, किन्तु उच्चारण में नहीं है : राम्—राम, आवश्यक्ता—आवश्यकता, अप्ना—अपना, बोल्चाल्—बोलचाल, फ़ार्सी—फ़ारसी, चल्ना—चलना।

(2) अनेक तत्सम शब्दों में हम ष का प्रयोग करते हैं, किन्तु वास्तविक उच्चारण में श बोलते हैं : शेश—शेष, वर्श—वर्ष, विशम—विषम।

(3) इसी प्रकार कुछ तत्सम शब्दों में हम ऋ लिखते हैं किन्तु बोलने में हम 'रि' बोलते हैं : क्रिश्ड़ँ—कृष्ण, रितु—ऋतु, क्रिपा—कृपा, कर्त्रि—कर्तृ।

(4) जिसे हम ण लिखते हैं उसका भी अधिकांश भाषियों में उच्चारण ड़ँ हो गया है : क्रिष्ड़ँ—क्रिष्ण, प्रड़ँ—प्रण, मड़ि—मणि, विशड़ँ ड़ँ—विषण्ण।

(5) विसर्ग को हम 'ह' उच्चरित करते हैं : प्रायह—प्रायः, विशेशतह—विशेषतः, क्रमशह—क्रमशः।

(6) ज्ञ का मूल उच्चारण ज्+ञ था, आज लिखते तो ज्ञ ही हैं किन्तु आर्यसमाजी लोग इसका उच्चारण ज्य या ज्यँ करते हैं तथा अन्य लोग इसे ग्य या ग्यँ बोलते हैं। मराठी आदि अन्य भाषाओं में इसका उच्चारण तो और भी भिन्न है। ज्यान, ज्याँन, ग्यान, ग्याँन, द्नाँन—ज्ञान।

(7) क्ष का मूल उच्चारण क्+ष् है किन्तु अब इसे बहुत से लोग क्+श् बोलते हैं : दक्श—दक्ष, कक्शा—कक्षा।

(8) कुछ फुटकल शब्द ऐसे हैं जो लिखे तो और तरह से जाते हैं किन्तु बोले और तरह से जाते हैं :—

लिखित रूप	**उच्चरित रूप**
साहित्यिक	साहित्तिक
स्थायी	स्थाई
गयी	गई (ऐसे भी लिखित)
गये	गए (,, ,, ,,)
लिये	लिए (,, ,, ,,)

रखा	रक्खा
दो	द्वो (कुछ लोगों द्वारा उच्चरित)
नब्बे	नब्बे, नव्वे, नभ्भे
उत्तरदायी	उत्तरदाई
द्विवेदी	दुवेदी

शब्दों की ध्वनियों का सांख्यिक अध्ययन भी किया जा सकता है। इससे पता चलता है कि विभिन्न स्वरों और व्यंजनों का अनुपात क्या है। इसके आधार पर टाइपराइटर, आशुलिपि, प्रेस में तो सहायता मिलती ही है, किसी व्यक्ति की शैली का अध्ययन भी किया जा सकता है।[1] विश्व की अनेक भाषाओं में ध्वनियों की गणना के प्रयास विभिन्न दृष्टियों से हुए हैं। 1874 में ह्विटने ने अंग्रेजी ध्वनियों पर काम किया। 1913 में मार्कोव ने पुश्किन की एक रचना के आधार पर रूसी भाषा में स्वरों और व्यंजनों के साथ-साथ आने के नियम निकाले। हिन्दी ध्वनियों की गणना पर भी देश और विदेश में कार्य हुए हैं। मेरी अपनी गणना के अनुसार हिन्दी में लगभग 21-22 प्रतिशत अघोष ध्वनियों का तथा 78-79 प्रतिशत घोष ध्वनियों का प्रयोग होता है। 'हिन्दी के स्वर और व्यंजनों में कौन अधिक प्रयुक्त होते हैं और कौन कम', इस बात का अध्ययन कई लोगों ने किया है। मेरी अपनी गणना के अनुसार हिन्दी स्वरों का प्रयोग-क्रम (अधिक प्रयुक्त स्वर पहले हैं, और कम प्रयुक्त बाद में) अ, आ, ए, ऐ, ओ, उ, ऐ, औ, ऊ है। व्यंजनों का क्रम है : क, र, न, त, स, म, प, ह, य, ल, व, द, ज, श, ग, ब, च, थ, भ, ध, ख, ट, ड, ण, छ, ङ, फ, ठ, घ, झ, ढ, ञ। इसी प्रकार की गणना हिन्दी को लेकर रूस में भी हुई है तथा पूना में भी। उन लोगों के परिणाम आपस में भी थोड़े भिन्न हैं, तथा मेरे परिणाम से भी कुछ भिन्न हैं। स्वर-व्यंजनों दोनों को साथ रखें तो क्रम अ, आ, क, र, ए, न, त, इ, ई, स, म, प, ह, य, ल, ओ, उ, व, द, ज, श, ग, ऐ, ब, च, थ, भ, औ, ध, ऊ, ख, ट, ड, ण, छ, ङ, फ, ठ, घ, झ, ट, ञ आता है।

हर भाषा में ध्वनिक्रम एक समान नहीं होते। हिन्दी स्वरों एवं व्यंजनों की सम्मिलित क्रम-सूची ऊपर दी गई है। नीचे दी जा रही गुजराती की सूची इससे तुलनीय है : अ, आ, न, ए, र, ई, ओ, म, क, व, य, स, प, उ, त, ल, ज, ह, द, ग, थ, ण, छ, थ, ब, ध, श, इ, ट, ड, च, ख, ळ, भ, फ, ऊ, ष, ठ, ध, झ, ऐ, ढ, औ। इसमें ङ, ञ नहीं हैं। उल्लेख्य है कि इसीलिए यदि हिन्दी और गुजराती के नागराक्षर के टाइपराइटर बनें तो दोनों के की-बोर्ड एक-जैसे नहीं होंगे।

1. Vowels and Consonants as features of style, some poems of Goethe and Klopstock—F. G. Ryder, Linguistics, 37 पृ० 89—110

ध्वनियों का ऐतिहासिक अध्ययन, ध्वनि-परिवर्तन और उसके कारणों से सम्बद्ध है। ध्वनियों में परिवर्तन लोप (ध्वनि का लुप्त हो जाना—स्थाली-थाली, एकादश-ग्यारह, द्वादश-बारह, कोकिल-कोयल), आगम (किसी नई ध्वनि का आ जाना—अस्थि-हड्डी, भक्त-भगत, दजन-दर्जन, समुद्र-समुन्दर), विपर्यय (दो ध्वनियों का एक-दूसरे के स्थान पर चला जाना – वाराणसी-बनारस, चिह्न-चिन्ह, ब्राह्मण-ब्राम्हण, बफ़्-बर्फ़), समीकरण (दो असमान ध्वनियों का समान हो जाना—चक्र-चक्की, पत्र-पत्ता धर्म-(प्राकृत में) धम्म), विषमीकरण (दो समान ध्वनियों का असमान हो जाना। यह प्रवृत्ति बहुत कम मिलती है, तथा जिन शब्दों में मिलती भी है, उन्हें और रूपों में भी देखा जा सकता है। लांगूली-लंगूर), महाप्राणीकरण [अल्पप्राण का महाप्राण हो जाना—सर्व-सभ (भोजपुरी में) नब्बे-नब्भे, (पश्चिमी हिंदी के उच्चारण में), वेष-भेष], अल्प्राणीकरण (महाप्राण का अल्प-प्राण हो जाना—आज बोलने में प्रायः हम भूख के स्थान पर भूक् तथा हाथ के स्थान पर हात् कहते हैं। उर्दू में तो भूक, धोका लिखते भी हैं), घोषीकरण अघोष ध्वनि का घोष हो जाना – मकर-मगर, कंकण-कंगन, कुंचिका-कुंजी), स्वतः अनुनासिकता (श्वास-साँस, अश्रु-आँसू, भ्रू-भौं, सर्प-साँप) आदि रूपों में होता है, तथा इसके कारण मुख-सुख या उच्चारण-सुविधा, अज्ञान, भ्रामक व्युत्पत्ति, बोलने में शीघ्रता, लेखन आदि हैं (विस्तार के लिए देखिए लेखक की पुस्तक 'भाषाविज्ञान' के 'ध्वनिविज्ञान' शीर्षक अध्याय का 'ध्वनि-परिवर्तन' शीर्षक अंश)।

ऐतिहासिक ध्वनिविज्ञान के शब्दों में हुए ध्वनि-परिवर्तनों के अध्ययन विश्लेषण और वर्गीकरण के आधार पर ध्वनि-परिवर्तन-संबंधी नियमों का भी निर्धारण होता है। ग्रिम, ग्रासमान और वर्नर के प्रसिद्ध ध्वनि-नियम (देखिए लेखक की पुस्तक 'भाषाविज्ञान' के 'ध्वनिविज्ञान' अध्याय का 'ध्वनि-नियम' शीर्षक अंश) इसी प्रकार के हैं। हिन्दी में भी इस प्रकार के कुछ नियमों का निर्धारण (विस्तार के लिए देखिए लेखक की पुस्तक 'हिन्दी भाषा' के प्रथम अध्याय 'ध्वनि' में 'हिन्दी शब्दों में ध्वनि-परिवर्तन-संबंधी सामान्य नियम' शीर्षक अंश) किया गया है। हिन्दी के प्रमुख ध्वनि-नियम निम्नांकित हैं :—

(1) **क्षतिपूरक दीर्घीकरण का नियम**—संस्कृत शब्दों में संयुक्त या दीर्घ (द्वित्त) व्यंजनों के पूर्व यदि ह्रस्व स्वर हो तो हिन्दी में उस ह्रस्व स्वर के स्थान पर दीर्घ स्वर हो जाता है : कर्म-काम, सप्त-सात, अष्ठ-आठ, सर्प-साँप, भिक्षा-भीख, जिह्वा-जीभ, दुग्ध-दुध, अंगुष्ठ-अँगूठा।

(2) तुर्की-फ़ारसी-अरबी के शब्दांत के विशेष ह (हा-इ-मुख़्तफ़ी) के आ हो जाने का नियम—बस्तह्-बस्ता, ख़ज़ानह्-ख़ज़ाना, किनारह्-किनारा, कुर्तह्-कुर्ता, ग़ुस्सह्-ग़ुस्सा, तमाशह्-तमाशा।

(3) **महाप्राणों के 'ह' हो जाने का नियम**—संस्कृत शब्दों के हिन्दी में तद्भव होने पर स्वरमध्यम महाप्राण ध्वनियाँ 'ह' में परिवर्तित हो जाती हैं : मुख-मुँह,

प्राघूर्णक-पाहुना, मेघ-मेह, यूथी-जूही, गोधूम-गेहूँ, दधि-दही, कंटकफल-कटहल, आभीर-अहीर, गर्दभ-गदहा। अपवाद-स्वरूप कुछ शब्दों में अन्य स्थितियों में होने पर भी महाप्राण का ह हो जाता है। जैसे 'भू' (धातु) का 'हो'।

(4) **संस्कृत शब्दों के स्वर-मध्यम 'म' का 'व' हो जाने का नियम**—श्यामल-साँवला, आमलक-आँवला, ग्राम-गाँव, कमल-कँवल, कुमार-कुँवर, धूम-धुवाँ। ऐसे शब्दों में प्राय; पूर्ववर्ती स्वर अनुनासिक हो जाता है।

उपर्युक्त नियम स्वरों तथा मूल व्यंजनों के संबंध में थे। इसी प्रकार संयुक्त व्यंजनों के संबंध में भी नियमों का निर्धारण किया जा चुका है (दे० वही)।

ऐसा प्रायः होता है कि किसी एक भाषा से शब्द एक से अधिक भाषाओं में जाते हैं, और उन अलग-अलग भाषाओं में उसका रूप (ध्वनि की दृष्टि से) अलग-अलग हो जाता है। उदारण के लिए संस्कृत में 'सपत्नी' शब्द था हिन्दी में इस उसका रूप 'सौत' बना किन्तु पंजाबी में 'सौकन' हो गया (आगे 'व्युत्पत्तिविज्ञान' नामक अध्याय में इस शब्द पर विस्तार से विचार किया गया है)। ऐसे परिवर्तनों का तुलनात्मक अध्ययन किया जा सकता है। कैसे एक ही शब्द कई भाषाओं में जाकर अनेक रूप धारण कर लेता है? होता यह है कि हर भाषा की अपनी विशेष ध्वनि-व्यवस्था होती है। इसी कारण एक ही शब्द विभिन्न ध्वनि-व्यवस्थाओं में जाकर विभिन्न रूप धारण कर लेता है। कभी-कभी तो ऐसा हो जाता है कि उसे पहचानना भी कठिन (जैसे संस्कृत अध्यापक > मैथिली झा) हो जाता है। नीचे इस प्रकार के कुछ बहुरूपी शब्द दिए जा रहे हैं।

(1) संस्कृत कुठारक > पंजाबी कुल्हाड़ा, गुजराती कुहाड़ों, मराठी कुऱ्हाड

(2) संस्कृत अक्षयतृतीया > मराठी अखजा, हिन्दी आखातीज

(3) संस्कृत कच्छप > हिन्दी कछुआ, उड़िया केछु, मराठी कासव

(4) संस्कृत उपाध्याय > सिंधी वाझो, हिन्दी ओझा, मराठी वाजा

(5) संस्कृत कपित्थ > भोजपुरी कइँत, सिंधी कविटु, हिन्दी कैथ

(6) संस्कृत अक्षोट > गुजराती अखोड़, हिन्दी अख़रोट

(7) संस्कृत अग्निष्ठिका > हिन्दी अंगीठी, मराठी ऑक्टि

(8) संस्कृत कुष्मांड > हिन्दी कुम्हड़ा, बंगाली कुमड़ा, भोजपुरी कोंहड़ा, आसामी कोमोरा

(9) संस्कृत गुड > हिन्दी गुड़, भोजपुरी गुर, गुजराती गोळ

(10) संस्कृत कृत्तिका > सिंधी कत्यूँ, मराठी कात्या, सिंहली कति, भोजपुरी कच

(11) संस्कृत कैवर्त > हिन्दी केवट, भोजपुरी खेवट, सिंहली केवुळा

(12) संस्कृत कोकिल > सिंहली कोवुला, भोजपुरी कोइलर, हिन्दी कोयल

(13) संस्कृत केदारिका > भोजपुरी कियारी, हिन्दी क्यारी

(14) संस्कृत गर्भ > पंजाबी गब्भ, बंगाली गाब, हिन्दी गाभा, भोजपुरी गोभा

(15) संस्कृत कपर्द, कर्पादिका > हिन्दी कौड़ी, मराठी कवडा, सिंहली कवडिय, भोजपुरी कउड़ी

(16) संस्कृत बदर > मराठी भेर, हिन्दी बेर, भोजपुरी बइर

(17) संस्कृत मुकुल > बंगाली बोल, हिन्दी बौर, भोजपुरी मउर, गुजराती मोहोर

(18) संस्कृत चत्वारिंशत् > पंजाबी चाली, हिन्दी चालीस, गुजराती चालीश

(19) संस्कृत छाया > उड़िया छाँइ, हिन्दी छाँव, छाँह, सिंहली सेया

(20) संस्कृत घृत > सिंहली गिय, भोजपुरी घीउ, घीव; हिन्दी घी, पंजाबी क्यो

(21) संस्कृत सम्बन्धी > भोजपुरी समधी, उड़िया समुदी

(22) अरबी शोरबा > भोजपुरी सुरुवा, उड़िया सुरुआ, हिन्दी शोरबा

(23) पुर्तगाली Papaia > हिन्दी पपीता, तमिल पप्पइ, नेपाली पपिता, मराठी पपैया

(24) पुर्तगाली Ananas > हिन्दी अनन्नास, उड़िया अनारस, सिंधी अनानसु, गुजराती अनेनस, अन्नस; मराठी अननस

(25) अंग्रेज़ी Platoon > हिन्दी पलटन, मराठी पलटण

(26) अंग्रेज़ी pencil > हिन्दी पेंसिल, भोजपुरी पिनसिन, बोलचाल की पंजाबी पिलसन, पिलसण, बंगाली पेंशिल

(27) अंग्रेज़ी School > हिन्दी स्कूल, भोजपुरी इस्कूल, कुछ अवधी क्षेत्रों में अस्कूल, पंजाबी सकूल, गुजराती स्कुल, उड़िया इस्कुल, बंगाली इश्कुल

(28) अंग्रेज़ी Station > हिन्दी स्टेशन, पंजाबी असटेशन, सटेशन, भोजपुरी इस्टेसन, टेसन, टीसन

(29) अंग्रेज़ी private > हिन्दी प्राइवेट, भोजपुरी पराइवेट, मराठी प्रायव्हेट, उड़िया प्राइभेट, तमिल पिरैवेट

(30) अंग्रेज़ी Doctor > हिन्दी डॉक्टर, भोजपुरी डगडर, उड़िया डाक्तर

(21) अंग्रेज़ी Hospital > हिन्दी अस्पताल, पंजाबी हस्पताल, गुजराती इस्पिताल, मराठी इस्पितल, तमिल ओस्पत्रि

(32) अंग्रेज़ी Jail > हिन्दी जेल, भोजपुरी जेहल, तमिल चेजिल, जेजिल

10

व्युत्पत्तिविज्ञान

व्युत्पत्तिविज्ञान शब्दविज्ञान की एक शाखा है जिसमें शब्दों के पूरे इतिहास का अध्ययन किया जाता है। इतिहास में उस शब्द का अध्ययन तो आता ही है, साथ ही उसको बनानेवाले भाषिक घटकों (जैसे प्रकृति, प्रत्यय आदि) के भी विकास का अध्ययन आता है। इस तरह शब्द का उद्गम, उसकी रचना और उसका विकास तीनों ही इसके अंतर्गत आते हैं। इस अध्ययन के लिए हिन्दी में 'व्युत्पत्ति' के अतिरिक्त 'निरुक्त' या 'निर्वचनशास्त्र' शब्द भी चलते हैं।

'निरुक्त' शब्द संस्कृत व्याकरण के अनुसार निस्+वच्+क्त से बना है। यों तो संस्कृत साहित्य में ब्राह्मण, उपनिषद् तथा महाभारत आदि में इस शब्द का प्रयोग 'उच्चरित', 'अभिव्यक्त' तथा 'परिभाषित' आदि अनेक अर्थों में हुआ है, किन्तु उसका मूल अर्थ 'अलग-अलग करके कहना' या 'अलग-अलग करके कहा हुआ' है तथा उसका मुख्य प्रयोग शब्द की व्युत्पत्तिमूलक व्याख्या के लिए हुआ है। इस अर्थ में यह शब्द छांदोग्य उपनिषद् (8.3.3) तथा महाभारत (1.266) आदि कई ग्रन्थों में मिलता है। इसी अर्थ के आधार पर 'निरुक्त' नाम से कई प्राचीन ऋषियों ने वैदिक शब्दों की व्युत्पत्तिमूलक व्याख्या के लिए ग्रन्थ लिखे जिनमें अब केवल यास्क का 'निरुक्त' ही उपलब्ध है।

'निर्वचन' शब्द 'निरुक्त' से केवल इस बात में भिन्न है कि 'निरुक्त' विशेषण तो है ही, भाववाचक संज्ञा भी है क्योंकि 'क्त' प्रत्यय दोनों अर्थों में आता है, जब कि 'निर्वचन' केवल संज्ञा है। अर्थात् 'निर्वचन' केवल 'निरुक्त' की प्रक्रिया है, जबकि 'निरुक्त' प्रक्रिया भी है और वह भी है 'जिसका निर्वचन किया गया हो'। उसकी रचना 'निस+वच्+ल्युट्' रूप में हुई है तथा इसका अर्थ है 'अलग-अलग करके कहना'।

'व्युत्पत्ति' शब्द 'पद्' धातु से बना है जिसका अर्थ है 'गति करना'। इसमें वि+उत् उपसर्ग तथा क्तिन् (भाववाचक अर्थ में) प्रत्यय हैं। 'व्युत्पत्ति' शब्द का भी 'निरुक्त' की भाँति ही एकाधिक अर्थों में प्रयोग मिलता है, किन्तु भाषाशास्त्र के प्रसंग में उसका अर्थ व्याकरणिक विश्लेषण है अर्थात् इसमें शब्द को विश्लेषित करके धातु, उपसर्ग, प्रत्यय आदि का निर्देश किया जाता रहा है।

इस प्रकार निरुक्त में शब्द विशेष की धातु आदि का निर्देश करके अर्थ को स्पष्ट करने पर बल होता है तो व्युत्पत्ति में केवल धातु, उपसर्ग, प्रत्यय आदि

व्याकरणिक इकाइयों का निर्देश करने पर। यों आज व्युत्पत्ति में जैसा कि पीछे कहा जा चुका है, शब्द का एक प्रकार से सर्वांगीण विकासात्मक अध्ययन आता है।

हर नई चीज़ का विकास आवश्यकतावश ही होता है। हमारे यहाँ प्राचीन काल में बोलचाल की भाषा जैसे-जैसे वैदिक भाषा से दूर हटती गई वैदिक भाषा को समझना और उसका ठीक उच्चारण या पाठ करना लोगों के लिए कठिन होता गया। किन्तु वैदिक ऋचाओं का अध्ययन-अध्यापन तत्कालीन पंडित वर्ग के लिए एक प्रकार से अनिवार्यतः आवश्यक था, परिणामतः इस कठिनाई को दूर करने के लिए दो शास्त्रों का विकास हुआ। अर्थ समझने के लिए निरुक्त या निर्वचनशास्त्र का तथा ठीक उच्चारण के लिए शिक्षाशास्त्र का।

यों शब्दों के निर्वचन करने के प्राचीनतम उदाहरण ऋग्वेद में मिलते हैं, जिससे यह अनुमान भी लगाया जा सकता है कि कदाचित् शब्दों की निरुक्ति देने की मौखिक परम्परा निरुक्त से काफ़ी पुरानी थी। आज भी कभी-कभी सामान्य लोग इस प्रकार के अनुमान लगाते पाये जाते हैं।

निर्वचन या निरुक्त का प्राचीनतम रूप अनुमानाश्रित अधिक रहा होगा। धीरे-धीरे समय के साथ उसमें वैज्ञानिकता आती गई होगी। यास्क के निरुक्त तक आते-आते इसमें काफ़ी कुछ शास्त्रीयता आ गई थी, किन्तु फिर भी उसमें अनुमान का अंश बिल्कुल न रहा हो, ऐसी बात नहीं। व्याकरण-शास्त्र कदाचित् निरुक्त या निर्वचन का ही विकसित रूप है। इसी कारण व्याकरण के आधार पर शब्द-विश्लेषण के उदाहरण बहुत पुराने नहीं मिलते, जबकि निरुक्त के उदाहरण बहुत पुराने भी मिल जाते हैं। यह भी कहना कदाचित् अन्यथा न हो कि अंतिम निरुक्तकार यास्क के बाद ही सच्चे अर्थों में व्याकरण की परम्परा चली। वह काल संधिकाल है। उसके पूर्व निरुक्तकार ही प्रायः भाषा का विश्लेषण करते थे। उसके बाद व्याकरण ने इसका स्थान ले लिया। यों यास्क भी व्याकरण के महत्त्व से अपरिचित नहीं थे, इसीलिए निरुक्तकार के लिए व्याकरण का ज्ञान उन्होंने आवश्यक माना है।

अंग्रेज़ी में व्युत्पत्ति को यों तो डेरिवेशन (derivation) भी कहते हैं, किन्तु इसके लिए मुख्य शब्द एटिमॉलजी (etymology) चलता है। अंग्रेज़ी में यह शब्द फ्रांसीसी शब्द etymologie से आया है, और वहाँ यह शब्द लैटिन etymologia का विकसित रूप है। लैटिन का भी यह अपना शब्द नहीं है। वहाँ ग्रीक से आया है। ग्रीक 'एतिमॉलोजिया' के मूल में दो शब्द हैं : 'एतिमॉस' (etymos) और लॉगॉस (logos) पहले शब्द का अर्थ 'यथार्थ', 'सच्चा' या 'ठीक' है और दूसरे का 'शब्द' या 'लेखा-जोखा'। इस तरह इसका मूल अर्थ हुआ 'यथार्थ या सच्चा शब्द' या 'शब्द के सच्चे अर्थ का लेखा-जोखा'। प्रसिद्ध स्टोइक दार्शनिक क्रिसिपॉस (Chrysippos) ने जिनका काल तीसरी सदी ई० पू० है, एक ग्रन्थ 'एतिमॉलोजिका' लिखा था, जिसमें शब्दों के ठीक अर्थ की छानबीन थी। कहना

न होगा कि 'निरुक्त' भी मूलतः इसी के समकक्ष था, और दोनों देशों में इन दोनों का विकास कदाचित् एक ही प्रकार की आवश्यकता के कारण हुआ, जिसका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। प्राचीन यूनान में 'एतिमॉलोजी' भाषाविज्ञान की शाखा न होकर दर्शन की एक शाखा थी, जिसमें शब्द द्वारा व्यक्त भाव की यथार्थ जानकारी के लिए उसके मूल आदि का अध्ययन किया जाता था। वस्तुतः यूनानी और रोमन लोगों के लिए यह शास्त्र किसी शब्द का मूल अर्थ ज्ञात करने का साधन-मात्र था। आज की तरह शब्द की उत्पत्ति और उस का इतिहास जानना इसका साध्य नहीं था। उत्पत्ति और इतिहास पर विचार होता भी था तो साध्य रूप में नहीं, अपितु शब्द का मूल या वास्तविक अर्थ जानने के लिए साधन रूप में। इस तरह मुख्यतः अर्थ से सम्बन्धित होने के कारण यह विज्ञान उन लोगों के लिए दर्शन की शाखा अर्थविज्ञान के अन्तर्गत आता था।

व्युत्पत्तिविज्ञान मूलतः ऐतिहासिक भाषाविज्ञान के अन्तर्गत आता है किन्तु व्युत्पत्तियों के अध्ययन में वर्णनात्मक एवं तुलनात्मक भाषाविज्ञान की भी ज़रूरत पड़ती है। वर्णनात्मक की इसलिए कि शब्द किन-किन तत्त्वों से बना है, तथा उसका इतिहास के विभिन्न कालों में क्या अर्थ था, आदि बातें भी व्युत्पत्ति के अध्ययन के लिए अपेक्षित हैं। तुलनात्मक की इसलिए कि भाषा विशेष के शब्द विशेष की व्युत्पत्ति में, विभिन्न कालों में उस शब्द के आर्थिक तथा ध्वन्यात्मक परिवर्तन की जानकारी के लिए उस परिवार की अन्य भाषाओं से तुलना करनी पड़ती है। वस्तुतः किसी भी प्रकार के परिवर्तन का पता तुलना से ही लगता है। इसके अतिरिक्त यदि शब्द किसी और भाषा से गृहीत है तो मूल से किस दृष्टि से कितना परिवर्तित है, इसके लिए उस भाषा से भी तुलना करनी पड़ती है।

व्युत्पत्तियों के अध्ययन में सबसे अधिक सहायता ध्वनिविज्ञान से लेनी पड़ती है। शब्दों में ध्वनि की दृष्टि से प्रायः बहुत अधिक परिवर्तन हो जाया करते हैं। 'उपाध्याय' और 'ओझा' में ऊपर से देखने में कोई ख़ास सम्बन्ध नहीं दिखाई पड़ता। ध्वनिविज्ञान के सहारे 'उपाध्याय' में संभावित परिवर्तनों का पता लगाते हैं और तब यह स्पष्ट होता है कि 'ओझा' शब्द उपाध्याय का ही परिवर्तित रूप है। कृष्ण-कान्ह, अद्य-आज, नृत्य-नाच को भी ध्वनिविज्ञान की सम्यक् जानकारी से ही जोड़ा जा सकता है। ध्वनिविज्ञान अपने मुख्य तीनों (वर्णनात्मक, ऐतिहासिक, तुलनात्मक) रूपों में व्युत्पत्ति देने में सहायता करता है।

व्युत्पत्तिविज्ञान में सहायता पहुँचाने वाली भाषाविज्ञान की दूसरी शाखा अर्थविज्ञान है। शब्द के दो पक्ष होते हैं। एक बाहरी, जिसे उसका शरीर कह सकते हैं। ध्वनियों के रूप में यही हमारे समक्ष रहता है। शब्द का दूसरा पक्ष भीतरी है जिसे उसकी आत्मा कह सकते हैं। परिवर्तित शब्द को बाहर और भीतर दोनों ओर से देखकर ही किसी पूर्ववर्ती शब्द से जोड़ा जा सकता है। अंग्रेज़ी का शब्द है 'ट्रेज़री' और हिन्दी में उसका विकास है 'तिजोरी'। 'ट्रेज़री' से 'तिजोरी' का सम्बन्ध केवल ध्वनि के आधार पर नहीं जोड़ा जा सकता। अर्थविज्ञान ही यह

बतलाएगा कि आर्थिक दृष्टि से भी इनके संबद्ध होने की संभावना है। ऐसे ही संस्कृत 'पशु' और अंग्रेज़ी 'फ़ी', संस्कृत 'सिंधु' और अंग्रेज़ी इंडि (या), संस्कृत 'गृह' और हिन्दी 'घर', संस्कृत 'आमलक' और हिन्दी 'आँवला', संस्कृत 'वाटिका', हिंदी 'बारी', संस्कृत 'द्वार' और पंजाबी 'बारी' अर्थविज्ञान के आधार पर ही जोड़े जा सकते हैं। अर्थविज्ञान के भी तीनों रूप (वर्णन, तुलना, इतिहास) हमारी सहायता करते हैं। अर्थ-निर्धारण में वर्णनात्मक तथा अर्थ-परिवर्तन की ठीक जानकारी में तुलनात्मक और वर्णनात्मक सहायक होते हैं।

इस प्रकार व्युत्पत्तिविज्ञान में सहायक के रूप में ध्वनिविज्ञान और अर्थविज्ञान दोनों ही एक-दूसरे के पूरक हैं।

रूपविज्ञान से भी व्युत्पत्तिविज्ञान को कुछ न कुछ सहायता लेनी पड़ती है। शब्द यदि कोई पद या रूप है तो उसके विश्लेषण एवं उसके अर्थ-निर्धारण में यह हमारी मदद करता है। किसी भाषा का सामान्य व्याकरण हमें शब्द विशेष के बारे में अपेक्षित सारी जानकारी नहीं दे पाता या देता भी है तो ग़लत देता है। इसके लिए भी व्युत्पत्तिविज्ञान को रूपविज्ञान की शरण लेनी पड़ती है। विशेषतः प्राचीन भाषाओं के लिए तो यह और भी सत्य है।

वाक्यविज्ञान भी व्युत्पत्तिविज्ञान की सहायता करता है। कभी-कभी कोश से किसी शब्द के अर्थ तथा व्याकरण से उसके व्याकरणिक अर्थ का ठीक पता नहीं चलता। इसके लिए उसका वाक्यों में प्रयोग देखना पड़ता है, जिसमें वाक्यविज्ञान के बिना हमारा काम नहीं चल सकता। मुख्यतः प्राचीन साहित्य के शब्दों के अध्ययन में तो यह अनिवार्य हो जाता है। वैदिक संस्कृत, अवेस्ता, ग्रीक, लैटिन शब्दों के व्युत्पत्तिमूलक अध्ययन में सचमुच ही इस विज्ञान ने बड़ी सहायता की है।

भाषाविज्ञान की शाखा शब्दविज्ञान भी व्युत्पत्तिविज्ञान से पर्याप्त सम्बन्धित है। एक तो व्युत्पत्तिविज्ञान अपने आप में शब्दविज्ञान की एक शाखा है क्योंकि शब्दविज्ञान शब्दों का अध्ययन है, और व्युत्पत्तिविज्ञान भी एक विशेष दृष्टि से शब्दों का ही अध्ययन है। इसके अतिरिक्त किसी भाषा का शब्दसमूह कैसे और क्यों बदलता है, कोई भाषा कहाँ-कहाँ से और क्यों शब्द लेती है, ये बातें शब्दविज्ञान में महत्त्वपूर्ण हैं। कहना न होगा कि व्युत्पत्तिविज्ञान के लिए भी इन बातों की जानकारी अपेक्षित है। मैदा, सेवई, दाम जैसे शब्द भारतीय भाषाओं में यूनान से आये हैं। अन्य विज्ञानों की सहायता से हिन्दी 'दाम' को हम संस्कृत द्रम्म या प्राकृत दम्म से जोड़ सकते हैं किन्तु शब्दविज्ञान ही यह बतलाएगा कि यह शब्द मूलतः संस्कृत का नहीं है और यूनानी 'द्राख़्मे' से आया है। वस्तुतः विदेशी मूल के सारे शब्दों की व्युत्पत्ति में हमें शब्दविज्ञान से बड़ी सहायता मिलती है।

भाषाविज्ञान की उपर्युक्त शाखाएँ तो व्युत्पत्तिविज्ञान की सहायता करती ही हैं, साथ ही इन्हीं के माध्यम से या सामग्री या प्रमाण-संकलन या विश्लेषण के लिए स्वतंत्रतः पुरातत्त्व, इतिहास, साहित्य, धर्म, भूगोल, मनोविज्ञान, मानव-

विज्ञान आदि से भी इसे पर्याप्त सहायता मिलती है।

व्युत्पत्ति के क्षेत्र में काम करने के लिए निम्नांकित बातें ध्यान में रखने की हैं :—

(क) जिस व्यक्ति को इस क्षेत्र में कार्य करना हो उसे भाषाविज्ञान का अच्छा ज्ञान होना चाहिए। विशेषतः ध्वनिविज्ञान में उसकी गति बहुत अच्छी होनी चाहिए।

(ख) शब्द या शब्दों से संबद्ध भाषाओं, साहित्य तथा संस्कृति का अच्छा ज्ञान हो तो उसका कार्य अधिक गहरा तथा विश्वसनीय हो सकेगा।

(ग) संबद्ध पुस्तकों की उसके पास अधिक-से-अधिक पूर्ण सूची होनी चाहिए ताकि उस क्षेत्र में जो कुछ कार्य हो चुका है उससे वह परिचित हो सके। ऐसा न करने से कभी-कभी तो ऐसे व्यर्थ के कामों में काफ़ी समय लग जाता है जो दूसरे कर चुके हैं, और जिसे आधार मानकर काम आगे बढ़ाया जा सकता है। इसके अतिरिक्त पहले के सारे कार्यों को पढ़ लेने से व्युत्पत्तिशोधकर्ता वे बहुत-सी ग़लतियाँ करने से बच जाता है जो पूर्ववर्ती लोग कर चुके हैं। इस प्रकार पूर्ववर्ती कार्य जान लेने से उसका श्रम ठीक प्रकार से व्युत्पत्ति-कार्य को आगे बढ़ाने में लगता है, व्यर्थ के कामों में या पिष्टपेषण में नहीं।

(घ) जिस भाषा या भाषा-परिवार पर इस दृष्टि से कार्य करना हो उसके बारे में तथा उसकी भाषाओं एवं बोलियों के बारे में अधिक-से-अधिक जानकारी भी उपयोगी सिद्ध होती है।

(ङ) सबसे पहले जिस (या जिन) भाषा(ओं) के शब्दों पर कार्य करना हो उनकी ध्वनियों का तुलनात्मक चार्ट बना लेना चाहिए। इस चार्ट के लिए अधिक-से-अधिक तुलनात्मक सामग्री एकत्र करनी चाहिए। इस सामग्री से ऐसे शब्दों को साथ-साथ रखना चाहिए जिनके किसी एक मूल शब्द से निकलने की संभावना हो। उदाहरणार्थ :—

संस्कृत	पालि	प्राकृत	जिप्सी
धृत	घित	घिअ	गिर
सिंधी	लहँदा	पंजाबी	बंगाली
गिहु	घिऊ	क्यो	घि
उड़िया	भोजपुरी	अवधी	हिन्दी
घिअ	घीव	घीउ	घी

यहाँ एक शब्द के विभिन्न भाषाओं में प्राप्त रूप एकत्र किये गये हैं। इनके आधार पर यह जाना जा सकता है कि संस्कृत की 'घ' ध्वनि जिप्सी में 'ग', सिंधी में 'ग' तथा पंजाबी में 'क-जैसी' है और शेष में 'घ' ही है। यहाँ तो एक शब्द से निष्कर्ष निकाला गया। 40-40, 50-50 इसी प्रकार के शब्द लेकर ध्वनि की आदि, मध्य, अंत, बलाघातयुक्त एवं बलाघातशून्य, तथा अक्षर में स्थिति देखकर

उसके विकास की रूपरेखा निर्धारित करते हैं। इसी प्रकार सारे स्वरों और सारे व्यंजनों के बारे में पता लगाते हैं। इससे इन सभी भाषाओं और बोलियों के ध्वनि-समूह का तुलनात्मक ढंग से आपस में, तथा ऐतिहासिक दृष्टि से संस्कृत, पालि, प्राकृत आदि के साथ सम्बन्ध का पता चल जाता है। इस ऐतिहासिक और तुलनात्मक चार्ट के सहारे सरलता से पता चल जाता है कि किसी भाषा की कोई ध्वनि पहले क्या रही होगी :—

उदाहरणार्थ मान लीजिए, संस्कृत और हिन्दी में सम्बन्ध-स्थापन के लिए आपने कुछ शब्दों की सूची बनाई।

संस्कृत	हिन्दी
वन	बन
विवाह	ब्याह
दधि	दही
वधिर	बहरा

उपर्युक्त शब्दों से पता चलता है कि आदि स्थान का संस्कृत 'व' हिन्दी में 'ब' हो जाता है तथा बीच के स्थान का 'ध' 'ह' हो जाता है। अर्थात् संस्कृत व>हिन्दी ब, संस्कृत ध>हिन्दी ह। अब मान लीजिए, आपको हिन्दी 'बहू' की व्युत्पत्ति खोजनी है। उपर्युक्त नियम को उलट दें तो कह सकते हैं कि हिन्दी 'ब' संस्कृत में 'व' रहा होगा तथा 'ह' 'ध', अतः इसका पुराना रूप 'वधू' होगा।

वस्तुतः व्युत्पत्ति खोजना इतना आसान काम नहीं है। यहाँ केवल समझाने के लिए यह एक बहुत ही सतही उदाहरण दिया गया। यों उपर्युक्त प्रकार का चार्ट तैयार कर लेने पर ठीक व्युत्पत्ति देना अपेक्षाकृत सरल हो जाता है।

(च) ध्वनि का चार्ट बनाते समय दो बातों का ध्यान रखना बड़ा ज़रूरी है। ये हैं भाषा की अनुलेखन-पद्धति और वर्तनी। यह ध्यान में रखना चाहिए कि हम ध्वनियों का अध्ययन करते हैं, लिपि-चिह्न का नहीं। कभी-कभी एक ही अक्षर (letter) कई भाषाओं में कई ध्वनियों का काम करता है। ऐसी स्थिति में उसे एक ध्वनि का प्रतीक न मान लेना चाहिए। उदाहरण के लिए 'ष' हिन्दी में 'श' है किन्तु संस्कृत में 'ष' था या 'ऋ' संस्कृत में 'ऋ' थी किन्तु गुजराती में 'रु' है। t अंग्रेज़ी में 'ट' जैसी ध्वनि है तो फ्रांसीसी में 'त' जैसी। आशय यह है कि हमारा ध्यान ध्वनियों पर होना चाहिए और इस दृष्टि से सतर्क रहना चाहिए। ऐसा न हो कि लिपि-चिह्न की अनेकरूपता हमें भटका दे। कभी-कभी एक भाषा में भी यह गड़बड़ी मिलती है। अंग्रेज़ी में u 'अ' भी है, 'उ' भी; ch 'च' भी है और 'क' भी।

यही बात वर्तनी के बारे में भी है। वर्तनी और उच्चारण में अंतर हो तो बड़ी सावधानी से अपने निष्कर्ष निकालने चाहिए। ऐसी वर्तनी शब्द के पुराने

रूप या पुराने उच्चारण को (psychology, talk, daughter) तो प्रकट करती है, किन्तु वर्तमान उच्चारण (साइकॉलजि, टॉक, डॉटअ) भिन्न होता है।

(छ) व्युत्पत्ति में शब्द कभी-कभी तोड़कर अर्थात् उसके उपसर्ग मूल शब्द एवं प्रत्यय को अलग-अलग करके (अ+कुश+ल+ता) देखना भी उपयोगी होता है।

(ज) बलाघात तथा अनुतान आदि का ध्वनियों पर कभी-कभी ऐसा प्रभाव पड़ता है कि परिवर्तन के सामान्य नियम से उन्हें अलग कर देता है। अतः इस पक्ष पर भी ध्यान आवश्यक है।

(झ) ऊपर ध्वनि चार्ट बनाने की बात कही गई है। कभी-कभी सादृश्य के कारण असाधारण परिवर्तन भी हो जाते हैं। संस्कृत मह्यं >प्राकृत मज्झं से हिन्दी 'मझ' बनना चाहिए था किन्तु बन गया 'मुझ'। इससे यह निष्कर्ष निकालना भ्रामक होगा कि संस्कृत अ>प्राकृत अ>हिन्दी उ है। वस्तुतः यह तुभ्यं> तुज्झं>तुझ का प्रभाव है। यों ध्वनियों का परिवर्तन प्रायः बहुत नियमित होता है। हाँ, इसमें सबसे बड़ीग ड़बड़ी सादृश्य के कारण पड़ती है, अतः इस पर भी हमारा ध्यान होना चाहिए।

(ञ) इसी प्रकार किसी भाषा में गृहीत परवर्ती शब्द भी पूर्ववर्ती ध्वनि-नियम के अनुसार नहीं चलता। ऐसी स्थिति में यदि उसके बाहर से आने का ध्यान नहीं रखा गया तो निष्कर्ष ग़लत हो जाएगा। उदाहरण के लिए संस्कृत 'कृष्ण' का हिन्दी में नामों में 'किशुन' रूप भी मिलता है। इसके आधार पर यह निष्कर्ष निकालना ग़लत होगा कि संस्कृत ष हिन्दी में श हो जाता है। वर्ष>बरस, षष्टि>साठ, षंड>साँड़ में ष>स है। वस्तुतः 'किशुन' तद्भव शब्द नहीं है। संस्कृत से हिन्दी काल में 'कृष्ण' शब्द मूल रूप में आया और उसका यह विकास है अर्थात् तथा-कथित अर्ध-तद्भव है।

(ट) कुछ लोग व्युत्पत्ति में 'अनुमान' लगाना अवैज्ञानिक मानते हैं। मैं इस मत से असहमत हूँ। बिना अनुमान या अंदाज़ के तो हम आगे बढ़ ही नहीं सकते। हाँ यह नहीं कि हम अपने अनुमान को ही सिद्ध करने के लिए कटिबद्ध हो जाएँ। हमें चाहिए कि अपने अनुमान को शुद्ध वैज्ञानिक दृष्टि से देखें। यदि वह उपर्युक्त नियमों के बिल्कुल अनुकूल हो तो उसे मानें, अन्यथा छोड़ दें। अनुमान आगे बढ़ने का एक आधार होता है, किन्तु यह आवश्यक नहीं कि वह सत्य ही हो। इस प्रकार अनुमान करने के बाद उसके प्रति तटस्थ होकर हमें छानबीन करनी चाहिए।

(ठ) ध्वन्यात्मक दृष्टि से व्युत्पत्ति ठीक मिल जाने पर उसके अर्थ पर भी विचार कर लेना चाहिए। किन्तु ऐसा नहीं कि अर्थ में अन्तर हो तो उसे ग़लत मान लें। अन्तर पर विचार कर लेना चाहिए और यह देखना चाहिए कि अर्थ-परिवर्तन के कारण वह अन्तर सम्भव है या नहीं। उदाहरण के लिए संस्कृत 'पशु', अंग्रेज़ी 'फ़ी' एक हैं। पशु भी कभी रुपये-पैसे के स्थान पर दिये-लिये जाते

थे अतः ऐसा अर्थ-परिवर्तन समझ में आता है, किन्तु हिन्दी के 'आम' (फल) को संस्कृत 'आम्र' से संबद्ध मान लेने पर हिन्दी 'आम' (सामान्य) उससे नहीं जोड़ सकते। यह अलग शब्द है जो अरबी से आया है।

इस तरह अनुमान से प्रारंभित फिर ध्वन्यात्मक व्यवस्था, एवं अर्थ की दृष्टि से पूर्णतः परीक्षित व्युत्पत्ति ही सच्ची व्युत्पत्ति हो सकती है।

कुछ शब्द ऐसे होते हैं जो विश्व की अनेक भाषाओं में पहुँच जाते हैं। उनकी व्युत्पत्ति पर विचार करने में यह भी देखना होता है कि वे कहाँ-कहाँ से अर्थात् किस रास्ते गए : यह ध्वनि के अध्ययन के आधार पर होता है। उदाहरण के लिए संस्कृत का शब्द है 'शृंगवेर' जिसका अर्थ है 'अदरक'। यहाँ संक्षेप में इसका इतिहास देखा जा सकता है। संस्कृत में एक शब्द है शृंग (सींग), इसी के आधार पर सींग-जैसी होने से इस 'जड़' (वेर) को 'शृंगवेर' कहा गया। वस्तुतः 'शृंग' और 'वेर' संस्कृत के अपने शब्द नहीं हैं। ये द्रविड़ परिवार के हैं और इनका अर्थ क्रमशः 'सींग' और 'जड़' है। अर्थात् शृंगवेर ऐसी जड़ है जो सींग जैसी हो। यही संस्कृत में शृंगवेर पालि में सिंगिवेर तथा प्राकृत में सिंगबेर हो गया। पालि-प्राकृत से जाकर यह शब्द सिंहली में 'इंगुरु', मध्य ईरानी में Sngypyl तथा ग्रीक में Zingiberris बना। फिर एक तरफ़ मध्य ईरानी से (Sngrvel) आर्मेइक होते यह Zanghebhil रूप में हिब्रू में पहुँचा तो दूसरी ओर आर्मेइक से अरबी में Zanjabil और तुर्की में Zencefil रूप में। अरबी से स्वाहिली (Tanga-wizi) आदि के कई अफ्रीकी भाषाओं में यह गया। अरबी से ही जार्जियन (Janjapili) बना। अब ग्रीक से यह लैटिन (Zingiber) में पहुँचा और वहाँ से यह एक ओर तो इटैलियन (Zenzero), स्पैनिश (Jengibre), पुर्तगाली (Gengivre), फ्रैंच (Gingembre), अंग्रेज़ी (Ginger), जर्मन (Ingwer) तथा डच (Gember) आदि में गया और दूसरी ओर हंगेरियन (Gyomder) आदि में। रूसी, वेल्श, बलगेरियन, अल्बानियन, रूमानियन, उइगुर, फ्रिज़ियन, इस्तो-वियन, स्वेडिश, फ़िनिश आदि में भी विभिन्न रूपों में यही शब्द है। यह है संस्कृत 'शृंगवेर' की विश्वविजयिनी यात्रा। संस्कृत 'शर्करा' शब्द भी इसी प्रकार संसार की अनेकानेक भाषाओं में शकर, शूगर, साख़र, सैक्रीन आदि रूपों में आज प्रयुक्त हो रहा है।

कभी-कभी व्युत्पत्तियों में बड़ी जटिल समस्याएँ आ जाती हैं। उदाहरण के लिए संस्कृत 'सपत्नी' (इसका शाब्दिक अर्थ है 'पत्नी सहित' अर्थात् 'और पत्नी वाला') से हिन्दी 'सौत' का विकास है। प (>ब>व>) उ होकर 'स' के 'अ' से मिलकर 'औ' हो जाता है और 'न' के लोप से 'त' शेष रह जाता है। किन्तु इसी से सम्बद्ध शब्द पंजाबी में है 'सौकन' या 'सौकण'। इसमें 'स', 'औ' 'न' या 'ण' की कोई समस्या नहीं है। किन्तु 'क' कहाँ से आ गया ? किसी भी तरह से इसका समाधान नहीं हो रहा था। एक शिक्षाग्रंथ में मुझे यह संकेत मिला कि पुराने ज़माने में कुछ प्रदेशों के लोग 'त्न' का ठीक उच्चारण नहीं कर पाते थे, वे

'त्न' को 'त्क्न' बोलते थे। इस संकेत के प्रकाश में अनुमान यह लगता है कि इस उच्चारण-दोष ने ही 'त्न' का 'त्क्न' कर दिया फिर त् के लोप और क् न् के बीच 'अ' के आगमन से 'सौकण' बन गया।

नमूने के तौर पर नीचे दो शब्दों ('तुम' और 'आप') की व्युत्पत्ति पर कुछ विस्तार से विचार किया जा रहा है।

तुम

'तुम' शब्द विभिन्न भाषाओं और बोलियों में विभिन्न रूपों (बांगरू तम, तम्ह, थम; कौरवी तुम, तम; ताजुज़्बेकी तम; ब्रज तुम; कनौजी तुम, तुम्ह; बुन्देली तुम; निमाड़ी तुम; अवधी तुम, तुम्ह; बघेली तुम्ह; छत्तीसगढ़ी तुम; दक्खिनी तुम; राजस्थानी तुम, तम; पहाड़ी तुम, तुमूँ, तिमि; जिप्सी तिमी; गुजराती तमें, तम; मराठी तुम; बंगाली-आसामी तुमि; उड़िया तुम्ह आदि) में मिलता है। इसकी व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में बहुत विवाद है। कामता प्रसाद गुरु सं० त्वम्>प्रा० तुम्ह से इसे व्युत्पन्न मानते हैं। श्यामसुन्दर दास इसे सं० त्वम् >प्रा० तुमं से मानते हैं। पिशेल ने इस प्रसंग में 'यूयम' के स्थान पर संस्कृत में तुष्मे की कल्पना की है। तेसितोरी, सुकुमार सेन धीरेन्द्र वर्मा तथा उ० ना० तिवारी आदि सभी इसी से 'तुम' को विकसित मानते हैं।

मेरे विचार में तुम की व्युत्पत्ति में 'त' की समस्या इतनी सामान्य एवं सीमित नहीं है, जितनी उसे प्रायः विद्वानों ने माना है। ऐसी स्थिति में इस प्रश्न को थोड़े विस्तार से देखना अपेक्षित है। वस्तुतः 'तुम' के अपभ्रंश, प्राकृत तथा पालि में प्रयुक्त पूर्ववर्ती रूपों की प्राप्ति में कोई कठिनाई नहीं है। इसका विकास पालि 'तुम्हे' प्राकृत, अपभ्रंश 'तुम्हे', परवर्ती अपभ्रंश या अवहट्ट 'तुम्ह' से स्पष्ट है। वास्तविक कठिनाई है पालि के 'तुम्हे' के पूर्ववर्ती रूप की प्राप्ति में। वैदिक संस्कृत तथा संस्कृत में प्रथमा बहुवचन में रूप था 'यूयम्'। वस्तुतः 'यूयम्' रूप भी कदाचित् उत्तम पुरुष बहुवचन से प्रभावित बाद का रूप था। जैसा कि मूल 'युष्मद्' तथा बहुवचन के अन्य रूपों 'युष्मान्', 'युष्माभिः', 'युष्मभ्यम्', 'युष्मत्', 'युष्माकम्' तथा 'युष्मासु' से स्पष्ट है, 'यूयम्' का प्राचीन रूप 'यूषम्' रहा होगा। किन्तु 'तुम्हे' या 'तुम' आदि का सम्बन्ध 'यूषम्' या 'यूयम्' से नहीं ज्ञात होता। वैदिक संस्कृत में उत्तम पुरुष 'अस्मे' की भाँति मध्यम पुरुष में 'युष्मे' रूप मिलता है। इनका प्रयोग सम्प्रदान और अपादान में हुआ है, किन्तु कभी-कभी कर्त्ता में भी ये प्रयुक्त हुए हैं। पालि 'तुम्हे' इस वैदिक 'युष्मे' के निकट है। किन्तु 'य' का 'त' होना समझ में नहीं आता। इसी कठिनाई के कारण पालि-प्राकृत 'तुम्हे' की उत्पत्ति कल्पित रूप 'तुष्मे' से मानी जाती है। यह कल्पित रूप पिशेल का बनाया हुआ है। बाद में जैसा कि ऊपर संकेत किया जा चुका है, अन्य प्रायः सभी विद्वानों ने इसी मत को स्वीकार किया है। युष्मे के आधार पर 'तुष्मे' रूप की कल्पना करने में 'त' का आधार जहाँ तक मैं समझता हूँ बहुत प्रौढ़ नहीं

अन्य पुरुष (बहुवचन)

	मूल भारोपीय	ग्रीक	लैटिन	अवेस्ता	वैदिक	संस्कृत	पालि
कर्ता	*ius	umeis	vos	yuzem	यूयम्, युष्मे	यूयम्	तुम्हे वो
कर्म	*ues, usme, uos	umas	vos	vo	युष्मान्	युष्मान्, वः	तुम्हे, वो, तुम्हं, तुम्हाकं
करण	*usme	×	vobis	×	,,	युष्माभिः	तुम्हेहि, तुम्हेभि, वो
संप्रदान	*ues, usmebh	umin	vobis	yus'maoyo	युष्मभ्यम्, युष्मे	युष्मभ्यम्, वः	तुम्हाकं, तुम्हे, वो
अपादान	*usmed	×	vobis	yus'mat	युष्मत्, युष्मे	युष्मत्	तुम्हेहि, तुम्हेभि, वो
सम्बन्ध	*ues, usmei, uos	umon	vestrum	yus'makem	युष्माकम्	युष्माकम्, वः	तुम्हाकं, तुम्हे, वो
अधिकरण	*usmin	ummin	vobis	×	युष्मे	युष्मासु	तुम्हेसु

है । यदि अन्य प्राचीन सगोत्रीय भाषाओं में 'त' वाले रूप मिलते तो इस कल्पना में कोई कठिनाई नहीं थी। किन्तु प्राप्त रूपों में 'त' कहीं भी नहीं है ।(दे०पृ० 118)

पीछे की रूपावलियों से स्पष्ट है कि न तो मूल भारोपीय के पुर्नर्निमित रूप में मध्यम पुरुष बहुवचन में 'त' है और न ग्रीक, लैटिन, अवेस्ता आदि में । यहाँ स्थानाभाव के कारण और रूप नहीं दिये गये हैं, किन्तु उल्लेख्य है कि प्राचीन आइरिश, गॉथिक, ओल्ड-हाई-जर्मन, लिथु०, प्रशन तथा प्राचीन चर्च स्लाव आदि अन्य प्राचीन सगोत्रीय भाषाओं में भी यही स्थिति है । कहीं भी 'त्' नहीं है। किसी ऐसी भाषा में जिसका साहित्य उपलब्ध हो, कल्पित रूप मानने का अर्थ यह होता है कि वह रूप लोक में व्यवहृत था, किन्तु साहित्य में न आ सका अर्थात् अलिखित (unrecorded) रह गया । वस्तुतः वर्तमान समस्या यदि मात्र *तुष्मे तक ही सीमित होती तो मान लिया जाता कि यह रूप लोकप्रचलित था, और साहित्य में न आ सका । किन्तु यहाँ समस्या कुछ और ही है। उपर्युक्त रूपों को साथ-साथ देखने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि केवल 'तुम्हे' में ही 'त' की समस्या नहीं है । यह समस्या पालि के बहुवचन के सभी रूपों के सम्बन्ध में है । ऐसी स्थिति में संस्कृत में *तुष्मे रूप की कल्पना के विरुद्ध दो बातें आ जाती हैं : (अ) संस्कृत की सगोत्रीय किसी भी भाषा में बहुवचन में 'त' वाले रूप नहीं हैं। (आ) यदि इसके बावजूद पालि 'तुम्हे' के समाधान के लिए संस्कृत में *'तुष्मे' की कल्पना करें तो यह श्रृंखला यहीं नहीं समाप्त हो सकती । पालि के सभी कारकों के रूपों के लिए संस्कृत में इसी प्रकार की कल्पना (जैसे—*'तुष्मान्', *'तुष्माभिः', *'तुष्मभ्यम्', *'तुष्माकम्', तथा *'तुष्मासु' आदि) करनी पड़ेगी। अर्थात् यह मानना पड़ेगा कि संस्कृत बहुवचन में 'यु—' वाले रूपों के साथ 'तु—' वाले रूपों की भी एक पूरी श्रृंखला चल रही थी । साहित्य में एक-दो रूपों के न आ सकने की बात तो समझ में आती है, किन्तु इन दोनों श्रृंखलाओं में एक ही साहित्य में आई और दूसरे के एक ओर से सारे के सारे रूप साहित्य में आए बिना रह गए, यह बात गले से उतरती नहीं। यदि 'यु—'और 'तु—' वाले इतने अधिक रूप लोक में प्रचलित थे और 'यू—' के सभी रूप साहित्य में आ गए तो कोई कारण नहीं था कि 'तु—' का एक भी रूप न आए ।

इस प्रकार पिशेल की यह कल्पना बहुत समीचीन नहीं ज्ञात होती । प्रश्न उठता है कि फिर इन रूपों का विकास कैसे हुआ ? मुझे एक ही बात सम्भव लगती है । संस्कृत में सभी रूप—एकवचन में 'त—' से प्रारम्भ होते थे और बहुवचन में 'य—' से; किन्तु पालि में एकवचन और बहुवचन दोनों ही में सभी रूप 'त—' से ही प्रारम्भ होने वाले हो गए । लगता है, संस्कृत और पालि के सन्धिकाल में जब पालि के रूप विकसित हो रहे थे, एकवचन के रूपों का बहुवचन के रूपों पर सामूहिक प्रभाव पड़ा और फल यह हुआ कि सभी रूपों में 'य —' के स्थान पर 'त —' हो गया । भाषाओं में इस प्रकार के प्रभाव देखे गए हैं । पालि में ही उत्तम पुरुष प्रथमा बहुवचन रूप 'मयं' मिलता है । संस्कृत में यह रूप 'वयं'

था। वयं से मयं होने से संस्कृत के एकवचन के रूपों में 'म' के आधिक्य (माम, मा, मया, मह्यम्, मे, मत्, मम्, मे, मयि) का ही हाथ है। इन रूपों में आनेवाले 'म' ने 'वयं को प्रभावित किया और 'व' के स्थान पर पर 'म' आ गया। इस प्रकार तुम का विकास निम्न रूप में हुआ माना जा सकता है :—

वैदिक संस्कृत युष्मे>लौकिक संस्कृत>*युष्मे>संस्कृत-पालि सन्धि-कालीन भाषा (एकवचन के रूपों के प्रभाव के कारण) *तुम्हे>पालि तुम्हे> अपभ्रंश तुम्हे>परवर्ती-अपभ्रंश तुम्ह>हिन्दी तुम।

आप

पिछली सदी में पादरी स्टीवेन्स ने द्रविड़ शब्द 'आव' से आदरार्थी 'आप' का सम्बन्ध माना था। द्रविड़ में 'आव' है, जिससे कुर्ग अवु, अव; तेलुगु आयन, अवं; तमिल एवण आदि बनते हैं, किन्तु इसका अर्थ 'आप' न होकर 'वह' है। बीम्ज़, चटर्जी, धीरेंद्र वर्मा आदि संस्कृत में आत्मन् से इसको विकसित मानते हैं (सं० आत्मा>*अत्वाँ>अत्बाँ>अत्पा (अशोक का गिरनार शिलालेख)>अप्प >आप)। संस्कृत में आत्मन् का अर्थ आत्मा, अपना, बुद्धि, स्फूर्ति, पुत्र आदि तो है, किन्तु इसके साथ आदर का भाव नहीं है जिसके आधार पर आदरार्थी 'आप' को इसके साथ सम्बद्ध किया जा सके। पालि, प्राकृत, अपभ्रंश में भी इसके प्रयोग में कहीं भी ऐसा भाव नहीं है। ऐसी स्थिति में 'आत्मन्' को इसका स्रोत नहीं माना जा सकता। मुझे तीन और सम्भावनाएँ दिखाई पड़ती हैं। (क) यदि स्टीवेन्सन का 'व' (व>ब>प) का प होना माना जाय तो सं० 'भवान्' से 'आप' का विकास (भवान्>*भावन्>आप) असम्भव नहीं है। (ख) संस्कृत में एक शब्द 'आप्त' है, जिसका अर्थ 'बुद्धिमान', 'प्रामाणिक' आदि है। आप्त (>*अप्प> आप) से इसका विकास हो सकता है। (ग) द्रविड़ भाषाओं में एक मूल शब्द 'अप्प' है जो ध्वनि और आदरार्थता में हिन्दी आप से दूर नहीं है : तमिल अप्पन (पिता), अप्पच्चि (पिता), अप्पातै (बड़ी बहन); मलयालम अप्पन (पिता); कन्नड़ अप्प (पिता), अप (पिता), तुलु अप्पे (माता); तेलुगु अप्प (पिता, माता, बड़ी बहन); गोंडी आपोड़ाल (पिता); कुवी अप्प (दीदी); प्राकृत अप्प (पिता) हिन्दी-उर्दू आपा (माँ, बड़ी बहन) भी यही है। कन्नड़ में 'अप्पा' नामों के साथ आदरार्थ (नागप्पा, करिअप्पा, चन्नप्पा, निम्मप्पा) जोड़ा जाता है। तेलुगु, तमिल, मलयालम में भी एक सीमा तक आदरार्थ में इसका प्रयोग होता है। मराठी अप्पाजी, अप्पाराव में भी यही है। इस प्रकार इस अप्प से भी 'आप' का सम्बन्ध हो सकता है।

उपर्युक्त में द्रविड़ 'अप्प' से 'आप' के निकलने की सम्भावना मेरे विचार में सर्वाधिक है। दूसरी सम्भावना (यद्यपि द्रविड़ 'अप्प' की तुलना में कम) सं० 'आप्त' से हो सकती है।

भ्रामक व्युत्पत्ति

व्युत्पत्ति के प्रसंग में भ्रामक व्युत्पत्ति भी विचारणीय है। कभी-कभी लोग किसी अन्य भाषा के अपरिचित शब्द को ध्वनि-साम्य (या कभी-कभी अर्थ-साम्य भी) के कारण अपने किसी परिचित शब्द के समान मान बैठते हैं, और उसी रूप में उस अपरिचित शब्द का उच्चारण करने लगते हैं। जैसे हिन्दी प्रदेश के कुछ भागों में लोग 'लाइब्रेरी' को 'रायबरेली' कहते हैं। हुआ यह कि लोग रायबरेली (शहर का नाम) शब्द से परिचित थे। 'लाइब्रेरी' उनके लिए नया था, अतः उसे रायबरेली मानकर उसी रूप में बोलने लगे। ऐसी प्रवृत्ति को अंग्रेज़ी में 'फ़ोक एटिमॉलजी' (folk etimology) या 'पॉप्यूलर (Popular) एटिमॉलजी' कहते हैं। हिन्दी में लोक-व्युत्पत्ति, लौकिक व्युत्पत्ति, भ्रामक व्युत्पत्ति, या भ्रमात्मक व्युत्पत्ति आदि कई नामों से इसे अभिहित करते हैं। चूँकि ऐसा करने में दो तत्त्वतः असम्बद्ध शब्दों को जनता (people, folk) एक मान लेती है, अर्थात् दोनों की व्युत्पत्ति एक मान बैठती है, अतः ऐसे नाम दिए गए हैं।

कुछ लोगों ने 'हाब्सन-जाब्सन' नाम का प्रयोग भी इस प्रकार की व्युत्पत्तियों के लिए किया है। इस शब्द की कहानी बड़ी दिलचस्प है। अंग्रेज़ सिपाहियों ने भारत में आने पर मुहर्रम में पहले-पहल जब शिया मुसलमानों को 'हसन-हुसैन' चिल्लाते सुना तो उनकी समझ में कुछ न आया। बाद में ध्वनि-साम्य के कारण उन्होंने यह सोचा कि ये लोग कदाचित् 'हाब्सन-जाब्सन' चिल्ला रहे हैं। परिणामतः उनके लिए 'हसन-हुसैन' 'हाब्सन-जाब्सन' बन गया। इस प्रकार 'हाब्सन-जाब्सन' भ्रामक व्युत्पत्ति का अच्छा उदाहरण है। इस प्रसंग में मुझे अपने बचपन की एक घटना याद आ रही है। एक बार एक अनपढ़ बूढ़े ने आन्ध्र प्रदेश का नाम सुनकर मुझ से पूछा कि क्यों भइया, क्या वहाँ ज़्यादातर लोग 'आन्हर' (=अंधे) हैं, जो उसका यह नाम पड़ा है। भोजपुरी में 'आन्हर' का अर्थ 'अंधा' होता है। उस बूढ़े की समझ में 'आन्ध्र' तो आया नहीं, उसने समझा कि 'आन्ध्र' कदाचित् उसकी अपनी बोली का 'आन्हर' ही है, और उसकी बोली में आन्हर का अर्थ अन्धा था, अतः उसने आन्ध्र प्रदेश को 'आन्हर प्रदेश' अर्थात् 'अन्धों का प्रदेश' समझ लिया। इस तरह उसने अपने ढंग से 'आन्ध्र प्रदेश' की व्युत्पत्ति कर डाली।

हिन्दी का एक अल्पप्रचलित शब्द है 'हाथीचक'। यह एक पौधे का नाम है जो दवा के काम आता है। मूलतः यह शब्द अरबी का है जो इतालवी भाषा में आकर Articioceo तथा अंग्रेज़ी में Art Choke हो गया। अंग्रेज़ों के साथ भारत में आने पर इसका प्रचार कदाचित् बंगाल में सर्वप्रथम हुआ। वहाँ इसका नाम एक अपरिचित और अस्पष्ट शब्द था अतः लोगों ने 'आर्टी' को 'हाथी' कर दिया तथा 'चोक' को 'चोख'। 'हाथी' और 'चोख' बँगला में सार्थक हैं। इस तरह बँगला में भ्रामक व्युत्पत्ति के कारण यह शब्द 'हाथी चोख' हो गया। हिन्दी

में यही 'हाथी चक' है। भोजपुरी प्रदेश में इसे 'हाथीचिघार' अर्थात् 'हाथी की चिग्घाड़' कहते हैं। 'चिग्घाड़' शायद 'चोक' को 'चोंकरना' (भोजपुरी में चिग्घाड़ना को 'चोंकरना' भी कहते हैं) समझ लेने के कारण हुआ।

इसी प्रकार एक अच्छा उदाहरण 'हीराकुण्ड' है। उड़ीसा का प्रसिद्ध बाँध है 'हीराकुद'। उड़िया भाषा में 'कुद' का अर्थ है 'नदी द्वारा घिरा स्थान'। यह स्थान नदी द्वारा घिरा है, तथा यहाँ कभी हीरों की खोज हुई थी अतः इसका नाम 'हीराकुद' पड़ा। यह शब्द जब हिन्दी की पत्र-पत्रिकाओं में आया तो लोगों (अनपढ़ लोग ही नहीं; पढ़े-लिखे सम्पादकों एवं लेखकों) ने सोचा कि 'हीरा' तो ठीक है किन्तु यह 'कुद' क्या है ? सम्भव है यह 'कुण्ड' हो। बस यह सोचना था, इसका नाम हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं में 'हीराकुण्ड' हो गया। अब भी हिन्दी में इसे 'हीराकुण्ड' ही कहते और लिखते हैं। इस प्रकार शब्द भ्रामक व्युत्पत्ति के शिकार सर्वदा अनपढ़ों के हाथ ही नहीं, कभी-कभी पढ़े-लिखे लोगों के हाथ भी हो जाते हैं।

पुलिस और सेना के सिपाही अब तो काफ़ी पढ़े-लिखे होते हैं किन्तु पहले यह स्थिति नहीं थी। परिणाम यह हुआ कि अनेक अंग्रेज़ी शब्द उनकी बोलचाल में भ्रामक व्युत्पत्ति के चक्कर में पड़कर कुछ से कुछ हो गए। ख़ज़ाने पर पहरा देने वाले सिपाही के पास यदि आप 1950 के पूर्व रात में जाते तो वह ज़ोर से कहता, 'हुकुम सदर'। वस्तुः उसको सिखाया गया था 'हू कम्स देयर' (कौन आ रहा है), किन्तु अंग्रेज़ी न जानने के कारण उसके लिए 'हू कम्स देयर' निरर्थक था अतः उसने इसे 'हुकुम सदर' समझा और यही कहने लगा। 'हुकुम सदर' अर्थात् 'सदर का हुक्म है कि न आइए'। इसी प्रकार सेना में 'स्टैन्ड एट ईज़' को 'ठन्डा टी' कहते रहे हैं। 'ठन्डा टी, अर्थात् 'ठंडी चाय' की तरह अर्थात् शान्त।

बनारस के रिक्शे वाले तथा मज़दूर आदि हिन्दू यूनिवर्सिटी के 'आर्ट कॉलिज' को 'आठ कॉलिज' कहते रहे हैं। 'आर्ट' उनके लिए अपरिचित और अस्पष्ट था अतः उसे 'आठ' कर लिया। इसी आधार पर 'आर्ट कॉलिज' से आगे स्थित 'साइन्स कॉलिज' उनकी भाषा में 'नौ कॉलिज' (जो आठ के बाद आए) कहलाता है। एक बार मैंने एक रिक्शे वाले से बनारस स्टेशन पर कहा—मुझे हिन्दू विश्वविद्यालय ले चलो। उसने तुरन्त पूछा—कहाँ जाएँगे बाबू जी, 'आठ कॉलिज' या 'नौ कॉलिज'। मैं उसके प्रश्न को बिल्कुल न समझ सका। फिर किसी स्थानीय व्यक्ति ने हमारे-उसके बीच दुभाषिए का काम करके समस्या सुलझाई।

'ऑनरेरी मैजिस्ट्रेट' का 'ऑनरेरी' शब्द कुछ भोजपुरी क्षेत्रों में 'अन्हेरी' हो गया है। 'ऑनरेरी मैजिस्ट्रेट' को लोग 'अन्हेरी के साहब' कहते हैं। यहाँ ध्वनि और अर्थ दोनों साम्य, भ्रामक व्युत्पत्ति की पृष्ठभूमि में काम कर रहा है। 'अन्हेरी' ऑनरेरी में ध्वनि साम्य है ही, अर्थ साम्य यह है कि 'ऑनरेरी मैजिस्ट्रेट' वैतनिक तो होते नहीं अतः उनके यहाँ रिश्वत का बोलबाला होता है और भोजपुरी में 'अन्हेरी' का अर्थ होता है 'अन्याय'।

कहीं-कहीं ऑनरेरी मैजिस्ट्रेट के 'ऑनरेरी' शब्द को लोगों ने 'अनाड़ी' भी कर दिया है। यहाँ भी ध्वनि तथा अर्थ दोनों में साम्य है। अर्थ-साम्य इसलिए है कि ऑनरेरी मैजिस्ट्रेट क़ायदे-क़ानून की नियमित शिक्षा न पाने के कारण इन मामलों में कुछ अपवादों को छोड़कर, प्रायः 'अनाड़ी' से ही होते रहे हैं।

रहीम ने लिखा है :—

रहीमन याचकता गहे बड़े छोट ह्वै जात।
नारायण हूँ को भयो बावन आँगुर गात॥

इसमें 'बावन आँगुर गात' ध्यान देने योग्य है। हिन्दी तथा उसकी बोलियों में बहुत ठिगने व्यक्ति को 'बौना', 'बावन' या 'बावण' आदि कहते हैं। उसे बावन आदि क्यों कहते हैं यह लोगों को स्पष्ट नहीं था। अतः लोगों ने यह सोचा कि 52 अंगुल लम्बा होने के कारण 'बावन' या 'बौना' कहलाता है। रहीस जैसे विद्वान् भी इस भ्रामक व्युत्पत्ति के भ्रम से नहीं बच पाये। वस्तुतः 'बावन' या 'बौना' का सम्बन्ध 52 से बिल्कुल नहीं है। 'बावन' संस्कृत 'वामन' तथा बौना संस्कृत 'वामनक' के तद्भव रूप हैं।

ऐसी प्रवृत्ति विश्व की सभी भाषाओं में मिलती है। मद्रास प्रांत में कभी एक कलक्टर आए थे जिनका नाम 'कालेटपेट'(Colletpet) था। ये कुछ सख़्त थे। बहुत जल्द ही वहाँ की जनता में इनका नाम 'कालापेट्टी' प्रसिद्ध हो गया। काला-पेट्टी' तामिल भाषा का शब्द है जिका अर्थ है 'सख़्त' या 'क्रूर'। इस प्रकार ध्वनि-अर्थ दोनों में साम्य होने के कारण यह परिर्वतन हो गया।

कटक में इसी प्रकार का एक 'मार्कट बाज़ार' है। इसमें 'मर्कट' 'मार्केट' है। उस बाज़ार का नाम पहले कोई मार्केट था। 'मार्केट' शब्द अस्पष्ट था अतः उसे लोगों ने मिलती-जुलती ध्वनि वाला उड़िया शब्द 'मर्कट'(=बंदर, कदाचित् वहाँ बन्दर भी रहे हों) बना दिया। बाज़ार वह है ही, अतः हो गया 'मर्कट बाज़ार'। जिसका अर्थ ऊपर से देखने में लगता है 'बंदर बाज़ार' किन्तु वास्तविक अर्थ है 'बाज़ार-बाज़ार'।

अनेक भारतीय शब्द भी अंग्रेज़ी में जाकर भ्रामक व्युत्पत्ति के चक्कर में कुछ से कुछ हो गये हैं। उदाहरणार्थ अंग्रेज़ी में एक शब्द है बॉबरे (Bobbery) जिसका अर्थ होता है—'शोरगुल करती हुई क़तार'(चैम्बर्स डिक्शनरी 1960, पृ०115) यह सुनकर कितना आश्चर्य होता है कि मूलतः यह हिन्दी शब्द 'बाप रे' है। इसमें भ्रामक व्युत्पत्ति ठीक उस रूप में तो नहीं काम कर रही है, किन्तु बॉबरे अंग्रेज़ी शब्दों एवं रूपों के अनुरूप है, अतः अंग्रेज़ों ने 'बाप रे' सुन उसे न समझने के कारण 'बॉबरे' कर लिया।

इसी तरह 'शाह शुजाउलमुल्क' (नाम) अंग्रेज़ी में 'चा शूगर मिल्क' (चाय, चीनी, दूध; 'इंडियन 'वर्ड्स इन इंगलिश' 1954, पृ० 48) हो गया है।

पटना में एक बाग़ का नाम 'गर्दनिया' या 'गर्दनी बाग़' है। यह 'गर्दनिया'

शब्द असल में 'गार्डन' का भ्रामक व्युत्पत्ति के कारण परिवर्तित रूप है। 'गार्डन' का अर्थ है 'बाग़'। उस बाग़ का पुराना नाम किसी अंग्रेज़ के नाम पर गार्डन था। 'गार्डन' अस्पष्ट एवं अपरिचित था अतः मिलता-जुलता शब्द गर्दनिया या गर्दनी (गर्दन का भोजपुरी आदि में प्राप्त रूप) उसके स्थान पर आ गया और बाग़ था ही, अतः बाग़ जुड़ गया और हो गया 'गर्दनिया बाग़' अर्थात् 'बाग़-बाग़'। अब यह बाग़ कट गया है, कॉलोनी है और इसका नाम है 'गर्दनी बाग़ कालोनी'।

'पावरोटी' शब्द भी ऐसा ही है। 'पाउ' पुर्तगाली भाषा का शब्द है और इसका अर्थ है 'रोटी'। 'पाउरोटी' भारत में सर्वप्रथम पुर्तगाली ले आए और उन्होंने उसे 'पाउ' कहा। स्पष्टता के लिए लोगों ने इसके साथ 'रोटी' जोड़-कर इसे 'पाउरोटी' बनाया। पर 'पाउ' शब्द अस्पष्ट था। रोटी बड़ी थी ही। यह सोचकर कि यह 'पाउ' शायद 'पाव' (1/4 सेर) हो, (पाव भर की एक रोटी) उसका भ्रामक व्युत्पत्ति प्राप्त रूप 'पावरोटी' हो गया। इधर अंग्रेज़ी 'डबल' ने 'पाव' को हटा दिया और 'पावरोटी' शब्द अब 'डबलरोटी हो गया है।

कुछ दिन पूर्व तक 'अँगरेज़' को हिन्दी प्रदेश के अनेक क्षेत्रों की जनता 'रँगरेज' कहती रही है। यहाँ भी वही बात है। अँगरेज़ उनके लिए प्रारम्भ में अपरिचित शब्द था किन्तु उससे ध्वनि साम्य रखने वाला 'रँगरेज़' परिचित शब्द था अतः लोग 'अँगरेज़' के स्थान पर 'रँगरेज़' मान बैठे। अनेक लोक गीतों में अँगरेज़ के स्थान पर 'रँगरेज़' मिलता भी है :—

देसवा के कइलस बर्बाद रँगरेज़ बेइमनवा। (भोजपुरी)

इसी तरह 'ऐक्टिंग रजिस्ट्रार' को कहीं-कहीं 'एकटाँग रजिस्ट्रार' कहा जाता रहा है। यहाँ भी ध्वनि और अर्थ दोनों साम्य हैं। अर्थ साम्य इसलिए कि स्थायी व्यक्ति ही दोनों टाँगों से टिक सकता है, अतः 'ऐक्टिंग' निश्चय ही 'एक टाँग' (अर्थात् एक पैर का) कहलाने का अधिकारी है।

'ब्रेकवान' का बृखभान; चेम्सफ़ोर्ड (वाइसराय का नाम) का कुछ भोजपुरी क्षेत्रों में 'चिलमफोड़' (यह कहा जाता है कि वह धूम्रपान का विरोधी था और उसने चिलम फोड़ दी थी); 'कैम्पबेल' का 'कम्बल'; 'चार्ज शीट' का 'चार शीट' (जो चार शीट काग़ज़ पर लिखी हो), 'लाइब्रेरी' का 'रायबरेली' (एक शहर के प्रचलित नाम के आधार पर); 'सिगनल' का 'सिकन्दर'; 'अस्सरै नौ' का 'साढ़े नौ'; अरबी 'इंतिक़ाल' का हिन्दी 'अंतकाल' (अंतिम समय=मृत्यु); अँग्रेज़ी 'ऐडवांस' का भोजपुरी में 'अठवांस' (आठवाँ अंश); 'बनर्जी' का 'बानर जी' (हाब्सन-जाब्सन नामक प्रसिद्ध कोश में); 'ऐंडरसन' (नाम) का मराठी में 'इन्द्रसेन'; 'जॉन मार्ले' नाम का कुछ हिन्दी क्षेत्रों में 'जान मार ले'; 'मैकेंज़ी' नाम का 'मक्खनजी'; 'क्वार्टर गार्ड' का 'कोतलगारद' तथा अँग्रेज़ी शब्द 'टैन्डेम' (Tandem, एक सवारी का नाम) का हिन्दी में 'टमटम' (उसकी घंटी टमटम

बजती था कदाचित् इसी कारण यह परिवर्तन हुआ) कुछ अन्य उदाहरण हैं।

भ्रामक व्युत्पत्ति सहज प्रक्रिया है। यों कभी-कभी पढ़े-लिखे लोग जान-बूझ कर विदेशी शब्दों को स्वदेशी रूप दे देते हैं। इस प्रक्रिया का परिणाम भी वही होता है जो भ्रामक व्युत्पत्ति का। अंतर केवल यह है कि यह सहज न होकर सप्रयास होता है। मैक्समूलर' का 'मोक्षमूलर'; 'अफ़ग़ानिस्तान' का 'आवागमन-स्थान' (अर्थात् भारत से बाहर जाने और फिर भारत में लौटने का स्थान); 'जापान' का 'जयप्राण'; 'अलेक्ज़ेंडर' का 'अलक्षेन्द्र'; 'मिस्टर' का 'मित्र', 'चीन' का 'च्यवन देश', 'क्राइस्ट' का 'कृष्ण' तथा 'स्कैंडेनेवियन' का 'स्कंधनिवासी' आदि उदाहरण इसी श्रेणी के हैं।

11
शब्दकोशविज्ञान

हिंदी में सामान्यत: 'कोशविज्ञान' शब्द का प्रयोग चलता है, किंतु यहाँ उससे थोड़ा अलगाने के लिए 'शब्दकोशविज्ञान' का प्रयोग किया जा रहा है। शब्द-कोशविज्ञान तो शब्दों के कोश बनाने का विज्ञान है, जबकि कोशविज्ञान वह विज्ञान है जिसका सामान्य रूप से सभी प्रकार के कोशों के बनाने से संबंध है। उदाहरण के लिए कोशविज्ञान का संबंध उद्धरणकोश, लोकोक्तिकोश, ज्ञानकोश, अब्दकोश आदि से भी है, किंतु शब्दकोशविज्ञान का संबंध इनसे नहीं है। वस्तुत: कोशविज्ञान काफ़ी व्यापक है, और इस रूप में शब्दकोशविज्ञान उसका एक अंश है, या उसकी एक शाखा है। प्रस्तुत पुस्तक 'शब्दविज्ञान' है, उसका संबंध मात्र शब्दों के अध्ययन से है, अत: इसमें केवल शब्दकोश बनाने का विज्ञान ही आ सकता है, और इसीलिए शब्दविज्ञान की एक शाखा के रूप में शब्दकोशविज्ञान को ही यहाँ लिया जा रहा है, न कि कोशविज्ञान को। यों आगे प्राय: 'शब्दकोश विज्ञान' के स्थान पर 'कोशविज्ञान' का प्रयोग किया जाएगा तथा 'शब्दकोश' के स्थान पर 'कोश' का, क्योंकि कोश मुख्यत: शब्दों के ही होते हैं। इस तरह 'कोश' बहुत करके शब्दकोश है तथा कोशविज्ञान बहुत करके शब्दकोशविज्ञान है।

अत्यंत प्राचीन काल में मानव को शब्दकोश की आवश्यकता नहीं थी, क्योंकि मानव का सम्बन्ध केवल अपनी भाषा से था। न तो उसके पास अपने पूर्वजों की भाषा का कोई रूप था जिसे जानने-समझने के लिए वह ऐसा प्रयास करे और न एक भाषा-भाषी क़बीले का दूसरे से बहुत अधिक संपर्क ही आवश्यक था कि वह इस दिशा में कुछ करे। साथ ही, कोश का आधार लिपि है। यह आधार भी उनके पास नहीं था, या था भी तो नगण्य रूप में। लिपि के विकास के साथ-साथ मनुष्य को अपने पूर्वजों की रचनाएँ उत्तराधिकार के रूप में मिलीं; जिन्हें समझने के लिए शब्दकोशों की आवश्यकता का अनुभव हुआ। इसी प्रकार व्यापारिक या सांस्कृतिक कारणों से एक भाषा-भाषी जब दूसरे के संपर्क में आये और एक दूसरे की बातें गहराई से समझने की आवश्यकता हुई तो द्विभाषीय कोशों की नींव पड़ी। इस प्रकार समाज के विकास के साथ-साथ अनेक प्रकार के कोशों का विकास हुआ है और होता जा रहा है।

भाषा के अध्ययन-विश्लेषण के कई रूपों के साथ कोश-निर्माण भी सबसे पहले अपने प्रारम्भिक रूप में भारतवर्ष में ही विकसित हुआ। लगभग 1000 ई० पू०

में निघंटुओं की रचना हुई। तब से लेकर 1000 ई० तक, इन दो हज़ार वर्षों में भारत में कई प्रकार के सैकड़ों कोश बनाए गये, जिनमें से 'अमरकोश' आदि बहुत से तो अब भी उपलब्ध हैं। यूरोप में 1000 ई० के पूर्व ठीक अर्थों में कोश नहीं मिलते। रूसी तथा अंग्रेज़ी कोशों का इतिहास तो 16वीं सदी के अन्तिम चरण से ही प्रारम्भ होता है, यद्यपि अब वे संसार में सम्भवतः सबसे आगे हैं।

शब्दकोशों के प्रमुख प्रकार

अब तक विश्व की अनेकानेक भाषाओं में अनेक प्रकार के कोश बने हैं, और आगे उनके प्रकारों की संख्या हमारे जीवन, ज्ञान और आवश्यकताओं के विकास के साथ-साथ बढ़ती ही जा रही है। मुख्यतः निम्नांकित प्रकार के शब्दकोश मिलते हैं :—

व्यक्ति-कोश

किसी एक व्यक्ति (लेखक या कवि) द्वारा प्रयुक्त सभी शब्दों के कोश को व्यक्ति-कोश कह सकते हैं। प्रस्तुत पंक्तियों के लेखक द्वारा सम्पादित तुलसीदास द्वारा प्रयुक्त शब्दों का कोश 'तुलसी शब्द-सागर' इस प्रकार का हिन्दी का पहला कोश था। बाद में मीरा (डॉ० शानी प्रभा), कबीर (परशुराम चतुर्वेदी तथा डॉ० महेन्द्र), सूर, जायसी, केशव आदि के कोश प्रकाशित हुए। अंग्रेज़ी में शेक्सपियर तथा मिल्टन आदि के कोश इसी प्रकार के हैं।

पुस्तक-कोश

किसी एक पुस्तक का कोश पुस्तक-कोश है। बाइबिल कोश, क़ुरान कोश इस दृष्टि से काफ़ी प्रसिद्ध हैं। हिन्दी में 'रामचरितमानस कोश' तथा 'विनय कोश' उल्लेख्य हैं।

भाषा-कोश

भाषाओं के कोश मूलतः तीन प्रकार के मिलते हैं : एकभाषी, द्विभाषी, बहुभाषी। एकभाषी कोष में एक भाषा के शब्दों का अर्थ उसी भाषा में होता है। अंग्रेज़ी में ऑक्सफ़ोर्ड, चैम्बर्स, वैब्स्टर या हिन्दी में हिन्दी शब्द-सागर, इसी प्रकार के कोश हैं। द्विभाषी कोश में एक भाषा के शब्दों का अर्थ दूसरी भाषा में देते हैं। उदाहरणार्थ हिन्दी-रूसी कोश, अंग्रेज़ी-हिन्दी कोश, उर्दू-हिन्दी कोश या संस्कृत-अंग्रेज़ी कोश आदि। बहुभाषी कोश में दो से अधिक भाषाओं के शब्द साथ-साथ होते हैं। जैसे प्राकृत-अंग्रेज़ी-हिन्दी, अंग्रेज़ी-हिन्दी-उर्दू, हिन्दी-मराठी-अंग्रेज़ी, हिन्दी-उर्दू-सिन्धी-अंग्रेज़ी। उपर्युक्त भाषा-कोशों में पहले और दूसरे में अधिक गहराई होती है। तीसरे प्रकार के कोशों की श्रेणी में जो भी कोश अब तक प्रकाशित हुए हैं, प्रायः उन सभी की शब्द-समूह और अर्थ दोनों ही

दृष्टियों से अपनी काफ़ी सीमाएँ हैं। भाषा-कोश, विशेषत: एकभाषी और द्विभाषी प्राय: दो प्रकार के होते हैं : वर्णनात्मक, ऐतिहासिक। तुलनात्मक सामग्री देकर दोनों ही को तुलनात्मक भी बनाया जा सकता है। कोश-साहित्य में वर्णनात्मक और ऐतिहासिक कोशों का विशेष मूल्य है, अत: इन पर नीचे कुछ विस्तार से विचार किया जा रहा है।

वर्णनात्मक कोश

इसमें किसी भाषा में किसी एक काल में प्रयुक्त सारे शब्दों और उनके सारे अर्थों को देते हैं। इस प्रसंग में यह प्रश्न विचारणीय है कि यदि एक शब्द के एक से अधिक अर्थ हैं, तो उन्हें किस क्रम से रखा जाए। हिन्दी में नागरी प्रचारिणी सभा का 'हिन्दी शब्द-सागर' या उसका संक्षिप्त रूप, 'बृहत् हिन्दी कोश' या 'प्रामाणिक हिन्दी कोश' आदि इसी प्रकार के वर्णनात्मक कोश हैं। उनमें अर्थ किसी भी क्रम से न दिये जाकर मनमाने ढंग से जैसे-जैसे याद आते गये, आगे-पीछे दे दिये गये हैं। वस्तुत: वर्णनात्मक कोश में अर्थ प्रचलन के आधार पर क्रमबद्ध किए जाने चाहिए। जो अर्थ सबसे अधिक प्रचलित हो, उसे सबसे पहले और जो अर्थ सबसे कम प्रचलित हो उसे बाद में। कभी-कभी अर्थ के कम या अधिक प्रचलन के सम्बन्ध में विवाद भी खड़ा हो सकता है, और ऐसी स्थिति में, विवाद-ग्रस्त अर्थों में किसी को भी आगे-पीछे रखा जा सकता है।

ऐतिहासिक कोश

किसी भाषा का ऐतिहासिक कोश उसके विकास आदि को समझने के लिए बहुत सहायक होता है। ऐतिहासिक कोश में किसी भाषा में केवल प्रचलित शब्दों या उनके प्रचलित अर्थों को ही न लेकर सारे शब्दों और उस भाषा में प्रयुक्त उनके सारे अर्थों को लेते हैं। वर्णनात्मक कोश में हमने देखा कि अर्थ को प्रचलन के आधार पर रखा जाता है। ऐतिहासिक कोश में अर्थ अपने इतिहास के आधार पर रखे जाते हैं। उदाहरणार्थ, हम मान लें कि किसी भाषा का एक शब्द है 'अ'। उसके 'आ', 'इ', 'ई', 'उ', 'ऊ', ये पाँच अर्थ हैं। यहाँ देखना होगा कि सबसे पहले किस अर्थ का प्रयोग हुआ और फिर किस-किस का। मान लें कि उस भाषा का आरम्भ 1000 ई० से है, और 'आ' अर्थ का प्रयोग 1600 ई० में, 'इ' का 1100 में, 'ई' का 1000 में, 'उ' का 1700 में और 'ऊ' का 1200 ई० में हुआ है। कहना न होगा यहाँ उन अर्थों को कालक्रम से सजाना होगा अर्थात् 1000 ई० में प्रचलित अर्थ पहले दिया जायेगा, फिर क्रम से 1100, 1200, 1600 और 1700 ई० के अर्थ दिये जायेंगे। अर्थात् अ,ई, इ, ऊ आ, उ। इस प्रकार का कोश बनाने के लिए यह आवश्यक है कि उस भाषा का साहित्य उपलब्ध हो। ऐसे कोश के निर्माण के पूर्व दो बातें आवश्यक हैं : (1) उस भाषा में प्राप्त सभी ग्रंथों का पाठ पाठालोचन के आधार पर निश्चित कर लिया जाए। यहाँ यह ध्यातव्य है कि

प्रक्षिप्त अंशों को निकाल फेंकने की आवश्यकता नहीं, अपितु उनके रचे जाने का काल-निर्धारण करके, उन्हें भी उस काल या सदी की रचना मानकर उसके समकालीन साहित्य के साथ रखा जाए। (2) सभी रचनाओं का काल निश्चित कर लिया जाए।

ये दो कर लेने पर किस सदी में कौन शब्द किस अर्थ में प्रयुक्त हुआ, इसका निश्चय करना सरल हो जाएगा, और उनके आधार पर सरलता से ऐतिहासिक कोश बन जायेगा। इस प्रसंग में यह भी उल्लेख्य है कि ऐतिहासिक कोश प्रत्येक दृष्टि से बहुत पूर्ण नहीं बन सकता, क्योंकि तैयार होने के बाद नई खोजों के आधार पर यदि कोई नई रचना सामने आ गई, पुरानी रचना का नया पाठ आ गया, या किसी रचना का काल कुछ और सिद्ध हो गया तो उनके कारण कोश में पर्याप्त परिवर्तन करना होगा। किसी भी, आधुनिक भारतीय भाषा का इस प्रकार का ऐतिहासिक कोश अभी तक नहीं बना। संस्कृत का मोनियर विलियम्स का कोश इसी प्रकार का है, यद्यपि बहुत अपूर्ण है। संस्कृत का इस प्रकार का एक आदर्श कोश पूना से छप रहा है। अंग्रेज़ी की आक्सफ़ोर्ड डिक्शनरी इस प्रकार का सर्वोत्तम प्रयास है।

पारिभाषिक कोश

पीछे शब्दों के वर्गीकरण में पारिभाषिक और अर्धपारिभाषिक शब्दों का उल्लेख किया जा चुका है। सामान्य कोशों में सामान्य शब्द तो होते ही हैं उनके साथ कोश के आकार-प्रकार के अनुकूल पारिभाषिक शब्द भी होते हैं किन्तु पारिभाषिक कोशों में केवल पारिभाषिक एवं अर्धपारिभाषिक शब्द ही होते हैं।

ये पारिभाषिक कोश भी मुख्यतः दो प्रकार के होते हैं। एक तो वे जिनमें शब्द का पूरा अर्थ समझाया जाता है। दूसरा वह जिनमें दो या अधिक भाषाओं के पारिभाषिक शब्दों का वर्णानुक्रम से संग्रह होता है। दूसरे वर्ग के राजनीति, चिकित्साविज्ञान, पत्रकारिता, दर्शन, मनोविज्ञान, अर्थशास्त्र आदि अनेकानेक विषयों के अनेक अंग्रेज़ी-हिन्दी कोश प्रकाशित हो चुके हैं। यूरोपीय देशों में रूसी-अंग्रेज़ी-फ्रेंच-जर्मन या फ्रेंच-अंग्रेज़ी-जर्मन या इसी प्रकार के और भी बहुत से 3, 4, 5, 7, 8, 10 भाषाओं के तुलनात्मक पारिभाषिक कोश छप चुके हैं।

पारिभाषिक कोशों में जिनमें पारिभाषिक शब्दों की परिभाषा दी जाए, उन्हें 'परिभाषा कोश' तथा जिनमें मात्र प्रतिशब्द हों उन्हें 'पारिभाषिक शब्दावली' कहा जा सकता है।

पर्याय कोश

पर्याय कोश में शब्दों के पर्याय होते हैं। ये कोश मुख्यतः तीन प्रकार के होते हैं: (1) थेसारस—जिनमें शब्दों का क्रम वर्णानुक्रम से न होकर विषयानुसार होता है। जैसे वनस्पतियों के नाम, देवताओं के नाम आदि। मेरा 'बृहत् पर्यायवाची

कोश' ऐसा ही है। इसमें पर्याय के साथ-साथ विलोम के भी संकेत होते हैं। हिन्दी में इसके लिए कोई उपयुक्त नाम नहीं है। (2) **पर्याय कोश**—इसमें वर्णानुक्रम से शब्द होते हैं तथा साथ में उनके पर्याय दिए होते हैं। (3) **विवेचनात्मक पर्याय कोश**—इसमें पर्याय देने के साथ-साथ उनमें अर्थ और प्रयोग की दृष्टि से अंतरों पर भी विचार होता है। वैब्सटर का 'अंग्रेज़ी पर्याय' ऐसा ही कोश है।

विलोम कोश

यह विलोम शब्दों का कोश होता है। अनेक व्याकरणों में भी विलोमार्थी शब्दों की सूचियाँ दी रहती हैं। अब तक इस तरह का कोई अच्छा कोश मेरे देखने में नहीं आया।

मुहावरा कोश

यह मुहावरों का कोश होता है। मुहावरा कोश वर्णनात्मक, ऐतिहासिक एवं तुलनात्मक तीनों प्रकार का या मिलाजुला हो सकता है। वर्णनात्मक में इनका अर्थ और प्रयोग रहता है, ऐतिहासिक में इनका पूरा इतिहास (जैसे किस भाषा से आया है, या मूलतः किस पर आधारित है, या अर्थ में क्या कुछ विकास हुआ है) देते हैं। तुलनात्मक में अन्य भाषाओं के समानार्थी मुहावरे भी होते हैं।

प्रयोग कोश

इसमें प्रयोग दिए होते हैं। उदाहरण के लिए यदि हिन्दी का प्रयोग कोश बने तो राज-राज़ का भेद; ने, को, में, के ठीक प्रयोग; सकना-पाना में अन्तर; बहुत-अधिक में भेद आदि जैसी बातों का विवेचन होगा। अंग्रेज़ी में फ़ाउलर का कोश इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है।

विश्वकोश

यह कोश आज के युग की अनिवार्य आवश्यकता है, ताकि एक ही पुस्तक में अपेक्षित अधिक-से-अधिक जानकारी प्राप्त की जा सके। विश्वकोश दो प्रकार का होता है। एक तो सामान्य होता है, जिसमें सभी विषयों की प्रविष्टियाँ होती हैं। ब्रिटेनिका, अमेरिकाना, हिन्दी विश्वकोश आदि इसी श्रेणी के हैं। दूसरे प्रकार का विश्वकोश अलग-अगल विषयों का होता है। जैसे—दर्शन विश्वकोश, इतिहास विश्वकोश, भौतिकी विश्वकोश आदि।

जीवनी कोश

इसमें विभिन्न कालों के उल्लेख्य व्यक्तियों की जीवनियाँ रहती हैं। कथा कोश या अन्तःकथा कोश भी इसी के अन्तर्गत आते हैं।

भौगोलिक कोश

इसमें भौगोलिक नामों के सम्बन्ध में जानकारी रहती है। नामों के ठीक उच्चारण का ध्यान इसके लिए भी आवश्यक है।

उच्चारण कोश

इसमें शब्दों का उच्चारण देते हैं। ऐसे कोश में वर्तनी और उच्चारण में अन्तर (लोप जैसे 'राम' का 'राम्', आगम जैसे 'रखा' का 'रक्खा', परिवर्तन जैसे 'कोष' का 'कोश') का स्पष्ट उल्लेख रहता है। साथ ही आक्षरिक विभाजन और बलाघात का भी संकेत रहता है। ऐसा कोश ऐसी भाषाओं के लिए अधिक आवश्यक है जहाँ वर्तनी और उच्चारण में बहुत अधिक भेद है। हिन्दी में भी धीरे-धीरे ऐसी स्थिति आ गई है। उपन्यास, कृष्ण, पाप, बलदेव, शेष आदि अनेकानेक शब्द हिन्दी में ऐसे हैं, जिनका उच्चारण अब वर्तनी के अनुरूप न रह-कर उपन्नयास, क्रिश्ड़ँ, पाप्, बल्देव, शेश हो गया है।

कोश-निर्माण-विषयक कुछ आवश्यक बातें

शब्द-संकलन

कोश-निर्माण में सबसे पहला काम कोशकार को इसी दिशा में करना पड़ता है। कोश यदि जीवित भाषा का बनाना है, तो शब्द लोगों से सुनकर इकट्ठे करने पड़ते हैं। यदि साहित्य या पुरानी भाषा का बनाना हो तो पुस्तकों से लेना पड़ता है। लोगों से सुनकर इकट्ठा करने में पूर्ण कोश बनाना प्रायः असम्भव-सा है, क्योंकि हर जीवित भाषा में शब्द बढ़ते रहते हैं, नये शब्द विभिन्न स्रोतों से आते रहते हैं। साहित्य के आधार पर कोश बनाने के लिए सम्बद्ध सारी पुस्तकों की पूरी शब्दानुक्रमणी बना लेना सबसे अच्छा होता है। ऐसा कर लेने पर कोई शब्द या अर्थ छूटने नहीं पाता। ऐतिहासिक कोशों के लिए तो यह अनिवार्य है। पीछे 'शब्द-संकलन' अध्याय में इस सम्बन्ध में विस्तार के साथ विचार किया गया है।

वर्तनी

शब्द-संकलन के बाद उन्हें कोश में देने के लिए उनकी वर्तनी (spelling) निश्चित कर लेना आवश्यक है। इस दृष्टि से सबसे अधिक आवश्यक चीज़ है एकरूपता। अनेकरूपता होने पर होता यह है कि कभी-कभी 'शब्द' कोश में होता है किन्तु मिलता नहीं। इस विषय में आवश्यक निर्णयों का उल्लेख भूमिका में अवश्य किया जाना चाहिए, ताकि देखने वाले सहायता ले सकें। साथ ही यदि किसी शब्द की एक से अधिक वर्तनियाँ प्रचलित हों तो (जैसे लिए-लिये) अधिक प्रचलित रूप के साथ अर्थ देना चाहिए तथा दूसरे को यथास्थान देकर अर्थ के लिए प्रथम के संदर्भ का संकेत कर देना चाहिए।

शब्दक्रम

कोश में शब्द विशेष क्रम से होते हैं ताकि देखने वाला उन्हें सरलता से पा ले। संसार के कोशों में अनेक प्रकार के शब्द-क्रम प्रचलित रहते हैं, जिनमें से कुछ प्रमुख ये हैं: (1) **वर्णानुक्रम**—आज की अधिकांश भाषाओं के अधिकांश कोशों में शब्द वर्णानुक्रम से रखे जाते हैं। पहले शब्द केवल प्रथम वर्ण के आधार पर रखे जाते थे। अर्थात् 'क' से शुरू होने वाले सारे शब्द एक साथ। इसका आशय यह हुआ कि यदि किसी भाषा में 'क' से प्रारम्भ होने वाले 5000 शब्द हैं तो वे एक जगह बिना किसी क्रम के रखे जाते थे और खोजने वाले को सारे शब्दों को देखकर अपेक्षित शब्द खोजना पड़ता था। बाद में शब्द के दूसरे वर्ण का भी विचार होने लगा और अंत में सारे वर्णों का। हिन्दी में वर्णानुक्रम बहुत निश्चित नहीं है। उदाहरण के लिए क—क़, ख—ख़, ग—ग़, ज—ज़, फ—फ़, ड—ड़, ढ—ढ़, आ—ऑ आदि में किसे आगे और किसे पीछे रखें, यह सर्वसम्मत रूप से स्वीकृत नहीं है। ऐसे ही अनुस्वार और चन्द्रबिन्दु के सम्बन्ध में भी निर्णय आवश्यक है। इसी प्रकार ज्ञ को ज्ञ मानकर रखें या ग्य मानकर या ग्यँ मानकर या ज्यँ मानकर। इस तरह की समस्याओं के सम्बन्ध में अपनाई गई नीति का उल्लेख भूमिका में किया जाना चाहिए।(2) **अक्षर संख्या**—इसके आधार पर भी शब्दों को रखा जाता है। भारत में इस प्रकार के एकाक्षरी कोश भी मिलते हैं। अक्षर-संख्या पर आधारित कोशों में एक अक्षर (syllable) वाले शब्द पहले, फिर दो वाले, फिर तीन वाले, और आगे भी इसी प्रकार के रखे जाते हैं। (3) **सुर**—सुर-प्रधान भाषाओं (Tone languages) में वर्णानुक्रम या अक्षर-संख्या के अतिरिक्त सुर के आधार पर भी शब्दों को रखते हैं, क्योंकि वहाँ एक ही शब्द कई सुरों में प्रयुक्त होता है और इस प्रकार कई अर्थ देता है। (4) **विचार**—पर्याय कोशों (थेसारस) में शब्दों को भावों या विचारों या विषयों के आधार पर देखा जाता है। जैसे जीवों के नामों के शब्द एक स्थान पर। ऐसे ही धर्म, अंग, खाद्य-पदार्थ, कला, विज्ञान आदि के अलग-अलग। प्रसिद्ध संस्कृत कोश 'अमरकोश' के कांड इसी आधार पर हैं। (5) **व्युत्पत्ति**—कभी-कभी शब्द व्युत्पत्ति के आधार पर भी रखे जाते हैं। अरबी में इस प्रकार के कोश प्रायः मिलते हैं, जिनमें वर्णानुक्रम से 'माद्दा' (धातु root) देते हैं और हर माद्दे के साथ उससे बनने वाले शब्द। धातु पर आधारित सभी भाषाओं के इस प्रकार के कोश बनाए जा सकते हैं।

व्याकरण

शब्दकोश में प्रविष्टि के साथ व्याकरण की दृष्टि से टिप्पणी भी आवश्यक है। यदि एक शब्द एक से अधिक व्याकरणिक रूपों में प्रयुक्त (जैसे 'आम' या 'बड़ा' संज्ञा और विशेषण) होता हो तो व्याकरण का उल्लेख करके उसके बाद सम्बद्ध

अर्थ देने चाहिए। व्याकरण के साथ-साथ उससे बनने वाले अनियमित रूप भी अवश्य देने चाहिए (जैसे जाना में 'गया' या करना में 'किया')।

अर्थ

वर्णनात्मक कोश में अर्थ प्रचलन के आधार पर और ऐतिहासिक में इतिहास के आधार पर दिया जाता है। इसे पीछे समझाया जा चुका है। अर्थ दो प्रकार से देते हैं। एक में केवल समानार्थी शब्द होते हैं (जैसे गज का अर्थ हाथी), दूसरे में परिभाषा देते हैं या समझाते हैं (जैसे हाथी एक जानवर है जो···)। शब्दकोश में दोनों प्रकार का उचित प्रयोग होना चाहिए। यों व्याख्या जहाँ अपेक्षित हो वहीं दी जानी चाहिए। एकभाषिक कोश में व्याख्या अधिक अपेक्षित होती है, किन्तु द्विभाषी कोश में समानार्थी शब्द देना ही पर्याप्त है। जैसे अंग्रेज़ी-हिन्दी कोश में elephant की हिन्दी में व्याख्या निरर्थक है। वहाँ केवल 'हाथी' शब्द दे देना पर्याप्त है। हाँ, यदि ऐसा शब्द यदि हिन्दीभाषी के लिए अपरिचित हो, तो व्याख्या अपेक्षित होगी।

उद्धरण

अर्थ के स्पष्टीकरण या उदाहरण के लिए अर्थ के साथ उसके प्रयोग भी दिए जाते हैं। एसे उद्धरण प्रामाणिक होने चाहिए। यदि कई दिये जाएँ तो उन्हें काल-क्रमानुसार रखना अच्छा होता है।

चित्र

कभी-कभी अर्थ, पर्याय या व्याख्या से स्पष्ट नहीं होते। ऐसी स्थिति में वस्तु का चित्र आवश्यक हो जाता है, प्रमुखतः ऐसी चीज़ों का जिनसे कोश का प्रयोक्ता अपरिचित हो। उदाहरणार्थ हाथी का चित्र भारतीय कोश में अपेक्षित नहीं होगा, किन्तु ऐसे देश के कोश में जहाँ हाथी नहीं होता यह बहुत आवश्यक है। भारतीय कोश में कंगारू का चित्र आवश्यक हो सकता है।

उच्चारण

कोश में उच्चारण भी आवश्यक है। क्योंकि मात्र सामान्य वर्तनी (spelling) से वह स्पष्ट नहीं होता। अंग्रेज़ी, फ्रेंच आदि कोशों में इसी कारण उच्चारण दिया रहता है। इन भाषाओं के तो ऐसे उच्चारण-कोश प्रकाशित हो चुके हैं जिनका काम केवल उच्चारण बतलाना है। हिन्दी कोशों में उच्चारण नहीं रहता। नागरी लिपि के समर्थकों का कहना है कि जैसा हमारा उच्चारण है, वैसा ही नागरी में लिखते हैं, अतः अलग उच्चारण की हिन्दी में आवश्यकता नहीं। किन्तु ऐसा मानना अवैज्ञानिक है। हिन्दी में सभी शब्दों का उच्चारण वही नहीं है जो लिखा जाता है। उदाहरणार्थ 'ऋषि' का उच्चारण 'रिशि', 'द्विवेदी' का 'दुवेदी',

'साहित्यिक' का 'साहित्तिक', 'उपन्यास' का 'उपन्न्यास', 'राम' का 'राँम्' तथा 'लगभग' का 'लग्भग्' है। हिन्दी में इस प्रकार के हज़ारों शब्द हैं जिनका उच्चारण वर्तनी के अनुरूप नहीं है। ऐसे सारे शब्दों का उच्चारण कोशों में दिया जाना चाहिए। विदेशी छात्रों को हिन्दी पढ़ाने का जिन्हें अनुभव है, वे जानते हैं कि कोशों में ऐसा न होने से कितनी कठिनाई होती है। इसी प्रकार उच्चारण के साथ-साथ बलाघात (stress) तथा आक्षरिक विभाजन का संकेत भी कोशों में अपेक्षित है।

12

शब्दप्रयोगविज्ञान

किसी भाषा में शब्दों के प्रयोग के वैज्ञानिक अध्ययन के लिए यहाँ शब्दप्रयोग-विज्ञान नाम का प्रयोग किया जा रहा है। कहना न होगा कि भाषा शब्दों के प्रयोग से ही बनती है, इसीलिए भाषा और शब्दों के अध्ययन में शब्दों के प्रयोग का महत्त्वपूर्ण स्थान है। किसी वक्ता, लेखक या कवि की भाषा कितनी अच्छी या बुरी, प्रभावी या अप्रभावी है इसका पता उसके शब्दप्रयोग से ही लगाया जा सकता है।

पर्याय में चयन

शब्दों के प्रयोग की दृष्टि से सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि विशिष्ट संदर्भ में प्रयोग के लिए कौन-सा शब्द चुनें। यह चयन पर्यायों में से करना होता है। यह ध्यान देने की बात है कि यों तो पर्याय शब्द एकार्थी समझे जाते हैं, किन्तु तत्त्वतः वे एकार्थी न होकर समानार्थी होते हैं तथा एक ही शब्द के विभिन्न पर्यायों में सभी का प्रयोग सभी स्थानों पर नहीं हो सकता। उदाहरण के लिए 'पानी' और 'जल' पर्याय तो हैं किन्तु 'जलपान कर लीजिए' के स्थान पर न तो पानीपान कर लीजिए' कह सकते हैं और न 'शर्म के मारे पानी-पानी होना' के स्थान पर 'शर्म के मारे जल-जल होना'। इस तरह 'पानी' और 'जल' के पर्याय होने के बावजूद प्रयोक्ता के लिए यह जानना बहुत आवश्यक है कि कहाँ 'जल' शब्द का प्रयोग किया जाए और कहाँ 'पानी' का।

प्रयोग के लिए पर्यायों में से एक का चयन सबसे अधिक विशेषणों और संज्ञाओं में करना होता है। यहाँ बानगी के लिए कुछ विशेषणों और संज्ञाओं पर विचार किया जा रहा है :—

अधिक-बहुत—हिन्दी में 'अधिक' और 'बहुत' दोनों ही ज़्यादा के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं, किन्तु प्रयोगों से पता चलता है कि 'बहुत' केवल ज़्यादा होने का बोध कराता है :—

राम बहुत बोलता है।
सीता बहुत सुन्दर है।

किन्तु दूसरी ओर 'अधिक' तुलनाबोधक शब्द है :—

राम अधिक बोलता है।

इस दूसरे वाक्य का अर्थ यह है कि किसी और की तुलना में यह बात कही जा रही है।

राम मोहन से अधिक बोलता है।

इसी प्रकार :

सीता अधिक सुन्दर है।

अर्थात् किसी की तुलना में :

सीता राधा से अधिक सुन्दर है।

ऊपर के दोनों वाक्यों में 'अधिक' के स्थान पर यदि 'बहुत' रखें तो और भी बातें सामने आती हैं :—

(1) राम मोहन से अधिक बोलता है।
राम मोहन से बहुत बोलता है।

(2) सीता राधा से अधिक सुन्दर है।
सीता राधा से बहुत सुन्दर है।

स्पष्ट है पहले वाक्य में 'बहुत' रख देने से वाक्य का अर्थ बदल गया है, और दूसरे में 'बहुत' का प्रयोग ठीक नहीं लगता। यहाँ केवल 'अधिक' ही आ सकता है 'बहुत' नहीं। इस तरह दोनों शब्द समानार्थी तो हैं पर दोनों के प्रयोग में अन्तर है। वस्तुतः प्रयोग में अन्तर का अर्थ यह है कि ऊपर से वे समानार्थी भले हों, सूक्ष्म दृष्टि से उनका अर्थ एक नहीं है। दूसरे शब्दों में वे समानार्थी हैं किन्तु एकार्थी नहीं हैं। इस 'समानार्थी होने' और 'एकार्थी न होने' को केवल अर्थ बतलाकर समझाना कठिन है। प्रयोग दिखलाकर ही शब्दों की शक्ति और सीमा स्पष्ट की जा सकती है। यों 'बहुत' और 'अधिक' कभी-कभी साथ-साथ भी आते हैं—

वह बहुत अधिक सुन्दर है।

दोनों मिलकर अत्यधिक का भाव व्यक्त करते हैं। ऐसी स्थिति में एक बात और भी संकेत्य है। 'बहुत' शब्द 'अधिक' के पहले आ सकता है किन्तु 'अधिक' 'बहुत' के पहले नहीं आ सकता।

क्रोधी-क्रोधित—दोनों ही शब्द 'क्रोध' के आधार पर बने हुए विशेषण हैं, किन्तु दोनों के प्रयोगों में अंतर है। 'क्रोधी' शब्द का प्रयोग किसी की आदत बतलाने के लिए किया जाता है, जबकि 'क्रोधित' का किसी विशिष्ट समय में किसी का 'गुस्से होने' के लिए। उदाहरणार्थ :—राम बहुत क्रोधी है। राम बहुत क्रोधित है। पहले में राम के स्वभाव का का वर्णन है, तो दूसरे में उसकी वर्तमान मानसिक दशा का।

आहट-टोह—दोनों ही शब्दों का प्रयोग 'लेना' क्रिया के साथ प्रायः होता है किन्तु 'टोह लेना' का प्रयोग ख़ुद आगे बढ़कर जानने के लिए होता है, जबकि 'आहट लेना' के प्रयोग के लिए ख़ुद जाना या आगे बढ़ना आवश्यक नहीं है।

गीला-भीगा—अर्थ की दृष्टि से दोनों पर्याय हैं, किन्तु दोनों के प्रयोग में अन्तर है। 'मैं भीगा हूँ' तो कहा जा सकता है किन्तु 'मैं गीला हूँ' नहीं कहा जा सकता। इसी प्रकार आप 'भीगी बिल्ली' तो बन सकते हैं, 'गीली बिल्ली' नहीं बन सकते। किन्तु 'मेरे कपड़े गीले हैं' और 'मेरे कपड़े भीगे हैं', दोनों ही प्रयोग चलते हैं। लगता है कि जानदार के लिए 'भीगा' ही आता है किन्तु बेजान के लिए दोनों आते हैं। यों दोनों के अर्थ में भी कुछ अन्तर है। 'गीला' की तुलना में 'भीगा' में अधिक गीले या भीगे होने का भाव है। किन्तु प्रयोग में अर्थ के इस अन्तर पर कदाचित् लोग विशेष ध्यान नहीं दे रहे हैं, हाँ ऊपर संकेतित प्रयोग पर पूरा ध्यान देते हैं।

होशियार-चालाक—'होशियार' का प्रयोग कुशलता व्यक्त करने के लिए होता है किन्तु 'चालाक' में धूर्तता का भाव है। कुछ लोगों के प्रयोगों में 'होशियार' में भी कुछ धूर्तता का भाव मिलता है, किन्तु उनके प्रयोगों में भी 'चालाक' अपेक्षाकृत अधिक धूर्त है। सामान्यतः किसी का होशियार होना अच्छा माना जाता है किन्तु चालाक होना बुरा। रोगी होशियार डॉक्टर के यहाँ जाना और चालाक डॉक्टर से बचना चाहता है।

सरल-सुगम—पहला 'आसान' है और दूसरा 'सरलता से जाने योग्य'। इसी-लिए कार्य को 'सरल' तथा मार्ग को 'सुगम' कहना अच्छा प्रयोग है। यों 'सरल मार्ग' भी चल जाता है, किन्तु 'सुगम कार्य' नहीं चल सकता।

कारण-वजह—दोनों अर्थ की दृष्टि से एकार्थी हैं, किन्तु प्रयोग में थोड़ा अन्तर है। 'इसका कारण क्या है?' 'इसकी वजह क्या है?' दोनों प्रयोग ठीक हैं। किन्तु 'आप किस कारण आए' प्रयोग कभी-कभी सुनाई पड़ जाता है, परन्तु 'आप किस वजह आए' प्रयोग नहीं मिलता। 'वजह' के बाद ऐसी रचना में 'से' का आना आवश्यक है पर कारण के बाद 'से' आता भी है और नहीं भी आता। इन दोनों में न आने का अनुपात ही कदाचित् अधिक है। यों 'किस कारण' के स्थान पर 'किस लिए' का प्रयोग अधिक चलता है।

घमंड-गर्व—घमंड निन्दनीय है, किन्तु गर्व अच्छा भी होता है: मुझे अपने देश पर गर्व है। घमंड प्रायः व्यक्तिगत बातों पर होता है और गर्व सामूहिक पर भी।

ठीक-सही—'ठीक' उचित या वाजिब के लिए प्रयुक्त होता है, किन्तु 'सही' ग़लत का उल्टा है। 'सवाल ग़लत है या ठीक' की तुलना में 'सवाल ग़लत है या सही' अधिक अच्छा प्रयोग है।

अनबन-खटपट—पहले का प्रयोग ऐसी स्थिति को व्यक्त करने के लिए होता है, जब दो (व्यक्ति या वर्ग) में बनती न हो। जिनमें अनबन होती है वे प्रायः एक-दूसरे से अलग रहते हैं, बोलते-चालते नहीं या संपर्क नहीं रखते। इसके विपरीत खटपट का प्रयोग यह व्यक्त करने के लिए होता है कि दोनों में संपर्क या बोलचाल है, किन्तु थोड़ा-बहुत झगड़ा है, पटती नहीं। इस तरह झगड़ा खटपट

से आगे की चीज़ है।

भाषा में शब्दों का प्रयोग भाषा की विभिन्न शैलियों पर भी निर्भर करता है। उदाहरण के लिए हिन्दी भाषा की ही तीन शैलियाँ प्रचलित हैं : हिन्दी—जिसमें संस्कृत शब्दों का प्रयोग अपेक्षाकृत अधिक होता है। उर्दू—जिसमें अरबी-फ़ारसी-तुर्की शब्दों का प्रयोग अपेक्षाकृत अधिक होता है। हिन्दुस्तानी—जिसमें संस्कृत या अरबी-फ़ारसी-तुर्की के दुरूह शब्द नहीं होते केवल वे होते हैं जो बोल-चाल के अपेक्षाकृत अधिक निकट हैं। यों सभी लेखक एवं वक्ता सभी स्तरों पर हिन्दी-उर्दू-हिन्दुस्तानी के इस भेद का निर्वाह नहीं करते, और शायद कर भी नहीं सकते, किन्तु अनेक प्रयोगों में यह अन्तर स्पष्ट हुए बिना नहीं रहता। प्रयोक्ता को पर्यायों में से प्रयोग के लिए शब्द चुनने में इस बात का ध्यान रखना चाहिए। हरिऔध के 'प्रिय-प्रवास', प्रसाद की 'कामायनी', और निराला के 'तुलसीदास' की हिन्दी, इस दृष्टि से बच्चन की 'मधुशाला' या नीरज के गीतों से भिन्न है। हरिऔध का ही 'प्रिय-प्रवास' उनकी अन्य रचनाओं से इस दृष्टि से अलग है। इस प्रकार के कुछ शैलीय पर्याय हैं : नगर-शहर, स्वयं-ख़ुद, ग्राम-गाँव आश्चर्य-अचरज, प्रतिष्ठित-इज़्ज़तदार, क़लम-लेखनी, पत्र-चिट्ठी-ख़त, द्वार-दरवाज़ा, सुन्दर-ख़ूबसूरत, बढ़िया-उम्दा, आशा-उम्मीद, अनाज-ग़ल्ला, कृषि-खेती-काश्त, दफ़्तर-कार्यालय, कड़ा-सख़्त, वाटिका-बाग़, नदी-दरिया, बुद्धि-अक़्ल, वायु-हवा, सूर्य-सूरज आदि। स्पष्ट ही हिन्दी में यह अन्तर तत्सम-तद्भव (सूर्य-सूरज) तत्सम-विदेशी (वाटिका-बाग़), तद्भव-विदेशी (अनाज-ग़ल्ला, खेती-काश्त) तथा तत्सम-तद्भव-विदेशी (कृषि-खेती-काश्त) शब्दों में है। भाषा के प्रयोक्ता को इस प्रकार क अन्तर का भी पूरा-पूरा ध्यान रखना चाहिए।

भाषा में शब्दों के प्रयोग में इस बात का ध्यान रखना भी बहुत आवश्यक है कि बात किससे कही जा रही है या किसके बारे में कही जा रही है। जापानी भाषा में इस प्रकार का अंतर संसार की भाषाओं में सर्वाधिक है। वहाँ अनेक संज्ञाओं, सर्वनामों तथा क्रियाविशेषणों के लिए एक से अधिक शब्दों का वर्ग है, जिनमें एक का प्रयोग आदरार्थी माना जाता है तो दूसरे का सामान्य। उदाहरण के लिए दारे (dare) सामान्य 'कौन' है तो दोनता (donata) आदरार्थी। हिन्दी-उर्दू में तू-तुम-आप, आना-पधारना-तशरीफ़ लाना, बैठना-विराजना-तशरीफ़ रखना में इसी प्रकार का अंतर है। इसे शब्दों में सामाजिक अर्थ का अंतर कहते हैं। शब्द-प्रयोक्ता को इस तरह के सामाजिक अर्थ के अंतर का भी ध्यान रखना चाहिए।

सहप्रयोग

प्रायः सभी भाषाओं में एक यह प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है कि कुछ शब्द कुछ विशेष शब्दों के साथ ही प्रयुक्त होते हैं, जिसे शब्दों का सहप्रयोग कह सकते हैं। इसके कई भेद-विभेद भाषाओं में प्रयोग के आधार पर किये जा सकते हैं। उदा-

हरण के लिए हिन्दी में सहप्रयोग के निम्नांकित भेद किए जा सकते हैं। कुछ शब्द हिन्दी में ऐसे हैं, जो केवल किसी एक या बहुत सीमित शब्दों के साथ आते हैं, और केवल प्रारम्भ में ही आते हैं : अजायब (अजायबघर, अजायबख़ाना), साँठ (साँठ-गाँठ), आस (आस-पास)। दूसरी ओर कुछ शब्द ऐसे हैं जो एक या बहुत सीमित शब्दों के साथ आते हैं और केवल अंत में ही आते हैं : सुलफ़ (सौदा-सुलफ़), बक़्क़ाल (बनिया-बक़्क़ाल), मुबाहिसा (बहस-मुबाहिसा), घुप्प (अँधेरा-घुप्प), मंडन (खंडन-मंडन), गलौज (गाली-गलौज)। भोजपुरी में इसी प्रकार कोतर (कान-कोतर), क़ुवाम (क़र्ज़ा-क़ुवाम), गीठो (गहना-गीठो), पहिता (सग-पहिता) आदि हैं।

इसी प्रकार कुछ शब्द ऐसे होते हैं जो केवल कुछ ही क्रियाओं के साथ प्रयुक्त होते हैं : खचाखच (भरना, होना), ग़ौर (करना, होना), गौरवान्वित (करना, होना), घिग्घी (बँधना)। इसके विपरीत कुछ क्रियाओं का प्रयोग सीमित होता है। 'मोहन के पिता जी आज गुज़र गये' प्रयोग करते हैं किन्तु 'चूहा आज गुज़र गया' नहीं।

कुछ विशेषण भी कुछ सीमित संज्ञाओं के साथ प्रयुक्त होते हैं। जैसे गँदला (पानी), झीना (कपड़ा, परदा, आवरण), दर्शनी (हुण्डी), बनैला (सूअर) आदि।

ऐसे ही 'खाना' का सहप्रयोग 'खाना' के साथ है (खाना खा लो) तो 'भोजन' का 'करना' के साथ (भोजन कर लो)। पूड़ी नाश्ते में भी ले सकते हैं, खाने में भी। पर नाश्ता करते हैं और खाना खाते हैं।

इस तरह प्रयोक्ता को सहप्रयोग का भी ध्यान रखना चाहिए।

लिंग

व्याकरणिक लिंग सभी भाषाओं में नहीं होते। फ़ारसी, उज़बेक, इस्तोनियन आदि विश्व में कई भाषाएँ हैं जिनमें लिंग का प्रयोग नहीं होता। उनमें क्रिया, विशेषण, सर्वनाम या संज्ञा के रूपों में लैंगिक परिवर्तन बिलकुल नहीं होते। जिन भाषाओं में लिंग होते भी हैं, उनमें भी आपस में एकरूपता नहीं मिलती। चाँद (moon) अंग्रेज़ी में स्त्रीलिंग है तो हिन्दी में पुल्लिंग। यही नहीं, भाषाओं के लिंग का प्राकृतिक लिंग से बहुत अधिक सम्बन्ध नहीं होता। मेज़ निर्लिंग है किन्तु हिन्दी में स्त्रीलिंग है, दीवान भी निर्लिंग है किन्तु हिन्दी में पुल्लिंग है। जर्मन में महिला (frau) स्त्रीलिंग है तो कुमारी (fraulein) नपुसंक लिंग है। संस्कृत में 'दारा', 'स्त्री' और 'कलत्र' तीनों शब्द स्त्री के वाचक हैं किन्तु प्रयोग में पहला शब्द पुल्लिग, दूसरा स्त्रीलिग और तीसरा नपुसंक लिंग है। स्त्री-पुरुष से सम्बन्ध का भी लिंग पर प्रभाव नहीं है। 'दाढ़ी-मूँछ' पुरुष को होते हैं किन्तु स्त्रीलिंग हैं जबकि 'कुच' पुल्लिग है। वस्तुतः भाषिक लिंग प्रयोगाश्रित हैं।

लिंगप्रयोगी भाषाओं में शब्दों के प्रयोग में लिंग की दृष्टि से भी ध्यान रखना

पड़ता है। ध्यान से आशय है उक्त भाषा में प्रयोग किये जाने वाले शब्द के लिंग का ध्यान। इस दृष्टि से भाषाओं में अनेकानेक गड़बड़ियाँ मिलती हैं। हिन्दी में गिद्ध, कौआ, चींटा आदि यद्यपि नर भी होते हैं और मादा भी, किन्तु इनका प्रयोग पुल्लिग में ही होता है, इसी प्रकार चील, चींटी, मैना नर भी होते हैं किन्तु इनका प्रयोग केवल स्त्रीलिंग में होता है। हिन्दी में पद तथा व्यवसायबोधक काफ़ी शब्द ऐसे भी हैं जो उभयलिंगी हैं। पहले 'भारत के प्रधानमन्त्री' प्रयोग में आता था, अब 'भारत की प्रधान मन्त्री' आता है। डॉक्टर, कम्पाउण्डर, इंजीनियर, मिनिस्टर या मन्त्री, राज्यपाल या गवर्नर, रीडर, व्याख्याता या लेक्चरर, मैनेजर आदि सौ से ऊपर शब्द हिन्दी में उभयलिंगी हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि हिन्दी में प्रयोग के स्तर पर दो लिंग हैं, किन्तु शब्द-वर्ग के स्तर पर तीन।

कुछ भाषाओं के कुछ उदाहरणों में बड़ी अजीब बात मिलती है। मादा के लिए पुल्लिग शब्द का प्रयोग होता है और नर के लिए स्त्रीलिंग का। उदाहरणार्थ हिन्दी में पपीता-पपीती। इसी प्रकार कुछ भाषाओं के कुछ उदाहरणों में स्त्रीलिंग के रूप का प्रयोग एक प्राणी (कीड़ा) के लिए मिलता है तो पुल्लिग का दूसरे के लिए। जैसे हिन्दी में ही चींटा-चींटी।

कुछ स्थितियाँ ऐसी भी मिलती हैं जिनमें पुल्लिग रूप पति के लिए आता है तो स्त्रीलिंग रूप उसकी पत्नी के लिए—चाचा-चाची, मामा-मामी, जीजा-जीजी, नाना-नानी; किन्तु कुछ उदाहरणों में पुल्लिग रूप भाई के लिए तो स्त्रीलिंग बहन के लिए : साला-साली। कभी-कभी ऐसा भी होता है एक पुल्लिग शब्द के दो अर्थ होते हैं और दोनों अर्थों में उसके स्त्रीलिंग के रूप अलग-अलग होते हैं : दादा (बड़ा भाई)—दीदी (बड़ी बहन), दादा (पितामह)—दादी (बाप की माँ)।

कुछ उदाहरणों में लिंग-परिवर्तन से अर्थ-परिवर्तन भी हो जाता है : गदेला—लड़का, गद्दा) गदेली (गद्दी, हथोरी)।

यहाँ यह जोड़ने की आवश्यकता नहीं कि विभिन्न भाषाओं में प्राप्त स्त्रीलिंग रूप प्रायः पुल्लिग रूपों से बने माने तथा दिखाए जाते हैं। समाज में पुरुष की महत्ता या प्रधानता के कारण, सामाजिक सम्बन्धों की प्रतीक भाषा में ऐसा होना तथा इस रूप में उसका विश्लेषण असहज नहीं है। उदाहरणार्थ अंग्रेज़ी में : author-authoress, host-hostess, lion-lioness, actor-actress, master-mistress, hero-heroine; संस्कृत में : ब्राह्मण-ब्राह्मणी, नद-नदी, सुत-सुता, प्रिय-प्रिया, भव-भवानी; अरबी में : साहब-साहिबा, वालिद-वालिदा; तुर्की में ख़ान-ख़ानम, बेग-बेगम; हिन्दी में लड़का-लड़की, दादा-दादी, बेटा-बिटिया, हिरन-हिरनी, सुनार-सुनारिन, ऊँट-ऊँटनी, ठाकुर-ठकुराइन।

यों इधर गहराई से विश्लेषण करने पर पुल्लिग के प्रति यह पक्षपात कुछ शब्दों में समाप्त हो गया है। उदाहरण के लिए पहले 'लड़का' से 'लड़की' को बना

माना जाता था। अब मूल शब्द न तो पुल्लिग माना जाता है और न स्त्रीलिंग। वह निर्लिंग शब्द लड़क् है जिसमें पुल्लिग प्रत्यय 'आ' जोड़कर लड़का बनता है तथा स्त्रीलिंग प्रत्यय 'ई' जोड़कर लड़की। इसी प्रकार घोड़्, बच्च्, गध्, माम् आदि भी।

यों पुल्लिग से स्त्रीलिंग बनने के विपरीत कुछ उदाहरण ऐसे भी मिल जाते हैं जहाँ स्त्रीलिंग रूप मूल है तथा पुल्लिग इसके आधार पर बना है : भेड़-भेड़ा, भैंस-भैंसा, राँड-रँडुआ।

हिन्दी के सम्बन्धवाचक शब्दों में एक अजीब बात यह है कि परंपरागत भारतीय परिवार में जिन सम्बन्धियों के लिए स्थान था उनके लिए तो पुराने नाम रहे हैं, किन्तु जिनके लिए स्थान नहीं था उनके लिए नाम नहीं रहे हैं। अब जब उनका स्थान परिवार में हो गया है तो स्त्रीलिंग शब्दों के आधार पर उनके लिए नये शब्द बना लिये गये हैं। उदाहरण के लिए ननद, मौसी, बहिन के लिए परिवार में स्थान पहले था, अतः संस्कृत में उनके लिए क्रमशः ननंद, मातृस्वसृ, भगिनी शब्द थे जिनसे हिंदी में ननद, मौसी तथा बहन का विकास हुआ। किन्तु इसके विपरीत ननदोई, मौसा, बहनोई के लिए परिवार में विशेष स्थान न था, अतः उनके लिए विशेष नाम का प्रयोग नहीं हुआ। अब जब उनका परिवार में स्थान हो गया तो इन स्त्रीलिंग शब्दों के आधार पर पुल्लिग शब्द बना लिये गये हैं : ननद-ननदोई, मौसी-मौसा (अब उनमें मूल निर्लिंग मौस् मानकर आ, ई जोड़े जा सकते हैं) बहन-बहनोई। ऐसे ही जीजी से जीजा शब्द बना लिया गया है। इसका विकास बड़ा लम्बा है—संस्कृत तात+क>दादा (बड़ा भाई)>दीदी (बड़ी बहन)>जीजी>जीजा (ई का आ करके)।

वचन

वचन का प्रयोग विश्व की सभी भाषाओं में होता है। कुछ में दो का, कुछ में तीन का और अपवादतः कुछ में चार का। यों यदि एकवचन, बहुवचन आदि के रूपों का सीधे इन्हीं वचनों में प्रयोग होता और सामान्यतः सभी शब्दों के विभिन्न वचनों के रूप होते तो प्रयोग में कोई ख़ास परेशानी न होती। किन्तु वास्तविकता यह है कि कभी तो एकवचन के रूप दूसरे वचन में प्रयुक्त होते हैं, और कभी कुछ शब्दों का प्रयोग प्रायः एकवचन में होता है तो दूसरों का प्रायः बहुवचन में। प्रयोग की दृष्टि से इन बातों का ध्यान रखना आवश्यक है। कुछ उदाहरण लिये जा सकते हैं। संस्कृत, अंग्रेज़ी आदि में क्रिया एक-वचन कर्त्ता के साथ एकवचन में होती है किन्तु फ़ारसी, हिन्दी, आदि में आदरार्थ में एकवचन कर्त्ता के साथ बहुवचन की क्रिया आती है : शैख़ सादी मी गूयन्द = शैख़ सादी कहते हैं। शुद्ध व्याकरणिक दृष्टि से फ़ारसी में 'गोयद' तथा हिन्दी में 'कहता है' होना चाहिए किन्तु होता है 'मी गूयन्द' और 'कहते हैं'। इसी तरह हिन्दी में प्रश्नवाचक तथा उत्तम पुरुष को छोड़ कर अन्य अधिकांश सर्वनामों

के एकवचन रूपों के स्थान पर आदर के लिए बहुवचन का प्रयोग होता है। तू-तुम, वह-वे, यह-ये, जिसे-जिन्हें। उत्तम पुरुष में अब 'मैं' के स्थान पर 'हम' का ही प्रयोग अधिक हो रहा है।

विश्व की अनेक भाषाओं में ऐसी बहुत सी संज्ञाएँ हैं जिनके बहुवचन के रूप प्रायः नहीं प्रयुक्त होते। अंग्रेज़ी में अगणनीय (noncountable) संज्ञाएँ इसी प्रकार की हैं। जैसे copper, tin, wood, (लकड़ी), iron, kindness, air, good, force इनके प्रयोग एकवचन में ही होते हैं। यदि उनके बहुवचन के रूप बनाए जाएँ तो अर्थ बदल जाते हैं: coppers = ताँबे के सिक्के; tins = टिन के डिब्बे; woods = जंगल; irons = बेड़ियाँ; kindnesses = कृपापूर्ण कार्य (बहुवचन), airs = अकड़; goods = सामान; forces = सेनाएँ।

कुछ शब्दों के एकवचन में दो अर्थ होते हैं। किन्तु बहुवचन केवल एक अर्थ में ही होता है। उदाहरण के लिए people (1.राष्ट्र, 2. लोग)—peoples (कई राष्ट्र); practice (1. आदत, 2.अभ्यास)—practices (आदतें)।

कुछ शब्दों के दो बहुवचन होते हैं किन्तु दोनों के दो अर्थ होते हैं। उदाहरणार्थ अँग्रेज़ी में cloth-cloths = बिना सिले कपड़े; clothes = पोशाक; brother-brothers = एक माँ-बाप के लड़के; bretheren = एक समाज या संप्रदाय के सदस्य; die-dies = सिक्के की मुहरें; dice = खेल की गोटियाँ।

कुछ भाषाओं में कुछ शब्द ऐसे होते हैं जो सर्वदा बहुवचन में ही प्रयुक्त होते हैं। हिन्दी में 'दर्शन' ऐसा ही शब्द है उनके दर्शन हुए; आपके दर्शनों के लिए आया हूँ। 'घुँघराला' की भी यही स्थिति है। 'घुँघराले' रूप में ही प्रयुक्त होता है। घुँघराले बाल। अंग्रेज़ी में भी ऐसे शब्द हैं; cattle, people, poultry।

कुछ शब्द ऐसे भी होते हैं जो अपनी रूपरचना की दृष्टि से बहुवचन लगते हैं किन्तु वे एकवचन के होते हैं और उनका प्रयोग एकवचन में ही होता है physics, news, mechanics, innings, politics। हिन्दी में लड़के, घोड़े, बच्चे, गदहे आदि भी ऐसे ही शब्द हैं। उदाहरणार्थ :—

उस लड़के का क्या नाम है?

राम घोड़े पर है।

अनुवादकों के सामने वचन-संबंधी एक अजीब समस्या कभी-कभी आ जाती है। एक भाषा में जहाँ एकवचन का प्रयोग होता है वहाँ दूसरी भाषा में बहुवचन का होता है। उदाहरण के लिए हिन्दी-अंग्रेज़ी में :—

तुम्हारा चश्मा कहाँ है?

Where are your spectacles?

इसी प्रकार क़ैंची = scissors; चिमटा = tongs; सँड़सी = pincers; दराज़ = drawers; पाजामा = trousers; चेचक = measles; गलसुआ = mumps; बिलियर्ड = billiards; कहानी, इतिहास = annals; धन्यवाद = thanks।

क्रम

शब्दों के प्रयोग में क्रम (जिसे वाक्य में शब्दक्रम या पदक्रम कहते हैं) काफ़ी महत्त्वपूर्ण है। क्रम में परिवर्तन से अर्थ कुछ-का-कुछ हो जाता है :—

राम मोहन कहता है।

मोहन राम कहता है।

Ram killed Mohan.

Mohan killed Ram.

किन्तु यह बात अयोगात्मक या विश्लेषणात्मक या क्रमप्रधान भाषाओं में ही विशेष महत्त्व रखती है। पुरानी अरबी, ग्रीक, संस्कृत जैसी योगात्मक भाषाओं में शब्द के क्रम में परिवर्तन से अर्थ में अन्तर नहीं आता।

रामः मोहनं अहनत्।

मोहनं रामः अहनत्।

संस्कृत के उपर्युक्त दोनों वाक्यों में शब्द-क्रम एक नहीं है, किन्तु अर्थ दोनों ही वाक्यों का एक है।

हिन्दी, अंग्रेजी, चीनी जैसी भाषाओं में शब्द-क्रम का महत्त्व है किन्तु इन भाषाओं की पुस्तकों में प्रायः कर्ता, कर्म, क्रिया क्रियाविशेषण आदि के क्रम का ही सामान्य उल्लेख रहता है। उदारण के लिए हिन्दी के बारे में कहा जाएगा कि कर्त्ता प्रारम्भ में आता है, क्रिया अन्त में और कर्म या क्रियाविशेषण बीच में। या फिर बल देने के लिए इस क्रम में परिवर्तन करके बलयुक्त को पहले रख देते हैं। वस्तुतः क्रम की ये बड़ी मोटी बातें हैं। भाषा में शब्दों के प्रयोग में क्रम और भी कई स्तरों पर काम करता है जो कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। उदाहरण के लिए वाक्य में केवल कर्त्ता, क्रिया, कर्म, क्रियाविशेषण ही नहीं, उपवाक्य और पदबंध भी विशेष क्रम से आते हैं वस्तुतः क्रम की पूरी व्यवस्था कुछ इस प्रकार है : शब्द विशेष क्रम से समस्त पदों (ग्राममल्ल, मल्लग्राम)तथा पदों (राम ने) में आते हैं, तथा इसी प्रकार पद विशेष क्रम से पदबंध (मकान की ऊपरी मंज़िल पर मोहन रहता है) एवं उपवाक्यों में, पदबंध विशेष क्रम से उपवाक्यों या वाक्यों में और उपवाक्य विशेष क्रम से वाक्यों में आते हैं। इन क्रमों का ध्यान न रखने पर कभी तो कुछ अर्थ ही नहीं निकलता और कहीं भाषा की सहज गति प्रभावित होती है और वाक्य अजीब-सा लगने लगता है।

यहाँ हिन्दी को लेकर क्रम-सम्बन्धी कुछ बातें ली जा रही हैं। हिन्दी में विशेषण का प्रयोग कभी तो संज्ञा के पूर्व होता है :—

अच्छा लड़का

और सभी संज्ञा के बाद होता है :—

लड़का अच्छा है।

पहले को विशेष्य विशेषण और दूसरे को विधेय विशेषण कहते हैं। प्रायः

यह समझा जाता है कि सभी विशेषण शब्द इन दोनों क्रमों में आ सकते हैं। किन्तु वास्तविक स्थिति यह नहीं है। हिन्दी में ऐसे विशेषण भी हैं जो संज्ञा के पूर्व नहीं या नहीं के बराबर आते हैं। उनका प्रयोग विधेय विशेषण के रूप में ही प्रायः होता है। उदाहरण के लिए 'वे अग्रसर हुए', 'मैं इस बात से अवगत हूँ', 'वह देश पर क़ुर्बान, हो गया', 'मुझे यह स्थिति गवारा नहीं' आदि में अवगत, क़ुर्बान, गवारा ऐसे ही हैं। इस दृष्टि से अभी तक कार्य नहीं हुआ है। मुझे विश्वास है कि ऐसे शब्द काफ़ी मिल सकते हैं, जिनका प्रयोग विशेष्य के पूर्व या तो बिल्कुल नहीं होता या बहुत ही कम होता है, और वह भी विशेष प्रकार की रचनाओं में। हिन्दी विशेषणों के प्रयोग को पूरी तरह समझने के लिए इनका संकलन एवं विश्लेषण आवश्यक है।

इसी प्रकार 'कलाँ' और 'ख़ुर्द' ऐसे शब्द हैं जो केवल स्थानवाचक नामों के बाद ही ('बड़े' और 'छोटे' के अर्थ में) आते हैं, शेरपुर कलाँ, शेरपुर ख़ुर्द। कभी-कभी विशेषणों की भी विशेषता बतानेवाले विशेषणों का प्रयोग हिन्दी में होता है जिन्हें प्रविशेषण कहा जा सकता है। इनके भी क्रम की एक सामान्य व्यवस्था है। उदाहरण के लिए 'वह बहुत अधिक सुन्दर है' तो प्रयोग होता है किन्तु 'वह अधिक बहुत सुन्दर है' नहीं होता। ऐसे ही 'वह बड़ा धूर्त है','वह बहुत धूर्त है' तो प्रयुक्त होते हैं किन्तु 'वह बड़ा बहुत धूर्त है' नहीं होता। इसी तरह 'बड़ा भारी' या 'निहायत घटिया' तो प्रयोग में आते हैं किन्तु 'भारी बड़ा' या 'ज़्यादा बहुत' आदि नहीं। इस दिशा में कार्य अपेक्षित है। ऐसे प्रयोगों के भीतर एक व्यवस्था है, जिसकी जानकारी ठीक प्रयोगों के लिए आवश्यक है।

कभी-कभी एक से अधिक विशेषण एक साथ आते हैं, और उनमें भी एक सामान्य क्रम होता है। उदाहरण के लिए यदि सार्वनामिक और गुणवाचक विशेषण का प्रयोग अपेक्षित हो तो सामान्यतः सार्वनामिक पहले आयेगा तथा गुणवाचक बाद में : इतनी अच्छी पुस्तक, वह बड़ा घोड़ा, यह सुन्दर चित्र, वह काला आदमी। संख्यावाचक विशेषण और गुणवाचक विशेषण हों तो संख्यावाचक पहले आयेगा : दो काले कुत्ते, तीन ख़ूँख़ार शेर। सम्बन्धवाचक विशेषण और गुणवाचक विशेषण हों तो पहले सम्बन्धवाचक आयेगा : उसका सफ़ेद रूमाल, मेरी काली पेंसिल। सम्बन्धवाचक, संख्यावाचक तथा गुणवाचक हों तो इसी क्रम से आयेंगे : मोहन की एक नई पुस्तक, सीता की दो सुनहरी चूड़ियाँ। संख्यावाचक, प्रविशेषण और गुणवाचक हों तो वे भी इसी क्रम से प्रयुक्त होंगे। एक बड़ी अच्छी पुस्तक, दो बड़े अच्छे कवि।

यह तो विभिन्न प्रकार के विशेषण थे। कभी-कभी एक विशेष्य के साथ एक से अधिक गुणवाचक विशेषण भी आते हैं, और उनका भी एक विशेष क्रम ही प्रायः प्रयोग होता है। पुराना लाल कोट, उसकी काली बड़ी-बड़ी आँखें, सफ़ेद ऊँची इमारत, अच्छा-भला आदमी। कभी-कभी क्रम बदला भी जा सकता है किन्तु तब अर्थ बदल जाता है : 'अच्छा-ख़ासा आदमी'—'ख़ासा अच्छा आदमी';

'काली बड़ी आँखें'—'बड़ी काली आँखें'; 'बड़ी भारी पुस्तक'—'भारी बड़ी पुस्तक'।

लगभग या निश्चय का भाव व्यक्त करने के लिए कभी-कभी एक से अधिक संख्यावाचक विशेषणों का प्रयोग होता है। उनका भी एक निश्चित क्रम होता है : कम पहले, अधिक बाद में : एक-दो, दो-तीन, दो-चार, दस-बीस, पचास-साठ, सत्तर-अस्सी, दो सौ-चार सौ, दस-बीस-पचास। किन्तु इनमें भी कुछ प्रयोग अपवादस्वरूप ऐसे भी हैं जिनमें दोनों प्रकार के प्रयोग चलते हैं : पचास-सौ, सौ-पचास; पाँच सौ-हज़ार, हज़ार-पाँच सौ; पाँच-दस, दस-पाँच, पच्चीस-पचास, पचास-पच्चीस।

यहाँ हिन्दी से कुछ थोड़े से उदाहरण थे। वास्तविक स्थिति यह है कि सभी भाषाओं में विशेषणों के प्रयोग में क्रम-संबंधी अनेकानेक नियम काम करते हैं। अभी तक विश्व की किसी भी भाषा में प्रयुक्त इन नियमों पर काम नहीं हुआ है।

अव्यय के प्रयोग में भी क्रम का महत्त्व कम नहीं है। अव्यय शब्द हिन्दी वाक्यों में प्राय: तीन स्थानों पर आते हैं :—

मुड़ते ही शेर ने **बैल की पीठ** पर अपना पंजा **इतनी जोर से** मारा **कि** धराशायी हो गया।

इनमें भी विशेष क्रम होता है, जिसमें कुछ सीमा तक ही परिवर्तन किये जा सकते हैं। **'कि'** को उपर्युक्त वाक्य में से नहीं हटा सकते। पहले तीन को, तीन के स्थान पर दो (शेर ने मुड़ते ही बैल की पीठ पर) या एक (मुड़ते ही बैल की पीठ पर इतनी जोर से) स्थान पर कर सकते हैं, किंतु क्रम को सामान्यत: नहीं बदल सकते जब तक कि किसी पर बल देना अभीष्ट न हो।

जब एक से अधिक क्रिया शब्दों का एक वाक्य में प्रयोग हो तो उनमें भी विशेष क्रम होता है : सेना बढ़ती **चली आ रही है**, अब दरवाज़ा **खोल दिया जा सकता है**। मुख्य अर्थ की द्योतक क्रिया (खोल) पहले आती है, उसके बाद रंजक क्रिया (देना), फिर वाच्यसूचक (जा) फिर सक-वर्गीय (सक, चुक आदि) और अन्त में 'होना' के रूप।

क्रिया के साथ भर, ही, मात्र, तो, भी, मत, नहीं, न का प्रयोग भी अवधारण या निषेध के लिए होता है। ये भी क्रम में स्वतंत्र नहीं हैं। इनकी सीमाएँ हैं, उदाहरणार्थ :—

पुस्तक नहीं ख़रीदी जा सकती।
पुस्तक ख़रीदी नहीं जा सकती।

तो ठीक हैं किन्तु,

पुस्तक ख़रीदी जा नहीं सकती।

अल्पप्रयुक्त है और आता भी है तो विशेष अर्थ में। दूसरा उदाहरण है :—

साँप को नहीं मारा जा सकता था। (बहुप्रयुक्त)
साँप को मारा नहीं जा सकता था। (प्रयुक्त)

साँप को मारा जा नहीं सकता था। (अल्पप्रयुक्त)

साँप को मारा जा सकता नहीं था। (प्रायः अप्रयुक्त)

साँप को मारा जा सकता था नहीं। (प्रायः अप्रयुक्त)

क्रम से शब्दों के वाग्भाग में भी अंतर पड़ता है :

खंभे टेढ़े गड़े हैं।

टेढ़े खंभे गड़े हैं।

13
समाजशब्दविज्ञान

समाज के संदर्भ में भाषा के अध्ययन को समाजभाषाविज्ञान कहा जाता है। उसी प्रकार समाज के संदर्भ में शब्दों के अध्ययन के लिए यहाँ समाजशब्द-विज्ञान नाम का प्रयोग किया जा रहा है। यों यदि इस नाम के दो अर्थ ले लिए जाएँ तो भी कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए। इस दृष्टि से समाजशब्दविज्ञान का एक अध्ययन-क्षेत्र तो है 'समाज के परिप्रेक्ष्य में शब्दों का अध्ययन' तथा दूसरा अध्ययन-क्षेत्र है 'समाज पर प्रकाश डालने के लिए या समाज विशेष को जानने के लिए शब्दों का अध्ययन'। यहाँ क्रमशः दोनों को लिया जा रहा है।

समाज के परिप्रेक्ष्य में शब्दों का अध्ययन

वस्तुतः समाजभाषाविज्ञान में शब्दों के स्तर पर जो अध्ययन किया जाता है, वह यही है। उदाहरण के लिए हिंदी में मध्यम पुरुष के लिए तीन सर्वनाम शब्द हैं: तू, तुम, आप। इनका प्रयोग सामाजिक संबंधों पर आधारित है। अपवादों की बात छोड़ दें तो जो लोग सामाजिक संबंधों में वक्ता से छोटे हैं, तथा जिनके साथ सामाजिक संबंधों में औपचारिकता नहीं है, उनके लिए वक्ता 'तू' का प्रयोग करेगा। वह व्यक्ति अपना बच्चा भी हो सकता है, नौकर भी, और घनिष्ठ मित्र भी। 'तुम' इसकी तुलना में कुछ ऊपर है। यह भी अनौपचारिक है, किंतु 'तू' जितना नहीं। 'आप' का प्रयोग सामाजिक संबंधों की दृष्टि से अपने से बड़े या तथा ऐसों के लिए करते हैं जिनके साथ वक्ता के संबंध औपचारिक हैं। वह व्यक्ति पिता भी हो सकता है, समाज का कोई धनी-मानी व्यक्ति भी हो सकता है, बड़ा अधिकारी भी हो सकता है, और अच्छे स्तर का दिखनेवाला अजनबी भी। इस तरह इन शब्दों के प्रयोग के नियम भाषा की संरचना में निहित नहीं हैं, वे सामाजिक मान्यताओं में निहित हैं।

ऐसे ही बहुत से शब्द औपचारिक होते हैं। औपचारिक सामाजिक संबंधों के होने पर ही उनका प्रयोग होता है। जैसे शुभनाम (आपका शुभनाम क्या है?) शुभस्थान (आपका शुभस्थान कहाँ है?), कृपा (कल फिर एक बार आने की कृपा करें), कष्ट (इस अवसर पर आप भी पधारने का कष्ट करें) आदि। 'शुभनाम' की तुलना में 'नाम' में वह औपचारिकता नहीं है, न 'शुभस्थान' की तुलना में 'स्थान' में है। यहाँ यह ध्यान देने की बात है कि किसी शब्द के मूल अर्थ में

औपचारिकता या अनौपचारिकता नहीं होती। सामाजिक मान्यताएँ ही एक को औपचारिक शब्द बना देती हैं और दूसरे को अनौपचारिक।

कभी-कभी हम देखते हैं कि भाषा का एक शब्द ठीक माना जाता है किंतु उसी अर्थ का दूसरा शब्द अश्लील माना जाता है। प्रश्न यह उठता है कि एक ही अर्थ में प्रयुक्त दो शब्दों में एक अश्लील शब्द क्यों हो गया और दूसरा अश्लील क्यों नहीं माना गया। इसका कारण न तो भाषा की संरचना में है और न शब्द में। इसका कारण भी समाज ही है। वस्तुतः पाख़ाना, पिशाब जननेन्द्रिय आदि से संबद्ध शब्द जब समाज में बहुत प्रचलित हो जाते हैं तो समाज उन्हें अश्लील ठहरा देता है, जिसका परिणाम यह होता है कि शिष्ट भाषा में उनका प्रयोग वर्जित हो जाता है तथा समाज उनके स्थान पर नए शब्दों का प्रयोग शुरू कर देता है। इस तरह नए शब्द पुराने अश्लील शब्दों को धक्का देकर सामाजिक प्रयोग से बाहर कर देते हैं। इसी तरह अंग्रेज़ी के शिष्ट प्रयोग से 'लैट्रिन' और 'यूरिनल' को 'बाथरूम' ने निकाल बाहर किया, फिर 'बाथरूम' भी अश्लील हो गया तो 'ट्वॉयलेट' आया। हिंदी में मल, मूत्र, वीर्य आदि के समानार्थी समाज-प्रचलित अनेक शब्द इसी तरह अश्लील माने जाने के कारण प्रयोग से निकल गए हैं। 'वह गर्भवती है' न कहकर 'उसका पैर भारी है' कहना इसीलिए पसंद किया जाता है। अंग्रेज़ी में इसी तरह 'प्रेगनेंट' का प्रयोग न करके 'इन फ़ैमिली वे' का प्रयोग करते हैं। तो हमने देखा कि शब्दों पर 'अश्लीलता' समाजद्वारा आरोपित होती है।

इस प्रसंग में कुछ अन्य प्रकार के शब्दों की वर्जना की बात भी की जा सकती है। हिंदी क्षेत्र के अनेक गाँवों में दिन में तो लोग 'साँप' तथा 'बिच्छू 'शब्दों का प्रयोग करते हैं किंतु रात में वे लोग 'साँप' को 'जेवर' या 'रसरी' तथा 'बिच्छू' को 'टेढ़की' कहते हैं। इसका कारण यह है उनका विश्वास है कि रात में नाम लेने से ये दोनों काट खाने को आ जाएँगे। इसी तरह के भय ने कुछ बीमारियों को अच्छे-अच्छे नामों द्वारा या शब्दों द्वारा पुकारने को बाध्य किया है। उदाहरण के लिए चेचक के विभिन्न प्रकारों के लिए 'माता', 'शीतला', 'दुलारो' जैसे शब्दों के प्रयोग के पीछे इसी तरह की भावना काम कर रही है।

कभी-कभी ऐसा भी देखने में आता है कि बहुत से शब्दों का लिंग एक से दो हो जाता है। उदाहरण के लिए कलेक्टर, कमिश्नर, डिप्टी-कलेक्टर, जज, इन्स्पेक्टर प्रोफ़ेसर, डॉक्टर आदि शब्द पहले पुल्लिग थे, किंतु अब ये पुल्लिग भी हैं, स्त्रीलिंग भी। ऐसे ही 'नर्स' शब्द पहले केवल स्त्रीलिंग था, किंतु अब पुल्लिग भी है। ऐसा क्यों हुआ, इसका कारण हमें हिंदी भाषी समाज में खोजना होगा। पहले चूँकि कलेक्टर, कमिश्नर आदि के पदों पर केवल पुरुष काम करते थे, अतः इस वर्ग के शब्द पुल्लिग थे, अब इन पदों पर स्त्रियाँ भी काम करने लगी हैं, अतः ये शब्द स्त्रीलिंग भी हैं। इसी प्रकार नर्स का काम पहले लड़कियाँ और औरतें ही करती थीं, अतः यह शब्द स्त्रीलिंग था, अब मेल नर्स के रूप में लड़के और

पुरुष भी यह काम करते हैं, अतः यह शब्द अब उभयलिंगी हो गया है। इस तरह के शब्द-लिंग-परिवर्तन के पीछे सामाजिक परिवर्तन काम करते हैं।

शब्दों में ध्वनियों की दृष्टि से परिवर्तन होते हैं, तथा कभी-कभी इन परिवर्तनों के पीछे सामाजिक कारण होते हैं। उदाहरण के लिए, पूर्वी उत्तर प्रदेश तथा पश्चिमी बिहार के बहुत से ब्राह्मण घरों में 'गोभी' को 'कोभी' कहते रहे हैं। 'ग' के 'क' में इस परिवर्तन के पीछे कारण यह रहा है कि 'गो' का अर्थ 'गाय' है, अतः खाने के नाम में इसे नहीं आना चाहिए। इसलिए 'गोभी' का 'कोभी' करके अत्यधिक धर्मांध लोगों ने यह सोचकर संतोष की साँस ली कि उन्होंने 'गोभी' खा भी ली और उनका धर्म भी बच गया। कुछ ऐसे ही कारणों से पंजाब तथा पश्चिमी हिंदी प्रदेश में 'मसूर' शब्द के स्थान पर 'मलका' शब्द चल पड़ा। हुआ यह कि, 'सूअर' मुसलमानों के लिए 'हराम' है, और 'सूअर' को पश्चिमी क्षेत्र में 'सूर' भी कहते हैं, यह 'सूर' चूँकि 'मसूर' शब्द में भी आता है, अतः किसी खाद्य पदार्थ को 'मसूर' कहना मुसलमानों को उचित नहीं लगा और वे अपनी इस पसन्दीदा दाल को 'मलका' कहने लगे। इसीलिए बहुत से लोग 'मसूर' को 'मलका मसूर' भी कहते हैं। बहुत से हिंदू 'मांस' से परहेज़ करते हैं, और 'मसूर' में प्रारंभ में 'मस' है, अतः उत्तर प्रदेश के काफ़ी हिंदू घरों में 'मसूर' की दाल नहीं खाई जाती। 'मसूर' का मांस की तरह लाल होना भी इसका एक कारण है।

यह तो ध्वनि और शब्द के बदलने की बात थी। कभी-कभी सामाजिक कारणों से शब्दों के अर्थ भी बदल जाते हैं। उदाहरण के लिए 'बौद्ध' का अर्थ है 'बुद्ध का अनुयायी', किंतु इसी से विकसित शब्द 'बुद्धू' का अर्थ है 'मूर्ख'। हुआ यह कि भारत में जब बौद्ध धर्म का ह्रास होने लगा तथा इसके अनुयायियों में तरह-तरह की बुराइयाँ आने लगीं तो स्वभावतः हिंदू समाज इस धर्म को 'हीन' तथा इसके अनुयायियों को 'मूर्ख' मानने लगा, और परिणाम यह हुआ कि 'बुद्धू' शब्द का अर्थ 'बुद्ध धर्म का अनुयायी' से हटकर मूर्ख हो गया। हिंदी का 'नंगा-लुच्चा' शब्द भी कुछ इसी प्रकार हेयार्थी बना। प्रारंभ में कुछ जैन साधुओं को 'नग्न' (दिगंबर) रहने के कारण 'नग्नक' तथा आतमपीड़न के लिए अपने बाल नोचने के कारण 'लुंचक' कहते थे। बाद में इन साधुओं का समाज जब भ्रष्ट हो गया तो 'नंगा-लुच्चा' रूप में इनका नाम हेयार्थी विशेषण बन गया। वस्तुतः कोई भी समाज-च्युत होता है तो उसका नाम भी अपने उच्चार्थ खोकर हेयार्थी बन जाता है। इसी तरह स्वतंत्रता पूर्व के उच्चार्थी शब्द 'कांग्रेसी' तथा 'नेता' अब हेयार्थी हो गए हैं। इसके विपरीत भी कुछ परिवर्तन देखे जाते हैं। 1930-40 के आस-पास इंग्लैंड में 'इंडियन' का जो अर्थ था, आज निश्चय ही वह नहीं है।

इस तरह शब्दों का अध्ययन-विश्लेषण, अनेक दृष्टियों से समाज के संदर्भ में करना संभव है।

समाज की जानकारी के लिए शब्दों का अध्ययन

समाज-विशेष की जानकारी के लिए शब्दों का अध्ययन-विश्लेषण काफ़ी काम का होता है। अनेक पुरानी संस्कृतियों के अध्ययन में वहाँ के पुराने शब्द-भांडार का अध्ययन इसी रूप में सहायक होता है। भाषाविज्ञान के अध्येताओं से यह बात छिपी नहीं है कि जब पिछली सदी के उत्तरार्ध में तथा इस सदी के पूर्वार्ध में यह प्रश्न उठा कि संस्कृत, अवेस्ता, पुरानी फ़ारसी, ग्रीक, जर्मन, रूसी आदि की मूलभाषा 'भारोपीय' बोलने वाले लोग (जिन्हें कुछ लोगों ने आर्य भी कहा है) मूलतः कहाँ रहते थे, तो विद्वानों को शब्दों के अध्ययन की ही सहायता सर्वाधिक लेनी पड़ी। किया यह गया कि इन सभी भाषाओं के शब्द-भांडार की तुलना करके मिलते-जुलते शब्द अलग कर लिए गए और यह माना गया कि ये शब्द उस मूल भाषा में भी किसी-न-किसी रूप में रहे होंगे। फिर इन शब्दों का विषयानुसार वर्गीकरण किया गया। इसके उपरांत इन वर्गीकृत शब्दों के आधार पर उस पुराने समाज की बहुत सी बातों को खोज निकालने का प्रयास किया गया। उदाहरण के लिए, नाते-रिश्ते की समान शब्दावली के आधार पर यह पता लगाया गया कि उस समाज में किन-किन संबंधों को स्वीकृति मिली थी, तो खाद्य-विषयक समान शब्दावली से यह पता चला कि वे लोग क्या खाते-पीते थे। इसी तरह पशु-पक्षियों की समान शब्दावली ने उनके परिचित पशु-पक्षियों की जानकारी दी। इसी तरह उनके धर्म और विश्वास उनके व्यवसाय तथा उनकी गणना-पद्धति आदि के बारे में भी अत्यंत महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष निकाले गए। इन सबके साथ-साथ शब्दों के आधार पर भौगोलिक जानकारी भी प्राप्त की गई और उसके आधार पर उनके मूल निवास-स्थान के बारे में अनुमान लगाए गए। इस तरह समाज-विशेष पर प्रकाश डालने के लिए शब्द बहुत ही महत्त्वपूर्ण साधन हैं।

कभी-कभी तो शब्दों के विश्लेषण और उनकी तुलना से संस्कृतियों के बारे में ऐसी-ऐसी बातों का उद्घाटन होता है जिनकी ओर सामान्यतः हमारा ध्यान नहीं जाता। उदाहरण के लिए भारत में अभिवादन के शब्द सामाजिक संबंधों पर आधारित हैं : 'दंडवत' (श्रद्धा से डंडे के समान किसी के सामने भूमि पर पड़ जाना) का प्रयोग लोग बहुत पहुँचे हुए साधू-महात्माओं के लिए करते हैं; 'पालागन' (पैर छूना) अपने से बड़े सगे-संबंधियों आदि के लिए करते हैं; 'प्रणाम' (अर्थ है विशेष झुकना) अपने से बड़े किसी को भी कर सकते हैं, यह अधिक औपचारिक है; 'नमस्कार' (अर्थ है झुकना), 'नमस्ते', 'आशीर्वाद' (पुराने लोग अपने से छोटों के लिए इसका प्रयोग करते हैं) भी ऐसे ही क्रमशः सामाजिक मापदंड पर ऊपर से नीचे आते हैं। इसकी तुलना अंग्रेज़ी आदि यूरोपीय अभिवादन प्रणाली से करें तो हम पाते हैं कि उनके शब्द (Goodmorning, Goodevening, Goodnight) सामाजिक संबंधों पर

आधारित न होकर समय-विभाजन पर आधारित हैं। क्या इसका अर्थ यह नहीं है कि हमारा समाज 'सामाजिक' संबंधों में 'बड़े होने-छोटे होने' को अधिक महत्त्व देता है तो उनका समाज 'समय' को अधिक महत्त्व देता है। यह ध्यान देने की बात है कि शब्द इस तरह की बड़ी पते की बहुत सारी बातें विभिन्न समाजों के बारे में बता सकते हैं, यदि उनका इस दृष्टि से अध्ययन-विश्लेषण अच्छी तरह किया जाए।

कुछ और तरह के उदाहरण लें। यदि कोई यह पूछे कि प्राचीन भारतीयों में कौन-कौन से अंधविश्वास प्रचलित थे तो सामान्यतः उनका लेखा-जोखा कहीं एक स्थान पर नहीं मिलेगा, किंतु संस्कृत के शब्दों में ऐसे काफ़ी संकेत हैं जो इस बात पर अच्छा प्रकाश डालते हैं। उदाहरण के लिए 'चाँद' के कुछ संस्कृत पर्यायों को लें : सुधाकर, सुधारश्मि, अमृतांशु, सुधानिधि। इनके विश्लेषण से स्पष्ट हो जाएगा कि लोगों का यह विश्वास रहा है कि चंद्रमा में अमृत की निधि है जो उसकी किरणों के माध्यम से पृथ्वी पर आती है। आज भी बहुत से लोग कार्तिक पूर्णिमा की रात में चाँदनी में खीर रखकर प्रात: जो खाते हैं उसके पीछे इसी विश्वास का अवशेष है। वही अमृत उस खीर को दीर्घायुता की विशेषता प्रदान करता है। इसी तरह चाँद के 'मृगांक' और 'हरिणांक पर्याय यह बता रहे हैं कि लोगों का विश्वास था कि चाँद में जो काला निशान है वह 'हिरन' है। इसी आधार पर ये शब्द बनाए गए हैं। 'कपूर' के लिए संस्कृत में 'घनसार' तथा 'मेघसार' शब्दों का प्रयोग मिलता है। इसके पीछे यह अंधविश्वास है कि स्वाति नक्षत्र के बादल की बूंदें केले के पेड़ में पड़कर कपूर बन जाती हैं और पृथ्वी के अचला, निश्चला, स्थिरा पर्याय शब्द क्या कहते हैं ? कहते हैं कि पृथ्वी अचल है, निश्चल है, स्थिर है—ऐसी मान्यता इन शब्दों के रचयिताओं के मस्तिष्क में निश्चय ही रही होगी। कहना न होगा कि यह मान्यता भी अंधविश्वास है, सत्यतः तो पृथ्वी चला, अस्थिरा है, अचला, स्थिरा नहीं।

हिंदू गोहत्या के बहुत ही विरोधी रहे हैं, किंतु वैदिक साहित्य में अतिथि का पर्यायवाची शब्द 'गोघ्न' कुछ और कहानी कहता है। 'गोघ्न' का अर्थ है जिसके लिए गौ मारें। वृहदारण्यक उपनिषद् में भी आता है कि सम्मान्य अतिथि के आने पर महोक्ष (अच्छा बैल) मारे जाते थे। कुछ संस्कृत नाटकों में भी इस प्रकार के उल्लेख हैं। वास्तविकता यही है कि पहले आर्य गोमांस खाते थे, बाद में 'गाय' और 'बैल' की उपयोगिता देखकर 'गोहत्या' पर बंदिश लगी और तब 'गाय' के लिए एक नए पर्याय का निर्माण हुआ। वह पर्याय है 'अघ्न्या' अर्थात् 'वह जो मारने योग्य न हो'। इस प्रकार 'गोघ्न' तथा 'अघ्न्या' शब्द हिंदू समाज की वर्तमान मान्यताओं से पूर्णतः अलग एक लुप्त परंपरा का उद्घाटन करते हैं।

हिंदुओं में मुर्दा जलाते हैं तथा मुसलमानों और ईसाइयों में गाड़ते हैं। किंतु वास्तविकता यह है कि पुराने आर्य भी अपने मुर्दे गाड़ते थे। 'श्मशान' शब्द का संबंध 'शी' धातु से है। 'शी' का अर्थ है 'लेटना', 'सोना'। अर्थात् 'श्मशान' वह

है जहाँ मुर्दे लिटाए या गाड़े जाते थे। भारतीय संस्कृति के प्रसिद्ध विद्वान् आचार्य क्षितिमोहन सेन भी अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'भारतीय संस्कृति' में इसी निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि आर्य अपने मुर्दे गाड़ते थे, जलाते नहीं थे। वस्तुतः जलाने की परंपरा आर्यों ने बाद में अनार्यों से ग्रहण की।

एक बार भारतीय संस्कृति पर मेरा एक भाषण था। भाषण के बाद एक पंडित जी मेरे पास उठकर आए। भाषण की प्रशंसा करते हुए बोले, 'डॉक्टर साहब, आप भारतीय संस्कृति के इतने अच्छे जानकार होकर भी पैंट-बुश्शर्ट पहनते हैं, यह आपको शोभा नहीं देता। आपको तो 'कुर्ता' पहनना चाहिए। पंडित जी कुर्ता पहने हुए थे। पहले तो मैंने सोचा कि चुप रहूँ फिर मन में आया कि उनका भ्रम दूर हो जाना चाहिए, अतएव मुझे उन्हें बताना पड़ा कि 'कुर्ता' तुर्की शब्द है, और यह कपड़ा मुसलमानों के साथ भारत में आया है। ऐसे ही 'पैजामा' फ़ारसी शब्द है। मूल है 'पायजामा'। 'पाय' अर्थात् 'पैर' और 'जामा' यानी कपड़ा। तो 'पैजामा' का फ़ारसी अर्थ है 'पैर का कपड़ा'। इस तरह पैंट-बुश्शर्ट जितने विदेशी हैं, उतने ही विदेशी पायजामा-कुर्ता भी हैं। वस्तुतः अपने यहाँ के पुराने कपड़े 'अंगरक्षक' तथा 'अधोवस्त्र' थे। पहले का अर्थ है 'अंगों की रक्षा करने वाला'। यही शब्द मध्यकाल में 'अँगरखा' बन गया था। दूसरे शब्द 'अधोवस्त्र' का अर्थ है 'नीचे पहनने का कपड़ा'। इसी का विकास धोती है। अपवादों की बात छोड़ दें तो यह प्रायः पाया जाता है कि जब किसी संस्कृति से कोई वस्तु आती है तो उसका नाम भी वहीं से आता है। इस तरह ऐसे ही अपने यहाँ अंग पोंछने के लिए पहले एक कपड़े का प्रयोग होता था जिसे 'अंगप्रोक्षक' कहते थे, इसका अर्थ है 'अंग पोंछने वाला। 'अँगोछा' यही है। पुर्तगालियों के साथ 'तौलिया' शब्द आया। प्रायः लोग 'तौलिया' को अंग्रेज़ी 'टॉवेल' से निकला समझते हैं किंतु ऐसा है नहीं। अंग्रेज़ों के आने के पूर्व तौलिया, बिस्कुट, लालटेन —वस्तुएँ तथा शब्द—पूर्तगालियों के साथ भारत में आ चुके थे। 'मैदा' और 'सेवई' (सेवियाँ) दोनों की ही प्रयोग-परंपरा यूनान से भारत में आई है, और ये दोनों शब्द मूलतः यूनानी शब्द 'सेमिदालिस' है। मिठाइयों में कौन भारतीय हैं तथा कौन विदेशी, उनके नामों के आधार पर यह भी सरलता से जाना जा सकता है। उदाहरणार्थ 'मोदक', 'लड्डू' अपने हैं तो 'जलेबी', 'बर्फ़ी' मुसलमानों के साथ आए हैं। ये फ़ारसी शब्द हैं। आधुनिक काल की मिठाइयों (पेस्ट्री, केक टॉफ़ी,चॉकलेट) के बारे में हम जानते ही हैं कि वे हमारे समाज को अंग्रेज़ों की देन हैं।

इस तरह कोई समाज क्या सोचता रहा है, क्या मानता रहा है, कैसा रहा है, क्या उसका अपना है तथा क्या उसने अन्यों से लिया है—आदि-इत्यादि बातों का बहुत अच्छा लेखा-जोखा हमें उस समाज की भाषा के शब्द दे सकते हैं, यदि हम गहराई से उनका अध्ययन-विश्लेषण करें।

14

आधारभूत शब्दावली

'आधारभूत शब्दावली' में 'शब्दावली' का अर्थ है किसी भाषा में प्रयुक्त शब्दों का समूह। इसके हिंदी में अन्य नाम 'शब्दसमूह', 'शब्दभंडार' तथा 'शब्द-भांडार' हैं। अँग्रेज़ी में इसे 'वॉकेबुलरी' (Vocabulary) कहते हैं। 'आधारभूत' का अर्थ है 'जो आधार हो'। इसे 'मूल' या 'मूलभूत' या 'बुनियादी' भी कहते हैं। अंग्रेज़ी में इसे 'बेसिक' (Basic) कहा जाता है। इस तरह 'आधारभूत शब्दावली' अंग्रेज़ी 'बेसिक वॉकेबुलरी' का हिंदी पर्याय है।

जैसा कि पीछे 'शब्दसमूहविज्ञान' (आरेख के लिए वहाँ देखिए) शीर्षक अध्याय में हम देख चुके हैं, 'प्रयोग' और 'प्रकृति' की दृष्टि से किसी भी भाषा की शब्दावली या उसके शब्दसमूह के शब्दों को तीन वर्गों में रखा जा सकता है : उच्च मध्यवर्ती तथा आधारभूत। उच्च शब्द भाषा के शब्दसमूह में सबसे बाहरी होते हैं। इस वर्ग में उस भाषा में विभिन्न विज्ञान, शास्त्रों, कलाओं एवं विषयों के पारिभाषिक शब्द आते हैं तथा कुछ वे शब्द आते हैं जो साहित्य में कभी-कभार प्रयुक्त होते हैं, अतः प्रायः क्लिष्ट माने जाते हैं तथा इनका ज्ञान कम ही लोगों को होता है। मध्यवर्ती शब्द उच्च शब्दों की तुलना में भाषा की संरचना में भीतरी होते हैं किंतु उतने नहीं जितने आधारभूत शब्द होते हैं। इनका ज्ञान अपेक्षाकृत काफ़ी लोगों को होता है, किंतु इनमें से काफ़ी शब्द लोगों की निष्क्रिय शब्दावली के भाग होते हैं, सक्रिय शब्दावली के नहीं। साहित्य की विभिन्न विधाओं में ही इनका प्रयोग प्रायः होता है। इन दोनों ही की तुलना में आधारभूत शब्द भाषा की संरचना में भीतरी होते हैं। भाषा का काम उनके बिना नहीं चल सकता।

आधारभूत शब्दावली किसी भाषा के पूरे शब्दसमूह का वह केंद्रांश (core) होती है जिसे उस भाषा की मूलभूत अभिव्यक्तियों का आधार कहा जा सकता है। उसे हम पूरे शब्दभंडार का मर्म या प्राण कह सकते हैं। उस भाषा की प्राथमिक जानकारी के लिए आधारभूत शब्दावली का ज्ञान अनिवार्यतः आवश्यक होता है, इसीलिए उस भाषा के सभी बोलने वाले (चाहे वे शिक्षित हों या अशिक्षित) उससे अवश्य परिचित होते हैं और इसीलिए यदि कोई अन्य भाषा-भाषी उस भाषा को सीखना चाहे तो कम-से-कम उन शब्दों की जानकारी उसके लिए बहुत ही आवश्यक होती है। आधारभूत शब्दावली पूरे शब्दसमूह की तुलना में

बहुत छोटी होती है तथा उसमें उन सभी सामान्य एवं सार्वजनीन वस्तुओं एवं संकल्पनाओं (concepts) की अभिव्यक्ति के लिए अपेक्षित संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, क्रिया तथा अव्यय शब्द होते हैं जो किसी भाषायी समाज के दैनिक जीवन में आपसी सम्पर्क के आधार होते हैं। प्रत्येक भाषा में अन्य शब्दों की तुलना में आधारभूत शब्दों का ही प्रयोग अधिक होता है। किसी भाषा की अधिकांश बोलियों में ये शब्द यदि ध्वन्यात्मक परिवर्तनों की बात छोड़ दें तो प्रायः समान होते हैं। एक बोली-भाषी व्यक्ति दूसरे बोली-भाषी को इन्हीं के आधार पर समझ लेता है।

आधारभूत शब्दावली की एक यह विशेषता भी उल्लेख्य है कि उच्च या मध्यवर्ती शब्दावली की तुलना में यह अन्य भाषाओं से बहुत कम प्रभावित होती है। बाह्य प्रभाव तकनीकी क्षेत्रों में पहले उच्च में आता है तथा अन्य क्षेत्रों में प्रायः मध्यवर्ती में। अन्य भाषाओं के कम ही शब्द, आधारभूत शब्दसमूह तक पहुँच पाते हैं, और जो पहुँचते हैं, वे भी कुछ अपवादों को छोड़कर, प्रायः बहुत देर में।

किसी भाषा की आधारभूत शब्दावली का वैज्ञानिक ढंग से पता लगाने का कार्य इस सदी के तीसरे दशक में शुरू हुआ। 1922 में डॉ० थार्नडाइक (Thorndike) ने कोलम्बिया विश्वविद्यालय से अंग्रेज़ी के सर्वाधिक प्रयुक्त बीस हज़ार शब्दों की सूची (Teacher's Wordbook of Twenty Thousand Words found most frequently and widely in general literature) प्रकाशित की। इस कार्य के लिए प्रयोगों के एक करोड़ कार्ड बनाए गए थे, जिनके आधार पर इन 20 हज़ार शब्दों की छँटाई हुई। यह सूची सच्चे अर्थों में आधारभूत शब्दावली की तो थी नहीं किन्तु कार्य उसी दिशा में था। ये बीस हज़ार वे शब्द थे जो सर्वाधिक प्रयुक्त होते थे। आगे चलकर इनके आधार पर शिक्षा के लिए स्तरित (graded) पाठ्यपुस्तकें बनाई गई थीं। 1927 में कैम्ब्रिज के आर्थोलॉजिकल इन्स्टीट्यूट ने अंग्रेज़ी की आधारभूत शब्दावली पर कार्य शुरू किया जिसके परिणामस्वरूप अंग्रेज़ी भाषा में आधारभूत शब्द 850 माने गए। रूसी भाषा पर इस दृष्टि से बहुत विस्तृत कार्य हुआ है। सोवियत संघ की इस्तोनिया जनतन्त्र की राजधानी ताल्लिन की अकादमी के रूसी विभाग ने 300 व्यक्तियों से इस दिशा में 3 वर्षों (1959-1962 तक) काम कराया और बाद में रूसी भाषा के सर्वाधिक प्रयुक्त शब्दों पर पुस्तक प्रकाशित की। भारत में इस दिशा में अभी कुछ ही कार्य हुआ है। गुजराती (Phonemic and Morphemic Frequencies of the Gujarati Language—P. B. Pandit, Poona 1965) तथा मराठी (Phonemic and Morphemic Frequencies of the Marathi Language—S.V. Bhagwat) में इस दिशा में दो महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं।

हिन्दी में इस दृष्टि से कई काम हुए हैं। 1958 में, मूलतः श्रीराम शर्मा द्वारा तैयार की गई, हिन्दी के 500 शब्दों की सूची (Basic Hindi Vocabulary)

भारत सरकार ने प्रकाशित की। उसी वर्ष मूलतः उमेशलाल सिंह द्वारा प्रस्तुत हिन्दी के 2000 शब्दों की सूची (Basic Hindi Vocabulary) भी भारत सरकार ने छापी। 1964 में पूना से हिन्दी के सर्वाधिक प्रयुक्त 19,211 शब्दों की एक सूची (Phonemic and Morphemic Frequencies in Hindi —A.M. Ghatge) प्रकाशित हुई, इस प्रसंग में बद्रीनाथ कपूर के1102 हिन्दी शब्दों की सूची (Basic Hindi, वाराणसी, 1962) अजमल ख़ाँ की 1100 शब्दों की सूची [नवभारत टाइम्स (18-10-62) में लेख 'बुनियादी हिन्दी का नया प्रयोग'] तथा जगदीशप्रसाद अग्रवाल की 800 शब्दों की सूची (बेसिक हिन्दी शब्द-सूची, मुरादाबाद) भी उल्लेख्य हैं। 1967 में केंद्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा की ओर से 5 हज़ार हिन्दी शब्दों की एक सूची (हिन्दी की आधारभूत शब्दावली) प्रकाश में आई। उसके एक वर्ष बाद डॉ० कैलाशचन्द्र भाटिया की 2005 शब्दों की सूची (हिन्दी की बेसिक शब्दावली) अलीगढ़ विश्वविद्यालय से छपी, जो हिन्दी में इस दिशा में अब तक के हुए सारे कार्यों में निश्चित रूप से सर्वश्रेष्ठ है।

इस प्रसंग में यह प्रश्न सहज ही उठता है कि किसी भाषा की आधारभूत शब्दावली खोजने का उद्देश्य क्या है। इसका उद्देश्य है भाषा विशेष के शब्दभंडार के सबसे आवश्यक एवं मूल अंश की जानकारी। यह जानकारी कई क्षेत्रों में हमारे बड़े काम की होती है। उदाहरणार्थ उस भाषा को मातृभाषा या अन्य भाषा के रूप में पढ़ने के लिए, बिना किसी क्रम से शब्द सिखाने की तुलना में सबसे पहले इन्हीं शब्दों की स्तरीकृत जानकारी देना अधिक लाभकर होता है। भाषा-शिक्षण के क्षेत्र में आधारभूत शब्दावली का प्रयोग आधुनिक युग की एक बहुत बड़ी देन है। इससे अपेक्षाकृत कम समय में, भाषा सीखने वाला अध्येय भाषा में अच्छी गति प्राप्त कर लेता है। इसी प्रकार आशुलिपि-निर्माण, मशीनी अनुवाद, ऐतिहासिक भाषाविज्ञान(विशेषत: भाषाकालक्रमविज्ञान जैसे क्षेत्रों में), अन्य भाषाओं से तुलना के आधार पर पारिवारिक वर्गीकरण तथा उस भाषा के बोलने वालों की मूलभूत आवश्यकताओं एवं मनोविज्ञान को समझना आदि अनेकानेक अन्य क्षेत्रों में भी किसी भाषा की आधारभूत शब्दावली हमारी बहुत सहायता करती है।

किसी भाषा की आधारभूत शब्दावली ज्ञात करने के लिए सबसे पहले हमें सामग्री संकलित करनी पड़ती है। वस्तुतः यही सबसे टेढ़ी खीर है। आधार-सामग्री में अन्तर के कारण परिणाम में अन्तर पड़ना स्वाभाविक है। केन्द्रीय सरकार, केन्द्रीय हिन्दी संस्थान आगरा, डकन कालिज पूना तथा कैलाशचन्द्र भाटिया ने हिन्दी शब्दभंडार के सम्बन्ध में उपर्युक्त पुस्तिकाएँ प्रकाशित की हैं, किन्तु तीनों में काफ़ी असमानता है। यह असमानता मुख्यतः आधार-सामग्री में अन्तर के कारण है। वस्तुतः अभी तक भाषाविज्ञान इस सम्बन्ध में कोई सिद्धान्त नहीं दे सका है कि किसी भाषा की आधारभूत शब्दावली ज्ञात करने के लिए

आधार-सामग्री कितनी और कैसी हो। अर्थात् उपन्यास, कहानी, नाटक, एकांकी, निबन्ध, आलोचना, रेखाचित्र, जीवनी, संस्मरण, पत्र-पत्रिका आदि में क्या-क्या लिया जाए। किसका प्रतिशत क्या हो? सोवियत संघ के जिस बृहत् कार्य की चर्चा ऊपर की गई है, उसमें आधार-सामग्री इस प्रकार थी :—

उपन्यास, कहानी	59%
नाटक	7%
आलोचना, लेख	14%
पत्र-पत्रिकाएँ	20%

गुजराती पर जिस कार्य की चर्चा ऊपर है, उसमें तीन प्रकार के साहित्य से शब्द लिए गए :—

(1) पुस्तकों से	28500 शब्द
(2) रेडियो प्रोग्राम से	21500 शब्द
(3) समाचार-पत्रों से	49687 शब्द
	99687

पूना से प्रकाशित हिन्दी सूची में :—

(1) पत्र-पत्रिकाओं से	45208 शब्द
(2) सरल साहित्य से	23153 शब्द
(3) वैज्ञानिक और गम्भीर साहित्य से	15340 शब्द
(4) अनुवाद, बाल-साहित्य, रेडियो वार्ता तथा स्त्री-साहित्य आदि से	14210 शब्द
	97911

उपर्युक्त से स्पष्ट है कि आधार-सामग्री में कोई एकरूपता नहीं है। इस अनेकरूपता के कारण ही एक भाषा के एक ही काल को लेकर यदि चार स्थानों पर अलग-अलग काम हों तो परिणामों में अन्तर होगा। सभी के परिणाम पूर्णतः एक नहीं हो सकते। इसलिए गणना के आधार पर कोई भी व्यक्ति यह नहीं कह सकता कि अमुक भाषा के अमुक काल में इतने ही और ये ही आधारभूत शब्द थे। वस्तुतः आधारभूत शब्दावली के शब्द और उनकी संख्या केवल 'लगभग' ही हो सकती है।

मोटे रूप से यह अवश्य कहा जा सकता है कि आधार-सामग्री जितनी ही अधिक होगी, परिणाम उतने ही अच्छे होंगे। आधारभूत शब्दावली ज्ञात करने

की पद्धति यह है कि आधार-सामग्री से एक-एक शब्द को अलग-अलग कार्ड पर लिखते हैं। फिर सारे कार्डों को वर्णानुक्रम से रख लेते हैं। ऐसा करने से प्रत्येक शब्द के सारे कार्ड एक स्थान पर आ जाते हैं, जिनसे यह पता चल जाता है कि कौन शब्द कितनी बार आया है। जो शब्द सबसे अधिक बार आया है, उसे सबसे पहले रखते हैं, उससे कम आने वाले को उसके बाद, और इसी प्रकार आगे भी। इस तरह से जो सूची बनती है, उससे प्रथम 500, 700, 1000, 2000, 2500 या 3000 शब्द, जैसी भी आवश्यकता हो, आधारभूत शब्दावली माने जा सकते हैं। यों सामान्यतः यह देखा गया है कि अधिकांश भाषाओं के 2000 से 3000 तक ऐसे शब्द खोजे जा सकते हैं जो विभिन्न प्रकार के साहित्यों एवं बोलचाल में 65 प्रतिशत से 80 प्रतिशत तक आते हैं। शेष 35 से 20 प्रतिशत तक शब्द उच्च या मध्यवर्ती होते हैं।

यहाँ स्पष्टीकरण के रूप में कुछ बातें और कही जा सकती हैं। शब्द से यहाँ अर्थ है ऐसी भाषिक इकाई, (लेखन में) जिसके दोनों ओर ख़ाली जगह होती है। उदाहरणार्थ 'वह घर चला गया' वाक्य में 'वह' 'घर' 'चला' 'गया' ये चार शब्द हैं। एक शब्द के यदि अनेक रूप (घोड़ा, घोड़े, घोड़ों) हों तो सूची में मूल शब्द (घोड़ा) ही रखा जाता है। कभी-कभी एक ही शब्द दो या अधिक पूर्णतः भिन्न अर्थों में आता है: आम (सामान्य, एक फल), पर (परन्तु, पंख), सोना (स्वर्ण, सोने की क्रिया)। ऐसे शब्दों के आने पर इन्हें अलग-अलग शब्द मानना चाहिए। अर्थ के साथ इनके अलग-अलग कार्ड बनने चाहिए। अन्तिम सूची में भी ये अलग-अलग रखे जाएँगे साथ ही स्पष्टता के लिए हर एक के साथ अर्थ का भी संकेत रहेगा।

बहुत से लोग यह सोचते हैं कि सभी भाषाओं की आधारभूत शब्दावली एक होती है। इसी धारण से कुछ लोगों ने अंग्रेज़ी के आधारभूत शब्दावली के आधार पर अन्य भाषाओं (जैसे हिन्दी) की आधारभूत शब्दावली एकत्र करने का प्रयास किया है, किन्तु ऐसा सोचना पूर्णतः भ्रामक है। प्रत्येक भाषा की अपनी भौगोलिक, सामाजिक, राजनीतिक तथा सांस्कृतिक पृष्ठभूमि अलग होती है, इसी कारण प्रत्येक भाषा की मूलभूत आवश्यकताएँ भी एक-सी नहीं हो सकतीं। भारत जैसे कृषिप्रधान देश की भाषाओं के शब्दभंडार में 'खेती' शब्द का जितना प्रयोग होगा, कुवैत जैसे देश की भाषा में नहीं हो सकता। इसी प्रकार रूसी भाषा में 'धर्म' शब्द का उतना प्रयोग नहीं हो सकता, जितना हिन्दी आदि धर्मप्रधान क्षेत्र की भाषाओं में होगा। अमरीकी अंग्रेज़ी के लिए वीडियो, टेलीविज़न, एलीवेटर जैसे शब्द आधारभूत शब्दावली मे होंगे किन्तु अत्यन्त पिछड़े देश की भाषाओं में ऐसा नहीं हो सकता।

यही नहीं, किसी एक भाषा के आधारभूत शब्दभंडार में भी समय के साथ परिवर्तन आता रहता है। हिन्दी के आदि काल में 'पाठशाला' का प्रयोग बहुत होता था, किन्तु अब 'स्कूल' का प्रयोग उसकी तुलना में कहीं अधिक होता है।

अभी कुछ वर्ष पहले तक आना, दुअन्नी, सेर, छटाँक हिन्दी में बहुत प्रयुक्त होते थे, बीच में नया पैसा भी आ गया था, किन्तु अब मात्र पैसा, किलोग्राम ही प्रयोग में आते हैं।

निष्कर्षतः न तो दो भाषाओं की आधारभूत शब्दावली एक हो सकती है, और न किसी एक भाषा की आधारभूत शब्दावली सर्वदा एक रह सकती है। इस तरह किसी भाषा की आधारभूत शब्दावली देश, काल, सभ्यता और संस्कृति पर बहुत कुछ आधारित होती है।

इस प्रसंग में कुछ बातें मैं अपनी ओर से भी कहनी चाहूँगा। मेरे विचार में केवल उपर्युक्त ढंग की गणना के आधार पर भी किसी भी भाषा की आधारभूत शब्दावली सूचीबद्ध नहीं की जा सकती। उदाहरण के लिए, आगरे की शब्दसूची में 'गुरुवार' है किन्तु 'बृहस्पतिवार' नहीं है, हालाँकि इसका प्रयोग 'गुरुवार' से कम नहीं होता। इसी तरह 'दोगुना' है, 'तीनगुना' नहीं है; 'चौथा' है पर 'पाँचवाँ', 'छठा' नहीं है; 'उन्होंने' है, 'इन्होंने' नहीं है। इस तरह की कमियाँ सांख्यिक आधार पर बनी सभी शब्द-सूचियों में मिलती हैं। शिक्षा मंत्रालय की सूची में कमर, नमस्कार, पैर, फ़िल्म जैसे शब्द नहीं हैं। इस प्रकार के कुछ मूल-भूत शब्द तो आधारभूत शब्दावली में, सामग्री का विश्लेषण चाहे जो भी कहे, सम्मिलित कर ही लेना चाहिए। मेरे विचार में किसी भी भाषा की आधारभूत शब्दावली में सभी मुख्य सर्वनाम; दिनों तथा महीनों के सभी प्रचलित नाम; 1 से 100 तक की, क्रमबोधक तथा अपूर्णांकबोधक सख्याएँ; प्रमुख रंगों, फलों, अनाजों, खानों, अंगों, कपड़ों तथा संबंधियों आदि के नाम; सर्वसामान्य विशेषण तथा क्रियाविशेषण एवं सामान्य क्रियाओं के बोधक शब्द (धातुएँ) आदि निश्चित ही आने चाहिए।

इस तरह उपर्युक्त पद्धति पर तैयार की गई आधारभूत शब्दावली में इस प्रकार के अतिरिक्त शब्दों को जोड़कर सूची को अधिक पूर्ण तथा सच्चे अर्थों में भाषा विशेष की आधारभूत शब्दावली बनाया जा सकता है।

15

पारिभाषिक शब्द

कुछ शब्द तो सामान्य होते हैं (जैसे खाना, कपड़ा, मकान आदि), जिनका प्रयोग सामान्य रूप से बोलचाल आदि में किया जाता है, इसके विपरीत कुछ शब्द असामान्य होते हैं जो सामान्यत: प्रयुक्त न होकर मात्र प्रशासन, विभिन्न विज्ञानों तथा शास्त्रों आदि विविध प्रकार के विषयों में ही प्रयुक्त होते हैं। जैसे दर्शन में 'अद्वैत', साहित्यशास्त्र में 'कथानक' या भाषाविज्ञान में 'रूपिम' आदि।

'पारिभाषिक शब्द' में दो शब्द हैं : 'परिभाषा' और 'शब्द'। 'शब्द' पर इस पुस्तक के दूसरे अध्याय में विचार किया जा चुका है। अत: यहाँ पहले 'परिभाषा' पर विचार किया जा रहा है।

परिभाषा

अर्थ, भाव या सिद्धान्त आदि की दृष्टि से किसी शब्दादि के सम्बन्ध में सुनिश्चित और स्पष्ट कथन को परिभाषा कहते हैं।

परिभाषा में निम्नांकित गुणों का होना अपेक्षित होता है—

(1) परिभाषा में अतिव्याप्ति दोष नहीं होना चाहिए। अर्थात् उसे ऐसी नहीं होनी चाहिए कि जितने पर उसके लिए लागू होना अपेक्षित है, उससे अधिक पर लागू हो। जैसे 'पुस्तक उसे कहते हैं जिसे पढ़ा जाए।' इस परिभाषा में अतिव्याप्ति दोष है, क्योंकि वह किसी भी पढ़ी जाने वाली चीज़ (समाचार-पत्र, पत्रिका, चिट्ठी आदि) पर लागू हो रही है।

(2) परिभाषा में अव्याप्ति दोष भी नहीं होना चाहिए। अर्थात् उसे ऐसा नहीं होना चाहिए कि जितने पर उसके लिए लागू होना अपेक्षित हो, उससे कम पर वह लागू हो। उदाहरण के लिए 'पुस्तक उसे कहते हैं जिस पर जिल्द हो' में अव्याप्ति दोष है, क्योंकि बिना जिल्द की भी पुस्तक होती है।

(3) परिभाषा एकवाक्यीय होनी चाहिए। अर्थात् उसे एक वाक्य का होना चाहिए। उदाहरण के लिए 'दो अथवा अधिक शब्दों के मिलकर, अर्थ के स्तर पर एक हो जाने को समास कहते हैं।' (व्याकरण), अथवा 'वे प्रक्रियाएँ शिक्षा कहलाती हैं जिनके माध्यम से व्यक्ति के शारीरिक, बौद्धिक, भावात्मक और सामाजिक आदि सभी पक्षों का विकास होता है।' (शिक्षाशास्त्र)।

(4) परिभाषा में क्रिया ऐसी होनी चाहिए जिससे सार्वकालिकता का बोध

हो। जैसे 'है', 'होता है' आदि। 'था', 'रहा', 'रहा था', 'रहा होगा', 'होगा', आदि जैसी क्रियाओं का नहीं, जो एककालिक हैं।

(5) परिभाषा में यथासम्भव ऐसे शब्दों का प्रयोग करना चाहिए जो ऐसे न हों कि उनका अर्थ किसी से पूछना या कहीं देखना पड़े।

(6) परिभाषा के स्पष्ट करने वाले अंश में उसी पारिभाषिक शब्द या उससे बने रूप का प्रयोग नहीं होना चाहिए, जिसकी परिभाषा दी जा रही हो।

(7) परिभाषा निर्वैयक्तिक होनी चाहिए। उसमें उत्तम पुरुष का प्रयोग नहीं होना चाहिए।

(8) परिभाषा यथासाध्य संक्षिप्त, सुगठित और स्पष्ट होनी चाहिए।

संक्षेप में, 'किसी भी शब्द आदि के सम्बन्ध में सिद्धांत या अर्थ की दृष्टि से ऐसे सुनिश्चित तथा स्पष्ट कथन को परिभाषा कहते हैं जो अतिव्याप्ति तथा अव्याप्ति दोष से रहित, एकवाक्यीय, सार्वकालिकताबोधक क्रियायुक्त, तथा निर्वैयक्तिक हो।'

'परिभाषा' पर विचार कर लेने के बाद अब 'पारिभाषिक शब्द' को निम्नांकित रूप में परिभाषित किया जा सकता है।

पारिभाषिक शब्द

जो शब्द सामान्यतः न प्रयुक्त होकर, केवल विभिन्न शास्त्रों, विज्ञानों तथा प्रशासन आदि विशिष्ट विषयों में ही सुनिश्चित अर्थ में प्रयुक्त होते हैं तथा विभिन्न विषयों के संदर्भ में जिनकी निश्चित परिभाषा दी जा सकती है, पारिभाषिक शब्द कहलाते हैं।

वस्तुतः इन शब्दों की परिभाषा दी जा सकती है, इसीलिए इन्हें पारिभाषिक शब्द कहते हैं।

पारिभाषिक शब्दों को हिंदी में 'तकनीकी शब्द' (Technical Term) भी कहते हैं। 'तकनीकी' अंग्रेज़ी शब्द 'टेकनिकल' का हिंदी रूपांतर है। 'टेकनिकल' का सम्बन्ध यों तो 'टेकनीक' और 'टेकनॉलजी से है, किन्तु 'तकनीकी शब्द' का प्रयोग मात्र 'टेकनीक' या 'टेकनॉलजी' से संबद्ध शब्दों के लिए न होकर सभी तरह के पारिभाषिक शब्द के अर्थ में ही होता है, जिसमें प्रशासन, मानविकी, विज्ञान तथा टेकनॉलजी (विज्ञान का अनुप्रयुक्त रूप) आदि सभी के शब्द आ जाते हैं।

पारिभाषिक शब्द की विशेषताएँ

पारिभाषिक शब्दों में मुख्यतः निम्नांकित विशेषताएँ होनी चाहिए :—

(1) उनका अर्थ स्पष्ट और सुनिश्चित होना चाहिए।

(2) एक विषय या सिद्धान्त में उनका एक ही अर्थ होना चाहिए।

(3) एक विषय में, एक संकल्पना या वस्तु के लिए एक ही पारिभाषिक

शब्द होना चाहिए।

(4) पारिभाषिक शब्द यथासम्भव छोटा होना चाहिए, ताकि प्रयोग में असुविधा न हो।

(5) उसे यथासाध्य मूल होना चाहिए, व्याख्यात्मक नहीं। उदाहरण के लिए, जीवविज्ञान में 'दीमक' शब्द ठीक है, उसी के लिए चलनेवाला दूसरा शब्द 'सफ़ेद चींटी' (white ant) नहीं, जो व्याखयात्मक है। ऐसे ही 'अनशन' ज़्यादा अच्छा है बनिस्बत 'भूख हड़ताल' (hunger strike) के।

(6) पारिभाषिक शब्द ऐसा होना चाहिए, जिससे सरलतापूर्वक नये शब्द बनाये जा सकें। जैसे 'मानव', जिससे मानवता, मानवीय, मानवीयता, मानवीकरण, मानविकी आदि सरलता से बन गये हैं। इसके स्थान पर 'नृ' लें तो उससे इस प्रकार शब्द बनाना कठिन होगा, यद्यपि उसका भी अर्थ 'मानव' ही है।

(7) समान श्रेणी के पारिभाषिक शब्दों में एकता होनी चाहिए। जैसे भाषाशास्त्र में स्वनिम, रूपिम, अर्थिम, लेखिम या उपस्वन, उपरूप, उपअर्थ, उपलेख आदि। इसके विपरीत यदि स्वनिम को ध्वनिग्राम कहें तो रूपिम आदि के साथ उसकी एकरूपता नहीं रहेगी। इसी प्रकार रसायनशास्त्र में नाइट्रोजन, ऑक्सिजन तथा हाइड्रोजन इत्यादि।

प्रकार

कुछ पारिभाषिक शब्द ऐसे भी मिलते हैं जो विषय-विशेष में तो पारिभाषिक अर्थ में प्रयुक्त होते हैं, किन्तु उस विषय से बाहर उनका प्रयोग सामान्य भाषा में सामान्य अर्थ में भी होता है। दूसरे शब्दों में, ये शब्द कुछ प्रयोगों में पारिभाषिक होते हैं तो कुछ में सामान्य। इस बात को दृष्टि में रखते हुए पारिभाषिक शब्दों को दो वर्गों में बाँटा जा सकता है :—

(1) **पूर्णपारिभाषिक**—वे शब्द जो मात्र पारिभाषिक अर्थ में ही प्रयुक्त होते हैं। इनका प्रयोग-क्षेत्र ज्ञान-विज्ञान का क्षेत्र ही होता है। सामान्य बोलचाल का नहीं। उदाहरण के लिए व्याकरण का 'क्रियाविशेषण' दर्शन का 'अद्वैत' नाट्यशास्त्र का 'प्रकरी' या गणित का 'दशमलव' इसी प्रकार के शब्द हैं।

(2) **अर्धपारिभाषिक**—इस नाम का यह अभिप्राय नहीं है कि इन शब्दों के सभी प्रयोगों में, इनकी पारिभाषिकता आधी या खण्डित रहती है। वस्तुतः अर्धपारिभाषिक ऐसे शब्दों को कहते हैं, जो कि एक तरफ़ तो विशिष्ट विज्ञान या शास्त्र में प्रयुक्त होने पर पूर्ण पारिभाषिक शब्द का कार्य करते हैं, और दूसरी ओर साधारण व्यवहार की भाषा में प्रयुक्त होने पर सामान्य शब्द के रूप में आते हैं। उदाहरण के लिए, असंगति, शक्ति, अक्षर, आपत्ति, रेखा तथा ध्वनि आदि शब्द इसी प्रकार के हैं, जो क्रमशः अलंकारशास्त्र, भौतिकी, व्याकरण, विधिशास्त्र, ज्यामिति तथा भाषाविज्ञान में तो पारिभाषिक अर्थ में प्रयुक्त होते हैं, किन्तु साधारण बोलचाल की भाषा में अपारिभाषिक अथवा सामान्य अर्थ

में। निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि अर्धपारिभाषिक शब्द वे शब्द होते हैं जो पारिभाषिक एवं सामान्य दोनों ही अर्थों में व्यवहृत होते हैं, किन्तु जब पारिभाषिक अर्थ में प्रयुक्त होते हैं तो उनका सामान्य अर्थ नहीं लिया जा सकता, और जब सामान्य अर्थ में प्रयुक्त होते हैं तो उनका पारिभाषिक अर्थ अभिप्रेत नहीं होता। इस तरह ये शब्द ऐसे नौकर होते हैं, जिनको दो स्वामिनियों की सेवा करनी पड़ती है, कभी सामान्य भाषा की, तो कभी शास्त्रीय भाषा की।

प्रयुक्ति-भेद और पारिभाषिक शब्द

'प्रयुक्ति' का अर्थ है 'प्रयोग-क्षेत्र', अर्थात् 'विषय'। या प्रयोग हर विषय में प्रयुक्त भाषा, दूसरे किसी विषय में प्रयुक्त उसी भाषा से, कुछ-न-कुछ अलग होती है। उदाहरण के लिए हिन्दी के प्रयोग-क्षेत्र साहित्य, राजनीति, अर्थशास्त्र, रसायन, भौतिकी, कार्यालय आदि अनेकानेक हैं, और इन सभी की हिन्दी एक दूसरे से अलग है। हिन्दी के ये अलग-अलग रूप ही हिन्दी की अलग-अलग प्रयुक्तियाँ हैं। हिन्दी की विभिन्न प्रयुक्तियों में वाक्य-प्रयोग की दृष्टि से अन्तर अपेक्षाकृत कम मिलता है, किन्तु पारिभाषिक शब्दावली का अन्तर काफ़ी मिलता है। प्रयुक्ति-भेद और पारिभाषिक शब्द की दृष्टि से मुख्य रूप से तीन बातें संकेत्य हैं: (क) हर विषय या हर प्रयुक्ति में आनेवाले पारिभाषिक शब्द काफ़ी कुछ अलग हैं। उदाहरण के लिए ब्रह्म, माया, अद्वैत आदि दर्शन के शब्द हैं; तो सक्रिय पूंजी, सौदा-शक्ति, अवमूल्यन, क्रेता-एकाधिकार अर्थशास्त्र के; लक्षणा, अभिधा, श्लेष, वक्रोक्ति आदि साहित्य के; विशेषण, अव्यय, क्रियाविशेषण, सम्प्रदान, अपादान आदि व्याकरण के; और विद्वत्परिषद, कलासंकाय, वस्तुनिष्ठ परीक्षा शिक्षा-शास्त्र के। (ख) दूसरी बात यह है कि एक ही शब्द का हिन्दी की अलग-अलग प्रयुक्तियों में कभी-कभी अलग-अलग अर्थ होता है। उदाहरण के लिए 'धातु' शब्द का व्याकरण में एक अर्थ है, रसायन में दूसरा है तथा आयुर्वेद में तीसरा है। ऐसे ही 'व्युत्पत्ति' का काव्यशास्त्र में एक अर्थ है तो व्याकरण या भाषाविज्ञान में दूसरा। (ग) हम लोग पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग, प्रायः अंग्रेज़ी शब्द को मस्तिष्क में रखकर करते हैं। इसीलिए यह भी यहाँ संकेत करना आवश्यक है कि समशब्दों की दृष्टि से हिन्दी और अंग्रेज़ी में, विभिन्न प्रयुक्तियों में पूर्ण समानता नहीं है। उदाहरण के लिए अंग्रेज़ी में व्याकरण और वनस्पतिविज्ञान में 'रूट' शब्द है, किन्तु हिन्दी में इसके लिए व्याकरण में 'धातु' है तो वनस्पतिविज्ञान में 'जड़'। इसके विपरीत, हिन्दी में व्याकरण, आयुर्विज्ञान तथा रसायन में 'धातु' शब्द है तो इन तीनों ही के लिए अँग्रेज़ी में क्रमशः तीन शब्द हैं: 'रूट', 'एलिमेंट' तथा 'मेटल'। ऐसे ही अँग्रेज़ी 'कांकार्डेंस' के लिए हिन्दी में व्याकरण में 'अन्विति; या 'अन्वय' शब्द चलता है तो पुस्तकालविज्ञान में 'शब्दानुक्रमणी'; अंग्रेज़ी 'फ़ोकस' के लिए हिन्दी में गणित में 'नाभि' है तो भौतिकी में 'फ़ोकस' और भूगोल में 'उद्गमकेन्द्र', 'फ़ंक्शन' के लिए भाषाविज्ञान में 'प्रकार्य' शब्द है तो विधि (लॉ) में

'कृत्य'; 'डिनोटेशन' के लिए आलोचना में 'मुख्यार्थ' तो तर्कशास्त्र में 'वस्त्वर्थ'।

इस तरह प्रयुक्ति-भेद के अनुसार पारिभाषिक शब्दों का अर्थ समझने तथा उनका प्रयोग करने में काफ़ी सतर्कता अपेक्षित है।

हिन्दी में पारिभाषिक शब्दों के ग्रहण और निर्माण की मुख्य प्रवृत्तियाँ

हिन्दी में पारिभाषिक शब्दों के ग्रहण और निर्माण की प्रवृत्तियाँ या संप्रदाय पाँच हैं: **राष्ट्रीयतावादी** अथवा **पुनरुद्धारवादी**; **अंतर्राष्ट्रीयतावादी** अथवा **आदानवादी**, **प्रयोगवादी**; **लोकवादी** तथा **समन्वयवादी**। इनमें से मुख्य निम्नांकित चार ही हैं:—

1. राष्ट्रीयतावादी

इस प्रवृत्ति को पुनरुद्धारवादी, शुद्धतावादी आदि भी कहा गया है। इसमें विश्वास रखने वाले लोग पारिभाषिक शब्दों के लिए या तो संस्कृत से शब्द ग्रहण करना चाहते हैं या संस्कृत के उपसर्ग, प्रत्यय, धातु, शब्द आदि के आधार पर नये शब्द बनाना चाहते हैं। ऐसे बहुत सारे शब्द लिये तथा बनाये भी गये हैं। इस संप्रदाय के लोगों द्वारा लिये जाने वाले शब्दों में नेपालज (संखिया), तथा शुल्वारि (गंधक) आदि हैं, तो बनने वाले शब्दों में मुद्रणालय, विश्वविद्यालय, कार्यालय, न्यायालय, मुख्यालय, दूरभाष, दूरदर्शन, दूरमुद्रक आदि हैं।

इस प्रवृत्ति के पक्ष में एक ही बात कही जा सकती है, और वह यह कि संस्कृत के शब्दों के ग्रहण करने पर उनके आधार पर आवश्यकतानुसार नये शब्द सुविधा से बनाये जा सकते हैं। जैसे—'विधान' से विधान-सभा, विधान-परिषद्, संविधान, वैधानिकता, संवैधानिक आदि। लोक में प्रचलित या अंग्रेज़ी से गृहीत शब्दों से ऐसा करना संभव नहीं है। उनमें इतनी उर्वरता नहीं होती।

इस प्रवृत्ति के विरुद्ध निम्नांकित बातें कही जा सकती हैं: (1) हिन्दी में प्रचलित देशज, विदेशी तथा बहुत से तद्भव शब्दों का लाभ इस संप्रदाय ने नहीं उठाया जब कि ये हिन्दी की सम्पत्ति हैं। उदाहरणार्थ इसने 'दूरबीन' के स्थान पर 'दूरेक्ष', 'क्लर्क' के स्थान पर 'लिपिक' या 'चेक' के स्थान पर 'धनादेश' जैसे शब्दों के प्रयोग पर बल दिया है। (2) शब्दों के निर्माण में इसने या तो संस्कृत के उपसर्ग-प्रत्ययों की सहायता ली, या नये प्रत्यय बनाये, किन्तु हिन्दी के बहु-प्रचलित उपसर्गों-प्रत्ययों (जैसे ना, बे, दार, बंद, ची आदि) का पूर्णतः बहिष्कार किया है। (3) इस संप्रदाय ने प्राचीन-साहित्य से जो शब्द लिये हैं, वे आज इतने दुरूह हैं कि उन्हें सामान्यतः समझना कठिन है। (4) जो नये शब्द बनाये गये हैं उनमें बहुत से शब्दों की रचना अँग्रेज़ी शब्द के उपसर्गों-प्रत्ययों को देखकर यंत्रवत् (जैसे mani+pula+tion=प्र+हस्त+न, per+meter=परि+माप, आदि) कर दी गयी है, बिना इन बातों का ध्यान रखे कि वे आज की

जीवित भाषा में चल भी सकते हैं या नहीं—जैसे 'दिवालियापन' के लिए 'नष्ट-निधिता'। (5) हमारी आज की संस्कृति मिश्रित संस्कृति है, अतः हमारे शब्दों को भी उसका प्रतिनिधित्व करना चाहिए, किन्तु इस संप्रदाय ने मध्यकाल में अरबी-फ़ारसी-तुर्की तथा आधुनिक काल में अंग्रेज़ी के योगदान को नकारते हुए दो हज़ार वर्ष पीछे जाकर हमारी भाषा को संस्कृत के अनुरूप बनाना चाहा है, तथा उसे जनता के बीच से उठाकर वेदों-शास्त्रों के संस्कृत-मंडित सिंहासन पर आसीन करने का प्रयास किया है।

2. अंतर्राष्ट्रीयतावादी

इसे आदानवादी, शब्दग्रहणवादी, स्वीकारवादी आदि नाम भी दिये गये हैं। हमारे अधिकांश वैज्ञानिक इसी मत के हैं। उनका कहना है कि अंग्रेज़ी तथा अंतर्राष्ट्रीय शब्दों के लिए हिन्दी या अन्य भारतीय भाषाओं में पारिभाषिक शब्द बनाने या संस्कृत आदि से लेने की आवश्यकता नहीं। इससे अच्छा यह है कि इन शब्दों को ज्यों-का-त्यों, या हिन्दी आदि की ध्वनि-व्यवस्था के अनुरूप इन्हें अनुकूलित करके, ले लिया जाये। इससे तीन लाभ होंगे : (क) शब्द बनाने या प्राचीन साहित्य से शब्द खोजने आदि के झंझट से हम बच जायेंगे; (ख) उन शब्दों को ले लेने से, अंग्रेज़ी, या अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर हम अन्य ऐसी भाषाओं से अपने प्रयोग में जुड़े रहेंगे जो इन शब्दों का प्रयोग करती हैं; (ग) पूर्णतया नयी पारिभाषिक शब्दावली स्वीकारने पर वे भारतीय वैज्ञानिक, जो अपने-अपने क्षेत्रों में लगे हैं, भारतीय भाषाओं में ग्रंथ-रचना करना भी चाहें तो नहीं कर सकते, क्योंकि नये शब्दों से परिचित होने तथा उन्हें याद करने का समय निकालना उनके लिए संभव नहीं है। यदि अंतर्राष्ट्रीय तथा अंग्रेज़ी शब्दों को ले लें, तो यह कठिनाई उनके सामने नहीं आएगी और वे सरलता से हिन्दी में भी पुस्तकें लिख सकेंगे। यों तो, इसमें संदेह नहीं कि हमने काफ़ी ऐसे शब्दों को ग्रहण किया है, और सभी जीवित भाषाएँ ऐसा करती हैं, किन्तु सच्चाई यह है कि सारे-के-सारे शब्दों को ग्रहण करना किसी भी भाषा के लिए उचित नहीं कहा जा सकता। इस संबंध में दो-तीन बातें ध्यान देने की हैं : (क) किसी भी समुन्नत देश में ऐसा नहीं है कि सारे-के-सारे शब्द किसी दूसरी भाषा से लिये गये हों। मूलतः यह प्रश्न देश के व्यक्तित्व से जुड़ा होता है, अतः सारे शब्द हम अंग्रेज़ी से नहीं ले सकते; (ख) अंग्रेज़ी के सारे पारिभाषिक शब्द हिन्दी पचा भी नहीं सकती; वस्तुतः कोई भी भाषा मुख्यतः अंग्रेज़ी-हिन्दी जैसे अंतरवाली, किसी दूसरी भाषा के सारे शब्द नहीं पचा सकतीं; (ग) गृहीत शब्द (लोन वर्ड्स) अर्द्धमृत होते हैं, क्योंकि उनमें जनन-शक्ति (नये शब्द बनाने की क्षमता) या तो बहुत कम होती है, या बिलकुल नहीं होती। किन्तु हमारे शब्दों को ऐसा होना चाहिए कि उनसे सुविधानुसार नये शब्द बनाये जा सकें। यों हिन्दी ने एक सीमा तक ऐसे अंतर्राष्ट्रीय शब्द लिये हैं तथा उनके आधार पर नये शब्द भी बनाये हैं। जैसे मीटर, लीटर, राडार, टन,

रेडियो, आक्सीजन, नाइट्रोजन, फ़ोकसित, रजिस्ट्रीकृत, काडरित, मोटर-नौका, आदि।

इस प्रसंग में यह उल्लेख्य है कि भारत सरकार के शिक्षा मंत्रालय द्वारा स्थापित शब्दावली-आयोग का भी निर्णय है कि निम्नांकित दो प्रकार के शब्द भारतीय भाषाओं में ले लिए जाएँ : (क) ऐसे शब्द जो व्यक्तियों के नाम के आधार पर बनाये गये हैं, जैसे मार्क्सवाद (कार्लमार्क्स), ब्रेल (ब्रेल), बायकाट (कैप्टिन बायकाट), गिलोटिन (डॉ० गिलोटिन), आदि; (ख) ऐसे अन्य शब्द जिनका विश्व की काफ़ी भाषाओं में प्रयोग होता है—जैसे टेलीफ़ोन, लाइसेंस, रायल्टी, परमिट, टैरिफ़ आदि।

3. लोकवादी

लोकवादी सम्प्रदाय लोकप्रचलित शब्दों के आधार पर पारिभाषिक शब्द बनाने का पक्षधर रहा है। उदाहरण के लिए यदि 'मेटर्निटी होम' को अपनाने के पक्ष में अन्तर्राष्ट्रीयतावादी रहे हैं, तो 'प्रसूतिगृह' को लेने के पक्ष में राष्ट्रीयतावादी, किंतु लोकवादी लोकप्रचलित 'जच्चा' तथा 'घर' से 'ज़च्चाघर' बना कर अपनाने के पक्ष में रहे हैं। 'घुसपैठिया' 'दलबदलू' 'पावती' भी इसी प्रकार के शब्द हैं। वस्तुतः इसमें संदेह नहीं कि हिन्दी की अपनी पूरी शब्दावली यदि इस श्रेणी की बनायी जा सके तो बहुत अच्छा हो, किन्तु कठिनाई यह है कि सभी पारिभाषिक शब्दों का निर्माण लोक-प्रचलित शब्दों के आधार पर संभव नहीं है, क्योंकि लोकप्रचलित शब्द इस दृष्टि से पर्याप्त नहीं हैं। उदाहरण के लिए, 'आकाशवाणी' और 'रेडियो' के समकक्ष कोई लोकनिर्मित शब्द रखना कठिन है। यही स्थिति टेलीविज़न-दूरदर्शन, टेलीफ़ोन-दूरभाष, मिनिस्ट्री-मंत्रालय, सेक्रेटरी-सचिव के संबंध में भी है। यों जिन शब्दों के लिए लोक-शब्द उपलब्ध हों, उन्हें अवश्य अपनाया जाना चाहिए। उदाहरण के लिए, 'कचहरी' के रहते, 'कोर्ट' और 'न्यायालय' के हिन्दी में प्रचलित होने या स्वीकार होने का शैली-भेद के अतिरिक्त कोई और औचित्य नहीं है।

4. समन्वयवादी

वस्तुतः काफ़ी पढ़े-लिखे लोग इस पक्ष में हैं कि हिन्दी ही नहीं, सभी भारतीय भाषाओं के लिए सर्वोत्तम मार्ग समन्वयवाद का हो सकता है, अर्थात् उपर्युक्त तीनों का यथोचित समन्वय। इसकी मूलभूत बातें ये हैं : (क) अपने लोकप्रचलित शब्द-भंडार, उपसर्ग तथा प्रत्यय आदि का पूरा उपयोग करें। चाहे शब्द ग्रहण करने की समस्या हो, अथवा नये शब्द बनाने की; (ख) ऐसे विदेशी, देशज तथा तद्भव शब्द जो ख़ूब चल पड़े हैं, या नये हैं, किन्तु जिनके लिए नये शब्द लेने या गढ़ने की आवश्यकता नहीं है, वे ले लिये जाएँ। यह लेना अंतर्राष्ट्रीय शब्दों का भी हो सकता है, अंग्रेज़ी शब्दों का भी, अपनी परंपरा के प्राचीन शब्दों का भी तथा

अन्य भारतीय भाषाओं या बोलियों के शब्दों का भी। हर जीवित भाषा ऐसा करती है, और उसे करना भी चाहिए; (ग) लिया जाने वाला कोई शब्द यदि ध्वनि की दृष्टि से हमारी ध्वनि-व्यवस्था के अनुकूल नहीं, तो उसे अनुकूलित कर लेना चाहिए—जैसे 'एकेडमी' के लिए 'अकादमी' या 'टेकनीक' के लिए 'तकनीक; (घ) अनिवार्य होने पर अपनी भाषा के उपसर्ग, प्रत्यय, शब्द, धातु या अन्य भाषाओं से गृहीत शब्दों के आधार पर नये शब्द बनाये जायें, किन्तु यह ध्यान रखा जाये कि उनमें अटपटापन न हो तथा वे अपनी भाषा में प्रयोक्ता, श्रोता या पाठक को चौंकाये बिना सरलता से चल सकें; (ङ) और अंत में, हिन्दी की शैलियों की दृष्टि से, किसी एक पारिभाषिक शब्द के लिए, हमारे पास यदि एकाधिक शब्द हों तो हमें कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए। वैसी स्थिति में शैली के अनुसार चयन की गुंजाइश रहेगी। उदाहरणार्थ :—

Suspense Account	उचंती खाता, निलंबित लेखा
Actual Cost	असली क़ीमत, वास्तविक मूल्य
Absurd Statement	बेतुका बयान, अर्थहीन वक्तव्य
Affidavit	हलफ़नामा, शपथपत्र
Agreement Form	करारनामा, अनुबंधपत्र
Adulterated Drugs	मिलावटी दवाएँ, अपमिश्रित ओषधियाँ
No Admission	अंदर आना मना है, प्रवेश-निषेध
Rejected Application	नामंज़ूर अर्ज़ी, अस्वीकृत आवेदनपत्र

पारिभाषिक शब्दों की रचना

हिंदी में पारिभाषिक शब्दों की कमी दूर करने के लिए दो प्रकार के प्रयास किये गये हैं :—

(क) विभिन्न भाषाओं और बोलियों से शब्द-ग्रहण

(ख) नये शब्दों का निर्माण

शब्द-ग्रहण मुख्यत: निम्नांकित स्रोतों से हुए हैं—

(अ) **संस्कृत से**—जैसे तस्कर (स्मगलर)

(आ) **हिंदी भाषा की बोलियों में**—जैसे दलबदल (डिफ़ेक्शन), दलबदलू (डिफ़ेक्टर), घुसपैठिया (इनफ़िल्ट्रेटर), भाई-भतीजावाद, आया राम गया राम (दलबदलू) आदि।

(इ) **भारत की आधुनिक भाषाओं से**—जैसे बँगला से साजगृह(ग्रीनरूम), कन्नड़ से प्रतिष्ठान (इस्टैब्लिशमेंट) आदि।

(ई) **विदेशी भाषाओं**(मुख्यत: अंग्रेज़ी) **से**—जैसे मीटर, लीटर, विटामिन, राडार, आक्सीजन आदि।

नये शब्दों का निर्माण उपसर्ग, प्रत्यय तथा समास-पद्धति की सहायता से हुआ

है। इनमें प्रायः तो संस्कृत के तत्सम शब्दों का प्रयोग हुआ है, और कुछ अंग्रेज़ी शब्दों का। तद्भव तथा हिन्दी में गृहीत अरबी-फ़ारसी शब्दों से अपेक्षाकृत कम ही शब्दों की रचना हुई है। यों कभी-कभी विदेशी शब्दों की छाया पर भी पारिभाषिक शब्द बना लिये जाते हैं। जैसे—'ट्रैजेडी' से 'त्रासदी', 'कमेडी' से 'कामदी', 'इंटरिम' से 'अंतरिम', 'पैराबोला' से 'परवलय' आदि।

निर्माण और प्रयोग की अशुद्धियाँ

हिंदी में पारिभाषिक शब्दों के निर्माण और उनके प्रयोग से संबद्ध अशुद्धियाँ मुख्यतः दस-ग्यारह प्रकार की हो सकती हैं :—

(1) **रचना-संबंधी**—पारिभाषिक शब्दों की रचना में प्रायः अशुद्धियाँ हो जाती हैं। जैसे 'अंतरपणन' (आर्बिट्रेज) के लिए 'अंतर्पणन' (अन्तर+पणन), 'अन्तःश्वसन' (इनहेलेशन) के लिए 'अंतर्श्वसन' (अंतः+श्वसन), 'अंतःपाशी' (इंटरलाकिंग) के लिए 'अन्तर्पाशी' (अन्तः+पाशी), 'पुनःस्मरण' (रीकॉल) के लिए पुनर्स्मरण(पुनः+स्मरण), 'पुनरधिगम' (रीलर्निंग) के लिए 'पुनःअधिगम' या 'पुनरअधिगम' (पुनः+अधिगम), 'वाक्-सुधार' (स्पीच-करेक्शन) के लिए 'वाग्सुधार' या 'वाग्-सुधार' या 'वाकसुधार' (वाक्+सुधार), 'प्राणिविज्ञान' (बाइलजी) के लिए 'प्राणीविज्ञान', 'प्राणिजात' (फ़ॉना) के लिए 'प्राणीजात' आदि। ये अशुद्धियाँ उपसर्ग, प्रत्यय तथा समास-प्रक्रिया से बनाये गये यौगिक पारिभाषिक शब्दों में संधि आदि की दृष्टि से होती हैं। यह आवश्यक है कि शब्दनिर्माण करते समय संधि और समास-प्रक्रिया संबंधी नियमों का ध्यान रखा जाए।

(2) **प्रयोग-संबंधी**—पारिभाषिक शब्दों की मात्र जानकारी ही पर्याप्त नहीं है, उनका ठीक प्रयोग भी जानना चाहिए। उदाहरण के लिए अंग्रेज़ी में एक शब्द 'इमोशनल' है। इसके लिए हिंदी में 'भावुक' और 'भावप्रधान' दो शब्द हैं, किन्तु इन दोनों का प्रयोग एक संदर्भ में नहीं किया जा सकता। व्यक्ति तो 'भावुक' होता है, और रचना 'भावप्रधान' होती है अर्थात् रचना को 'भावुक' नहीं कहा जा सकता और न व्यक्ति को 'भावप्रधान'। यदि ऐसा कहा जाये तो प्रयोग-संबंधी अशुद्धि हो जायेगी। इसी प्रकार तर्कशास्त्र का एक अंग्रेज़ी शब्द है 'इनफ़रेंस'। इसके लिए हिंदी में 'अनुमान' और 'अनुमिति' दो शब्द हैं। दोनों ही संज्ञा हैं, किन्तु वाक्य में 'अनुमान करना' या 'अनुमान लगाना' तो कह सकते हैं, किन्तु 'अनुमिति करना' या 'अनुमिति लगाना' नहीं कह सकते। इसी प्रकार अंग्रेज़ी 'जेनेरेटर' के लिए हिंदी में 'जनित्र' और 'जनक' दो पारिभाषिक शब्द हैं और दोनों का अर्थ एक है, किन्तु 'जनित्र' का प्रयोग 'यंत्र' के लिए ही होता है, जबकि 'जनक' का प्रयोग अन्यत्र।

(3) **अर्थ-संबंधी**—कुछ पारिभाषिक शब्द रूपीय साम्य के कारण काफ़ी मिलते-जुलते होते हैं, किन्तु उनके अर्थ में अन्तर होता है। ऐसे शब्दों के प्रयोग में

सतर्क रहना चाहिए, नहीं तो अर्थ की अशुद्धि हो जाती है । उदाहरण के लिए, भाग, विभाग, अनुभाग, प्रभाग लें। इनमें 'भाग' पार्ट/पोर्शन है, तो 'विभाग' डिपार्टमेंट, 'अनुभाग' सेक्शन तथा 'प्रभाग' डिवीज़न । ऐसे ही आदेश (आर्डर), अनुदेश (इन्स्ट्रक्शन); निर्देश (रेफ़रेंस); प्रवर, अवर; आर्थिक (इकनॉमिक), आर्थी; विज्ञानी, वैज्ञानिक; विज्ञप्ति, अनुज्ञप्ति; दाता, आदाता (रिसीवर), अनुदाता (ग्रांटर); निर्देशक (सुपरवाइज़र), निदेशक (डायरेक्टर); निरीक्षक (इंस्पेक्टर), अधीक्षक (सुपरिंटेंडेंट), पर्यवेक्षक (सुपरवाइज़र); न्यास (ट्रस्ट), विन्यास; दर्शक, परिदर्शक (विज़िटर); नियम, परिनियम (स्टैच्यूट) ; परिरोध (कनफ़ाइनमेंट), अनुरोध (रिक्वेस्ट), निरोध (डिटेंशन); योजना (प्लान), परियोजना (प्रोजेक्ट); अनुलिपि (ट्रांसक्रिप्शन), प्रतिलिपि (कापी); युक्ति, प्रयुक्ति, नियुक्ति; शासन, प्रशासन, अनुशासन; अनुष्ठान (सालेमनाइज़ेशन), प्रतिष्ठान (फ़ाउंडेशन); पूरक (काम्प्लीमेंटरी), अनुपूरक (सप्लीमेंटरी); संकाय (फ़ैकल्टी), निकाय (बॉडी); तथा अतिक्रमण (वायोलेशन), अधिक्रमण (एनक्रोचमेंट) आदि ।

कुछ शब्दों में रूप की समानता तो नहीं होती किन्तु अर्थ का अंतर होता है, अतः उनके प्रयोग में भी सतर्क रहना चाहिए; जैसे निकालना, निलंबन करना, बर्ख़ास्त करना, निवृत्त करना; या निष्कासन (एक्सपल्शन), निलंबित (ससपेंशन), बर्ख़ास्तगी (डिस्मिसल), निवृत्ति (रिटायरमेंट); आदि ।

(4) **प्रयुक्ति-संबंधी**—प्रयुक्ति का अर्थ है प्रयोग-क्षेत्र या विषय-क्षेत्र के अनुसार भाषा के विविध रूप या शैलीय भेद । उदाहरण के लिए; साहित्य की हिंदी, वकीलों की हिंदी, सरकारी कार्यालय की हिंदी, इंजीनियरों की हिंदी पूर्णतः एक नहीं होती । ये हिंदी की अलग-अलग प्रयुक्तियाँ हैं । इनमें वाक्य-रचना का तो अंतर होता ही है, मुख्य अंतर शब्दावली का होता है । यों कुछ पारिभाषिक शब्द तो एकाधिक विषयों में एक ही रहते हैं, जैसे गणित, भौतिकी, भूगोल तथा भूविज्ञान में अंग्रेज़ी शब्द 'डॉमिनेंट' के लिए हिंदी में 'प्रभावी' शब्द चलता है, या 'धातु' शब्द धातुविज्ञान, आयुर्वेद तथा व्याकरण तीनों में ही चलता है, किन्तु बहुत-से शब्द ऐसे होते हैं जो हर विषय के लिए अलग-अलग होते हैं । उदाहरण के लिए, अंग्रेज़ी में गणित, भौतिकी तथा भूगोल में एक ही शब्द 'फ़ोकस' चलता है, किन्तु हिंदी में इसके लिए गणित में 'नाभि', भौतिकी में 'फ़ोकस' तथा भूगोल में 'उद्गम-केंद्र' प्रयुक्त होते हैं । अतः यदि कोई भूगोल में 'नाभि' या गणित में 'उद्गम-केंद्र' का प्रयोग करे तो यह प्रयुक्ति की अशुद्धि मानी जाएगी । ऐसी ही अंग्रेज़ी 'कंकार्डेंस' के लिए पुस्तकालयविज्ञान में 'शब्दानुक्रमणी' है तो भाषाविज्ञान में 'अन्वय', या अंग्रेज़ी 'सेक्यूलर' के लिए राजनीति में 'धर्मनिरपेक्ष' तो अर्थशास्त्र में 'सुदीर्घकालीन' ।

(5) **रूपांतर-संबंधी**—कभी-कभी पारिभाषिक शब्द से, प्रयोग के अनुसार अन्य रूप बनाने की भी आवश्यकता पड़ती है। इसकी व्यावहारिक जानकारी भी प्रयोक्ता के लिए आवश्यक है। यदि वह नहीं जानता तो उसके लिए प्रयोग करना

कठिन होता है। जैसे 'पंजीयन' या 'पंजीकरण', किन्तु 'पंजीकृत पत्र' 'निलंबन' किन्तु 'निलंबित व्यक्ति'; 'भाषा-अधिगम' किन्तु 'अधिगत भाषा'; 'ग्रहण' किन्तु 'गृहीत'; 'अनुवाद' किंतु 'अनूदित'; 'परित्याग' किंतु 'परित्यक्त'; 'अनुराग' किंतु 'अनुरक्त'; 'विराग' किंतु 'विरक्त'; 'परिग्रहण' किंतु 'परिगृहीत'; 'विस्तार' किंतु 'विस्तृत'; 'व्यपदेशन' (रिप्रेज़ेंटेशन) किंतु 'व्यपदिष्ट' (रिप्रेज़ेंटिड); 'आरक्षण' किंतु 'आरक्षित'; या कार्यान्वियन-कार्यान्वित', 'संपोषक-संपोषण-संपुष्ट', 'आदेश-आदिष्ट' आदि।

(6) **सहप्रयोग-संबंधी**—'सहप्रयोग' का अर्थ है 'साथ-साथ प्रयोग'। कभी-कभी एक ही विषय में अलग-अलग शब्दों के संदर्भों में अलग-अलग शब्दों का प्रयोग अपेक्षित होता है। उदाहरण के लिए राजनीतिविज्ञान के 'सेक्युलर लाइफ़', 'सेक्युलर पॉलिटिक्स', 'सेक्युलर पावर' तीन शब्द लें। अंग्रेज़ी में तीनों में 'सेक्युलर' है, किंतु हिंदी में इनके लिए क्रमशः 'ऐहिक जीवन', 'धर्मनिरपेक्ष राजनीति' तथा 'लौकिक शक्ति' शब्द चलते हैं अर्थात् 'जीवन' के साथ 'ऐहिक' राजनीति के साथ 'धर्मनिरपेक्ष' और 'शक्ति' के साथ 'लौकिक'। यदि कोई व्यक्ति तीनों शब्दों में 'ऐहिक', 'धर्मनिरपेक्ष' या 'लौकिक' का प्रयोग करे तो सहप्रयोग-संबंधी अशुद्धि हो जायेगी। ऐसे ही अर्थशास्त्र में '**प्रकाशित** दर' (पेपर रेट), '**रुक्के** पर उधार' (पेपर क्रेडिट), 'करेंसी **नोट**' (पेपर करेंसी) तथा '**काग़ज़ी** मुद्रा' (पेपर मनी) में अंग्रेज़ी 'पेपर' के लिए चार शब्द हैं।

(7) हम लोग प्रायः पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग अंग्रेज़ी प्रयोग को दृष्टि में रखकर करते हैं। ऐसे में प्रायः यह हो जाता है कि अंग्रेज़ी में कोई शब्द यदि कई अर्थों में आ रहा है तो हिंदी में एक ही शब्द को उन अर्थों में प्रयुक्त करने का प्रयास करते हैं। एक विज्ञापन आता है 'प्रथम कक्षा का बर्नर'। स्पष्ट ही अनुवादक ने अंग्रेज़ी 'क्लास' के शिक्षाशास्त्रीय प्रतिशब्द का प्रयोग अनपेक्षित स्थान पर करने की अशुद्धि इसमें की है। होना चाहिए 'प्रथम श्रेणी का बर्नर' या 'बहुत ही अच्छा बर्नर'। ऐसे ही यह आवश्यक नहीं कि अंग्रेज़ी में विभिन्न विज्ञानों और शास्त्रों में एक शब्द का प्रयोग हो रहा है तो हिंदी में भी ऐसा ही हो। उदाहरण के लिए अंग्रेज़ी 'रूट' व्याकरण में भी आता है, वनस्पतिविज्ञान में भी किंतु उसके स्थान पर हिंदी में एक में 'धातु' का प्रयोग होगा तो दूसरे में 'जड़' का ऐसे ही अंग्रेज़ी 'फ़ाउंडेशन' हिंदी में, प्रशासन में, 'प्रतिष्ठान' है, तो वास्तुशास्त्र में 'नींव' है। इसके विपरीत कभी-कभी अंग्रेज़ी में कई शब्दों का प्रयोग होता है, और हिंदी में उन सभी के लिए एक शब्द आता है। उदाहरण के लिए, अंग्रेज़ी में धातुविज्ञान में 'मेटल', आयुर्विज्ञान में 'एलिमेंट' तथा व्याकरण में 'रूट' है, किंतु हिंदी में तीनों के लिए 'धातु' है।

(8) तकनीकी शब्द के स्थान पर सामान्य शब्द का प्रयोग नहीं किया जा सकता। उदाहरण के लिए, रसायन में 'पानी' और 'नमक' का प्रयोग न कर, 'जल' और 'लवण' का प्रयोग करना चाहिए। ऐसे ही प्रशासन में 'आदेश' शब्द

उपयुक्त है न कि 'आज्ञा'।

(9) पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग, जहाँ अपेक्षित न हो, सामान्य भाषा में नहीं करना चाहिए। उदाहरण के लिए 'ऐज़ ए मैटर ऑफ़ फ़ैक्ट' के लिए 'तथ्य के पुद्गल के रूप में' का प्रयोग नहीं किया जा सकता, यद्यपि 'मैटर' के लिए दर्शन में 'पुद्गल' तथा 'फ़ैक्ट' के लिए 'तथ्य' का प्रयोग होता है। इसके लिए 'तत्त्वतः', 'वस्तुतः', या 'वास्तव में' उपयुक्त होंगे। ऐसे ही सामान्य भाषा में 'आज्ञा' का प्रयोग ही ठीक है, 'अनुदेश' का नहीं।

(10) यों तो किसी भी एक भाषा में एक संकल्पना या एक वस्तु आदि के लिए एक ही पारिभाषिक शब्द होना चाहिए, किंतु हिंदी में अभी तक पारिभाषिक शब्दों का पूर्ण निश्चयन नहीं हुआ है, अतः एक संकल्पना के लिए एकाधिक शब्द चल रहे हैं। उदाहरण के लिए, भाषाविज्ञान के पारिभाषिक शब्द 'फ़ोनीम' के लिए हिंदी में ध्वनिग्राम, ध्वनिम, स्वनिम; 'एलोफ़ोन' के लिए संध्वनि, संस्वन, उपस्वन; या 'फ़िज़िक्स' के लिए भौतिकी, भौतिकविज्ञान, भौतिकशास्त्र। ऐसी स्थिति में यह ध्यान देने की बात है कि एक लेख, पुस्तक, भाषण या बातचीत में एक का ही प्रयोग किया जाए; कभी एक, और कभी दूसरे का नहीं।

(11) हिंदी में हिंदी-हिंदुस्तानी-उर्दू तथा अंग्रेज़ी मिश्रित-शैलियों के कारण कई पारिभाषिक शब्द एक ही अर्थ में चल रहे हैं। जैसे प्रसूतिगृह-जच्चाघर-मैटरनिटी होम, राजयक्ष्मा-तपेदिक़-टी०बी०, मसूरिका-चेचक-माता-स्मालपॉक्स, मूल्य-दाम-क़ीमत-प्राइस आदि। प्रयोक्ता को अपनी शैली के अनुसार इनमें से शब्द चुन लेने चाहिए। एक शैली में दूसरी शैली का प्रयोग अटपटा लगता है। यों ज़्यादा अच्छा हो कि 'मैटरनिटी होम', 'टी०बी०', 'स्मालपॉक्स' तथा 'प्राइस' जैसे अंग्रेज़ी शब्दों का प्रयोग हिंदी में न किया जाये और पढ़े-लिखे लोगों में प्रचलित अंग्रेज़ी-मिश्रित शैली से बचा जाए।

□□